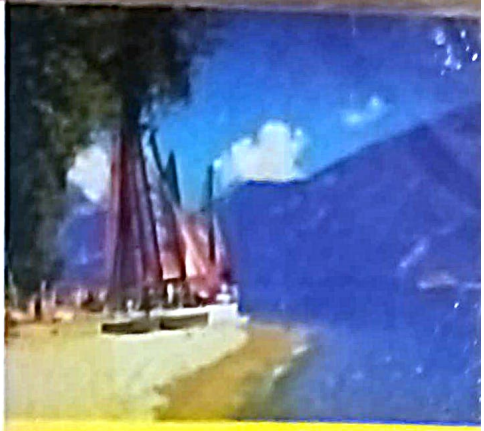

पर्यावरण शिक्षा

(Environmental Education)

डॉ० के० सी० जैन
शैल जैन

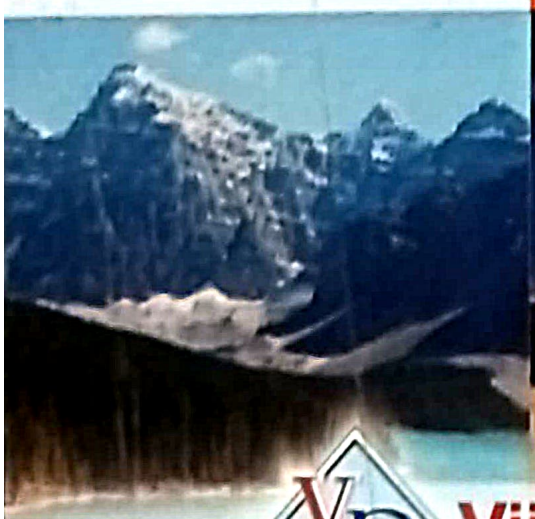

Vijaya Publications
Ludhiana

पर्यावरण शिक्षा

[ENVIRONMENTAL EDUCATION]

For B.Ed. Students of Kurukshetra, Maharishi Dayanand, Punjab and Other Indian Universities

PT. SITARAM SHASTRI B.Ed. TRAINING COLLEGE
LIBRARY
Acc. No. 4393
BHIWANI

By :

Dr. K.C. Jain
M.A., M.Ed., Ph.D.

Shail Jain
M.A. M.Ed.

P.S.R.S.C.E.
4393
A-4
3-3

VIJAYA PUBLICATIONS
EDUCATIONAL PUBLISHERS
546, BOOK MARKET, LUDHIANA–141008

Published by :

Vijay Kumar Tandon.

Prop. **VIJAYA PUBLICATIONS**
Educational Publishers,
546, Books Market, Ludhiana–141 008
Phone: Office : 2726190, Resi. 2225924
Mobile No. : 98140-67258

COPY RIGHT RESERVED

This book or part thereof may not be reporduced in any form without the wirtten permission of the publishers.

Price Rs. 130/-

Computer Type Setting By
CK Graphics
Mitha Bazar, Jalandhar

Printing By :
Cosmic Printers
Jalandhar

प्राक्कथन

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या किसी एक देश तक सीमित न होकर अपितु समूचे श्व की समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं क्रियता से प्रयत्नशील हैं। प्रदूषण की समस्या का समाधान करने के लिये लोगों का इसके ते जागरुक होना बहुत आवश्यक है। जागरुकता के लिये जनसाधारण को पर्यावरण तना से अवगत कराना आज के समय की पुकार है। पर्यावरण चेतना का विकास करने हेतु र्यावरण शिक्षा का प्रचार और प्रसार करना बहुत जरूरी हो गया है। यही कारण है कि ूल स्तर पर पर्यावरण शिक्षा को पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जा रहा है।

शिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे भावी शिक्षक भविष्य में शिक्षक गे। उनमें समाज और राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना का विकास पर्यावरण शिक्षा माध्यम से ही किया जा सकता है। पर्यावरण शिक्षा अध्ययन का मूल उद्देश्य स्वस्थ माज का निर्माण करना है जिसमें किसी प्रकार के प्रदूषण का लेश मात्र भी पुट न हो। र्यावरण शिक्षा के इस मूल उद्देश्य की पूर्ति तभी सम्भव हो सकती है जब इस विषय का क्षण सार्थक एवं सशक्त ढंग से किया जाये।

इस पुस्तक की रचना की आवश्यकता का सबसे बड़ा कारण यह भी रहा है कि ०एड० पाठ्यक्रम अभी तक उपलब्ध नहीं कराई गई है। इस पुस्तक की रचना करते समय ०एड० कर रहे भावी शिक्षकों की आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से ध्यान में रखा गया है। पुस्तक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक; चौधरी देवी ल विश्वविद्यालय, सिरसा और पंजाब विश्वविद्यालय चन्डीगढ़, बी०एड० के 2004-05 के सत्र पाठ्यक्रम ध्यान में रख कर लिखी गई है। यह पुस्तक पाठकों को इतनी सुगम ं सुबोध लगेगी जिससे वे कम प्रयास करके अधिक फल की प्राप्ति कर सकेंगे।

इस पुस्तक रचना हेतु जिन शुभचिन्तकों ने प्रेरणा देकर हमारा मार्गदर्शन किया उनके दिल से आभारी हैं। विशेषकर डा. जी.एस. यादव सेवानिवृत प्राचार्य, सी.आर. कालेज फ ऐजूकेशन, हिसार का आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने कई सन्दर्भों से सम्बन्धित रगर सुझाव देकर समस्या का समाधान किया। इस पुस्तक में हमारे विचार हैं लेकिन नेक सन्दर्भों एवं स्थलों पर अन्य पुस्तकों से भी अमूल्य सहायता ली गई है। उन लेखकों हम अपने को ऋणी समझते हुए हृदय से उनका अभार प्रकट करते हैं। यह ठीक है कि ने अथक प्रयास किया है लेकिन ज्ञान की दृष्टि से हम तुच्छ हैं, इसलिए पुस्तक में मियों का होना स्वाभाविक है। हम त्रुटियों और कयिमों के लिये क्षमा चाहते हैं। आपके कारात्मक सुझाव सादर आमान्त्रित हैं।

–लेखक गण

SYLLABUS

Environmental Education

(Kurukshetra University, Kurukshetra,
M.D. University, Rohtak, Punjab University, University)

Time : 1.30 Hours Max. Marks : 50

1. Concept of Environmental Education and its Need and Objectives at Secondary School Level.
2. Methodologies of Environmental Education.
3. Curriculum Development in Environment Education.
4. Projects in Environmental Educational Issues.
5. Environment and Global Environmental Issues.
   (1) Components of environment
   (2) Concept of healthy environment and effort in this direction.
   (3) Global environment issues.
      (*i*) Conservation of environment : Govt. commitment in national and international fields.
      (*ii*) Depletion of zone layer.
      (*iii*) Global warming (greem house effect)
6. Environmental Pollution–
   (1) Soil Pollution
   (2) Water Pollution
   (3) Air Pollution
   (4) Noise Pollution
7. Miscellaneous Environmental Issues
   (1) Forests and their conservation
   (2) Wildlife and its conservation
   (3) Conservation of energy resources
   (4) Alternate sources of energy
   (5) Waste management
   (6) Population and environment
   (7) Indoor environment.

Punjab University Syllabus

Unit 1. Ecology and Environmental Education

(*a*) Introduction to Ecology and Environment–Cor
of Ecology and Environment, Biosphere, Commu
Population, Eco-System, Major Ecosystems of
World.

(*b*) Environmental Education–Meaning, Objectives, N
and Principles of Environmental Education

Unit 2. Pollution Control and Natural Resourcs Managemen

(*a*) Pollution Monitoring and Control–
Concept of Pollution, Types of Pollution–Air, S
Water and Noise Sources and Affects of Pollution,
Monitoring and Control.

(*b*) Natural Resource Conservation and Managemen
Definition, Classification of Natural resources, Wi
life Conservation especially endangered Species, th
conservation and management.

CONTENTS

Unit	Chapter	Page No.
Unit–I	**पर्यावरण शिक्षा की धारणा, आवश्यकता और माध्यमिक स्तर पर इसके उद्देश्य [Concept of Environmental Education and Its need and Objectives at Secondary Stage]**	3–22
	पर्यावरण शिक्षा की धारणा, आवश्यकता और माध्यमिक स्तर पर इसके उद्देश्य [Concept of Environmental Education and its Need and Objectives at Secondary Stage]	3
Unit–II	**पर्यावरण शिक्षा की विधियां [Methodologies of Environmental Education]**	23–64
	पर्यावरण शिक्षा की विधियां [Methodologies of Environmental Education]	25
Unit–III	**पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम का विकास [Curriculum Development in Environmental Education]**	65–82
	पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम का विकास [Curriculum Development in Environmental Education]	67
Unit–IV	**भारत और विदेशों में पर्यावरण से सम्बन्धित योजनाएं [Projects in Environment in India and Abroad]**	83–101
	भारत और विदेशों में पर्यावरण से सम्बन्धित योजनाएं [Projects in Environment in India and Abroad]	85
Unit–V	**पर्यावरण और विश्व पर्यावरण मुद्दे [Environment and Its Global Issues]**	103–133
	1. पर्यावरण के घटक [Ceomponents of Environment]	105
	2. स्वस्थ वातावरण (पर्यावरण) की धारणा और इस दिशा में प्रयास [Concept of Healthy Environment & Efforts in this Direction]	110
	3. मुद्दे के कारण [Global Environment Issues]	115

(1) वातावरण की सुरक्षा : सरकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वातावरण प्रतिबद्धता
[Conservation of Environment : Govt.'s Environment Commitment in National and International Field
(2) ओज़ोन परत की समाप्ति 129
[Delation of Ozone Layer]
(3) ग्रीन हाऊस प्रभाव (हरित भवन प्रभाव) या विश्व तापीकरण 132
[Green House Effect or Global Worming]

Unit–VI पर्यावरण प्रदूषण 135–171
[Environmental Pollution]

पर्यावरण प्रदूषण 137
[Environmental Pollution]

Unit–VII मिले जुले मिश्रित पर्यावरण मुद्दे 173–205
[Miscellaneous Environment Issues]

1. जंगल और उनका संरक्षण 175
[Forest and Their Conservation]
2. वन्य जीवन और इसका संरक्षण (सुरक्षा) 180
[Wild life and its Conservation
3. ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण 185
[Conservation of Energy Resources]
4. ऊर्जा के वैकल्पिक संसाधन (स्रोत) 193
[Alternate Sources of Energy]
5. अपशिष्ट (कूड़ा-ककरट) का उचित प्रबन्ध 195
[Waste Management]
6. जनसंख्या और पर्यावरण (वातावरण) 199
[Population and Environment]
7. निवास (घर) के अन्दर का वातावरण 204
[Indoor Environment]

Unit–VIII परिस्थितिकी (इकोलोजी) और पर्यावरण का परिचय 207–231
[Introduction to Ecology and Environment]

परिस्थितिकी (इकोलोजी) और पर्यावरण का परिचय 209
[Introduction to Ecology and Environment]

Unit–I

पर्यावरण शिक्षा की धारणा, आवश्यकता और माध्यमिक स्तर पर इसके उद्देश्य

[Concept of Environmental Education and Its Need & Objectives at Secondary Stage]

पर्यावरण शिक्षा की धारणा, आवश्यकता और माध्यमिक विद्यालय स्तर पर इसके उद्देश्य

[Concept Of Environmental Education And Its Need And Objectives At Secondary School Level]

पर्यावरण की शिक्षा से हमारा क्या तात्पर्य है? इससे पहले हमारे लिये पर्यावरण का क्या अर्थ है? यह जानना बहुत आवश्यक है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिये मुख्य रूप से वंशानुक्रम और वातावरण का महत्त्व होता है। लेकिन व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, "वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण की भूमिका व्यक्तित्व विकास में अहम् होती है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक या व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करना होता है। यही कारण है कि शिक्षा का मुख्य कार्य शिक्षण संस्थाओं में छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व विकास के लिए उचित वातावरण की व्यवस्था करना होता है। बालक के सर्वांगीण विकास करने के लिये शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, भावात्मक, नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वांछनीय वातावरण की आवश्यकता होती है। इसलिये हमारे लिये पर्यावरण (वातावरण) के अर्थ और इसके स्वरूप को समझना अत्यन्त आवश्यक है।"

पर्यावरण का अर्थ एवं परिभाषा
[Meaning and definition of Environment]

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से अगर हम देखें तो पर्यावरण दो शब्दों के मेल की दृष्टि से बना है परि+आवरण। अर्थात् हमारे चारों ओर का वातावरण, जिसके सभी सजीव व निर्जीव पदार्थ अंग हैं। इनमें मिट्टी, पानी हवा, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु सभी सम्मिलित होते हैं। धरती की सतह 9.6 किलोमीटर उपर हवा में एवं 9.6 किलोमीटर नीचे जमीन व जल में अर्थात् कुल 19.2 किलोमीटर (12 मील) का क्षेत्र जीव-मण्डल कहलाता है और इस क्षेत्र में 3.2 किलोमीटर (2 मील) के बीच के क्षेत्र में अधिकांश जीव रहते हैं। इसी मण्डल में उपलब्ध वायु, जल, वनस्पति एवं जीव-जन्तु मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं जो कि विभिन्न छोटे-छोटे क्षेत्रों में अलग-अलग रूप में होते हैं और किसी एक क्षेत्र में एक समान होते हैं अर्थात् किसी एक क्षेत्र की जलवायु एक समान होती है। कहने

का तात्पर्य यह है कि किसी एक क्षेत्र में उपस्थित विभिन्न सजीव व निर्जीव चीजों से उत्पन्न विभिन्न तत्त्व क्षेत्र के वातावरण में निश्चित मात्रा में विद्यमान रहते हैं और इनमें आपसी सन्तुलन होता है जिससे पर्यावरण में सन्तुलन रहता है। किसी एक की कमी या अधिकता का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है और पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ता है।

शब्दकोष के अनुसार पर्यावरण के अर्थ की दृष्टि से चारों ओर की उन सभी परिस्थितियों को शामिल करते हैं जो पशुओं, जीवों पौधों और व्यक्तियों के विकास, रहन-सहन, खान-पान और कार्य करने की शैलियों को प्रभावित करती है। इस कथन या अर्थ से मूल रूप से तीन प्रश्न सामने आते हैं। जो निम्न हैं-

1. चारों ओर क्या है?
2. किसके चारों ओर है?
3. क्या और कैसे घिरा हुआ है?

प्रथम प्रश्न का उत्तर है प्राणी मात्र और प्रमुख रूप से मनुष्य के चारों ओर भौतिक परिस्थितियां हैं।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में मनुष्य भौतिक परिस्थितियों से घिरा हुआ है।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में अन्तरिक्ष और भूमण्डल में जीव प्राणी वास करते हैं।

उपरोक्त तीनों प्रश्नों के उत्तर में यह कहना उचित और सार्थक होगा कि मानव को समझने के लिये उसके चारों ओर के भौतिक वातावरण, जीव धारियों और वनस्पतियों को समझना होगा। जिनसे वह घिरा हुआ है। यही कारण है कि शिक्षा का सम्बन्ध बालक और उसके वातावरण से जिसमें उसका विकास होता है। शिक्षा की दृष्टि से पर्यावरण से अभिप्राय उन सम्पूर्ण परिस्थितियों से है जिनसे वह घिरा हुआ है और जो उसकी दिन प्रतिदिन कार्य करने की शैली को प्रभावित करती हैं। एक समय था जब पर्यावरण का अर्थ संकीर्णता की दृष्टि से देखा जाता था और इस संकीर्ण अर्थ के अन्तर्गत भौतिक पक्षों और पृथ्वी (भूमि, वायु और जल) एवं जीव जगत को ही शामिल किया जाता था लेकिन आज के विकास एवं सभ्य युग में पर्यावरण के अन्तर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों और उनके प्रभाव को भी शामिल किया जाता है। मनुष्य की कार्य करने की शैली पर इस सभी पक्षों का बहुत प्रभाव पड़ता है क्योंकि मनुष्य प्राकृतिक मानव होने के साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है।

पर्यावरण की परिभाषा (Definition of Environment)-शिक्षाविदो और मनोवैज्ञानिकों ने पर्यावरण की परिभाषाओं का उल्लेख किया है जो निम्न है-बोरिंग (Boring) के अनुसार, "एक व्यक्ति के पर्यावरण में वह सब कुछ सम्मिलित किया जाता है जो उसको जन्म से मृत्यु तक प्रभावित करता है।" (A person's environment consists of the sum total of the stimulation which he receives from his conception until his death.)

सामान्य रूप से पर्यावरण का अर्थ मनुष्य के चारों ओर के वातावरण एवं परिस्तिथियों से होता है जिनसे वह घिरा होता है। पर्यावरण के अन्तर्गत दोनों प्रकार के जैविक तथा अजैविक पक्षों को लिया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निम्न निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है–

1. वातावरण एक बाह्य शक्ति है।

2. मनुष्य के चारों ओर इसका अस्तित्व होता है।

3. वातावरण मनुष्य की प्रकृति, उसके व्यवहार एवं विकास और अस्तित्व तक को भी प्रभावित करने में सक्षम है।

4. पर्यावरण मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

5. इसका प्रभाव जन्म से ही प्रारम्भ न होकर जन्म से पहले ही हो जाता है जब जीव गर्भ में पनपने लगता है।

6. इससे ना केवल वर्तमान पीढ़ी ही प्रभावित होती है बल्कि भावी पीढ़ी को भी प्रभावित करने में समर्थ है। उदाहरणतया जापान में हिरोशिमा और नागासाकी पर अणु बम्बों से जो प्रहार किया गया उसका प्रभाव केवल उस समय में रहने वाले लोगों तक सीमित न रहकर भावी पीढ़ियों पर भी पड़ा।

अन्सटैसी (Anastasi) के अनुसार, "व्यक्ति के वंशानुक्रम के अतिरिक्त वह सब कुछ पर्यावरण माना जाता है जो उसे प्रभावित करता है।" (The environment is everything that affects the individual Execpt his genes.)

हालैण्ड तथा डगलस (Holand and dugles) के अनुसार, "जीव जगत के प्राणियों के विकास, परिपक्वता, प्रकृति, व्यवहार तथा जीवन शैली को प्रभावित करने वाले बाह्य समस्त शक्तियों, परिस्थितियों तथा घटना को पर्यावरण में सम्मिलित किया जाता है और उन्हीं की सहायता से पर्यावरण का वर्णन किया जाता है।" (The term environment is used to describe in the aggregate, all the external forces, influences and conditions which affects the life, nature, behaviour and the growth, development and maturity of living organisms.)

सी.सी. पार्क (C.C.Park) (1980) के अनुसार, "मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय में जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है उसे पर्यावरण कहा जाता है।" (Environment regfers to sum total of conditions which surrounds man at a given point in space and Line.)

7. पर्यावरण प्रकृति तक सीमित न होकर अर्थात् प्राकृतिक वातावरण से ही केवल सम्बद्ध न होकर सामाजिक वातावरण से भी सम्बन्धित होता है।

8. पर्यावरण का सम्बन्ध मानव व्यवस्था, प्रबन्ध और विभिन्न संस्थाओं के क्रियाकलापों से भी होता है।

पर्यावरण का स्वरूप
[Nature of Environment]

पर्यावरण मुख्य रूप से दो घटकों में विभाजित होता है। ये दोनों घटक ही पर्यावरण के स्वरूप को निर्मित करते हैं। ये दोनों घटक निम्न हैं–

1. भौतिक अथवा जैयविक पर्यावरण (Physical or abatic)
2. जीव अथवा जैविक पर्यावरण (Biological or Biotic)

भौतिक घटक को तत्त्वों की विशेषताओं की दृष्टि से तीन भागों में बांटा जा सकता है जो निम्न हैं–

(क) ठोस पदार्थ

(ख) तरल पदार्थ

(ग) गैस पदार्थ

ठोस पदार्थ के अन्तर्गत पृथ्वी और भूमि है। तरल पदार्थ के अन्तर्गत जल आता है और गैस पदार्थों के अन्तर्गत वायु तथा वायु मण्डल को शामिल किया जाता है। इस प्रकार भौतिक वातावरण निम्न तीन भागों में विभाजित है अर्थात् इसके तीन वर्ग होते हैं–

(क) भू-मण्डल

(ख) वायु मण्डल

(ग) जल मण्डल

उपरोक्त वर्गों को उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है जैसे–भू-मण्डल को पहाड़, पठार और मैदान में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार वायु मण्डल और जल मण्डल का विभाजन भी होता है जिसका अध्ययन विस्तार से भूगोल में किया जाता है।

दूसरे घटक के पर्यावरण के अन्तर्गत जैविक तत्त्वों के रूप में पौधों, जानवरों और मनुष्यों को शामिल करते हैं। इस प्रकार जैविक पर्यावरण को दो भागों में बांटा जाता है। पौधों का पर्यावरण और जानवरों एवम् जीवों का पर्यावरण।

संसार में समस्त जीव एक सामाजिक एवं सामूहिक रूप में कार्य करते हैं और अपने कार्यों की पूर्ति करने के लिये पदार्थों की प्राप्ति करने के लिये पदार्थों की प्राप्ति भौतिक पर्यावरण से करते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया से आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार सामाजिक क्रियाओं से आर्थिक वातावरण उत्पन्न होता है। मनुष्य प्राकृतिक प्राणी होने के साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है। इसलिये वह अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक सभ्य, विवेकशील और कुशल प्राणी है। यही कारण है कि उसकी सामाजिक व्यवस्था बहुत ही सुव्यवस्थित और संगठित है। मानव जीवन के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू होते हैं–

भौतिक, सामाजिक और आर्थिक। इन तीनों की विशेषतायें भिन्न हैं परन्तु ये तीनों ही मानव जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने में अत्यन्त योगदान देते हैं।

1. भौतिक पक्ष (पहलू)–का सम्बन्ध भौतिक वातावरण के मूल तत्वों से होता है। जैसे भूमि, वायु, जल और भोजन आदि।

2. सामाजिक पक्ष (पहलू)–का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था, संस्थाओं की स्थापना, कानून व नियमों का बनाना और सुरक्षा के लिये उचित साधनों की व्यवस्था करना।

3. आर्थिक पक्ष (पहलू)–का सम्बन्ध मनुष्य की स्वयं की कुशलता से होता जिसके माध्यम से वह अपने प्रयासों से भौतिक और जैविक साधनों का अपने लिये सदुपयोग करता है।

मानव पर्यावरण की उपज भी है पर्यावरण का निर्माता भी है। मानव और पर्यावरण के मध्य अन्त: प्रक्रिया का होना स्वाभाविक है। इन दोनों की अन्त: प्रक्रिया होने से पदार्थो और ऊर्जा का स्वाभाविक रूप से संचालन होता रहता है। ऐसा होने से पर्यावरण में सन्तुलन बना रहता है।

भौतिक वातावरण का जलवायु के साथ सम्बन्ध होता है। अलग-अलग स्थान की अलग-अलग जलवायु और समय के अनुसार बदलती जलवायु, निवासियों की भाषा, स्वभाव, रहन-सहन, स्वास्थ्य और खान-पान को प्रभावित करती है। मनुष्य वातावरण के साथ किस प्रकार किस ढंग से समायोजन करे यह बात भी पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत आती है।

पर्यावरण के प्रकार
[Kinds of Environment]

शिक्षाविदो और पर्यावरण विशेषज्ञों ने वातावरण के कई प्रकारों का उल्लेख किया है। मुख्य रूप से पर्यावरण को दो प्रकार का बतलाया गया है–भौतिक वातावरण और सामाजिक वातावरण। परन्तु कर्टलीवन ने 'जीवन विस्तार' (Life space) के अन्तर्गत वातावरण के तीन प्रकार बताये हैं जो निम्न हैं–

1. भौतिक वातावरण (Physical Environment)
2. सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण (Social and cultural Environment)
3. मनोवैज्ञानिक वातावरण (Psychological Environment)

1. भौतिक वातावरण [Physical Environment]–इस प्रकार के वातावरण का सम्बन्ध जलवायु, मौसम और भौगोलिक परिस्थितियों से होता है। जिनसे मनुष्य प्रभावित होता है। मनुष्य जाति पर जलवायु का गहन प्रभाव पड़ता है। मनुष्य की शारीरिक बनावट, कार्य-क्षमता, रंग-रूप, आकार, भौगोलिक जलवायु के अनुसार होता है। ठण्डी जलवायु में रहने वाले लोग गोरे होते हैं और गर्म जलवायु में रहने वाले लोगों का रंग

काला होता है। ठण्डी जलवायु में रहने वाले लोगों की कार्य करने की क्षमता अधि
है और गर्म जलवायु में रहने वाले लोगों की कार्यक्षमता कम होती है। यही कार
विश्व के वही राष्ट्र अधिक विकसित हैं जिनकी जलवायु ठण्डी है। यहां
भौगोलिक जलवायु वंशानुक्रम को भी प्रभावित करने में सक्षम हैं।

2. सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण [Social and cultural Env
ment]–इसका सम्बन्ध व्यक्ति की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक परि
और प्रक्रियाओं से होता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और भावात्मक शक्तिय
के व्यवहार, कार्य-शैली और उसके जीवन को अधिक प्रभावित करती है। यह व
दो प्रकार का होता है। स्वतन्त्र समाज और बन्द समाज (Open society and c
society) स्वतन्त्र अथवा खुले समाज का वातावरण व्यक्ति के व्यक्तित्व के विक
दृष्टि से अच्छा माना जाता है जबकि बन्द समाज का वातावरण विकास की दृष्टि से
नहीं होता। इस लिये कक्षा वातावरण में स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिसमें बालक को
की दृष्टि से अधिक अवसर मिलता है और सीखने की क्षमताओं का पर्याप्त रूप से
होता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक और सांस्कृतिक वात
में स्वभाविक रूप से समायोजन करने का प्रयत्न करता है।

3. मनोवैज्ञानिक वातावरण [Psychological Environment]–कर्टल
ने समायोजन की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक वातावरण को अहं माना है। उनका कहना
भौतिक वातावरण और सामाजिक वातावरण एक विशेष समय और स्थान पर सभी म
के लिये एक जैसे होते हैं। लेकिन 'मनोवैज्ञानिक वातावरण' प्रत्येक व्यक्ति का अपन
अलग वातावरण होता है। जिसमें वह रहता है। कर्टलीविन ने इस वातावरण को
विस्तार (Life space) का नाम दिया है। मानव में जो व्यक्ति सक्रिय होता है
व्यक्तित्व की संज्ञा दी जाती है। मनुष्य के अन्दर का व्यक्ति मनोवैज्ञानिक वात
(परिवेश) ही होता है। जिससे मनुष्य का व्यवहार और कार्य शैली प्रभावित होत
मनुष्य का जीवन में कोई न कोई लक्ष्य होता है और वह लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयास
है और वह जब किन्हीं कारणों से लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल नहीं हो पात
समायोजन की दृष्टि से वह लक्ष्य में परिवर्तन कर लेता है। इस प्रकार मनोवैज्ञ
वातावरण के समायोजन की प्रक्रिया कुछ जटिल होती है जिससे मनुष्य प्रभावित हुए
नहीं रह सकता।

पर्यावरण का अन्य विषयों से सम्बन्ध
[Relationship of Environment with other Subjects]

पर्यावरण के स्वरूप एवं तत्त्वों की पहचान करने के बाद इसके अध्ययन क्षेत्र
इससे सम्बन्धित विषयों का पर्याप्त रूप से पता चला जाता है। पर्यावरण के घटकों अ
तत्वों को दो भागों में बांटा जा सकता है जो निम्न हैं–

1. भौतिक या अजैविक तत्त्व
2. जैविक तत्व

इस विभाजन को तालिका के माध्यम से इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

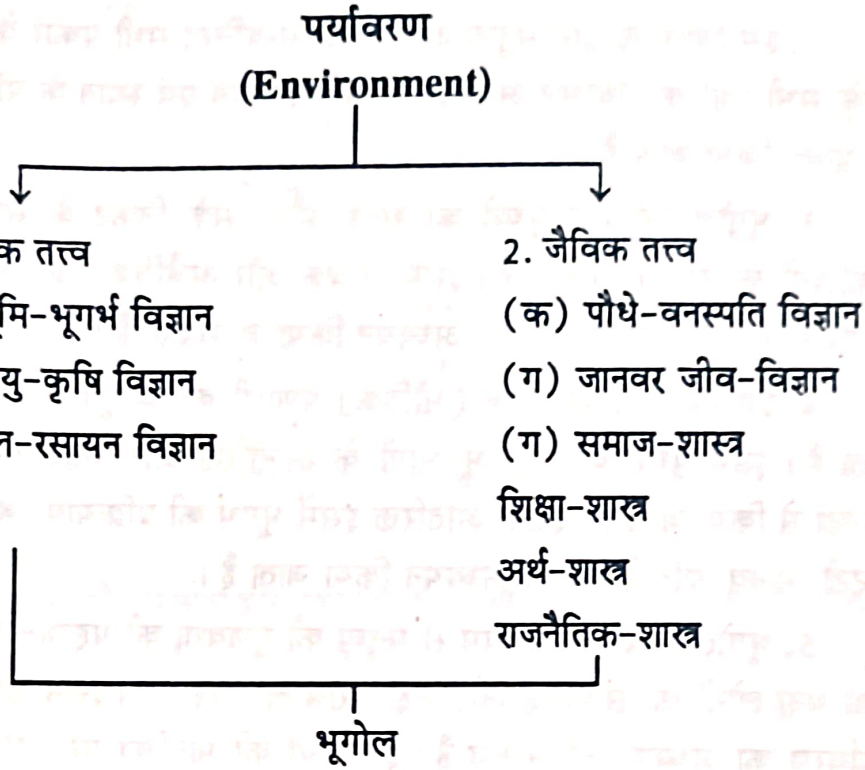

उपरोक्त तालिका के माध्यम से पता चलता है कि सभी दर्शाये गये अध्ययन विषयों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण के विशेष तत्व या तत्वों से है। कुछ विषयों का सम्बन्ध एक ही तत्त्व से है। जैसे वनस्पति विज्ञान और जीव–विज्ञान और अन्य विषयों के अन्तर्गत एक से अधिक तत्त्व आ जाते हैं। मनुष्य भी पर्या रण का ही एक अंग मात्र है क्योंकि वह पर्यावरण की ही उपज हैं और पर्यावरण को प्रभावित करने में समर्थ है। मनुष्य और पर्यावरण के बीच क्रिया–प्रतिक्रिया (अन्त: प्रक्रिया) होती है जिसका अध्ययन अनेक विषयों के अन्तर्गत होता है।

पर्यावरण एवं भूगोल
[Environment and Geography]

भूगोल विषय का अध्ययन क्षेत्र पृथ्वी और उस पर रहने वाला मनुष्य है। जब हम पर्यावरण भूगोल के क्षेत्र की बात करते हैं तो उसमें हमें पृथ्वी से सम्बन्धित भौतिक, प्राकृतिक, जैविक, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरण के सभी तत्त्वों का अध्ययन मनुष्य के सदर्भ में करते हैं। भूगोल एक ऐसा विषय है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण वातावरण का अध्ययन किया जा सकता है। ऐसा करना निम्न कारणों से सम्भव है–

1. यह एक ऐसा विज्ञान है जिसको हम समन्वित विज्ञान की संज्ञा देते हैं। इस

विज्ञान के माध्यम से पृथ्वी से सम्बन्धित सामाजिक विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञानों (भौतिक विज्ञानों) का समन्वय सहजता से किया जा सकता है।

2. इस विषय के द्वारा मनुष्य और उससे सम्बन्धित सभी प्रकार के पर्यावरणों और उनके सभी पक्षों का, विभिन्न अवस्थाओं विभिन्न समय एवं स्थान के परिवेश में समझाने का प्रयत्न किया जाता है।

3. भूगोल विषय ने पृथ्वी की सतह और उसके निकट के सभी मण्डलों और प्रणालियों का समन्वय किया है। इसमें जैविक और अजैविक पक्षों और उनमें क्रिया-प्रतिक्रिया (अन्त: प्रक्रियाओं) का अध्ययन किया जा सकता है।

4. इस विषय में प्राकृतिक (भौतिक) प्रणाली का विस्तृत रूप से अध्ययन किया जाता है। इसमें पृथ्वी के सभी भू-भागों के आन्तरिक और बाहरी तत्त्वों का अध्ययन गहनता से किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें भूगर्भ की प्रक्रियायें, जलवायु, वनस्पति, मिट्टी, मानव जातियों का भी अध्ययन किया जाता है।

5. भूगोल विषय के माध्यम से मनुष्य की गुणवत्ता की पहचान की जाती है। जैसे कहां धनी लोगों की संख्या है और कहां गरीब लोग रहते हैं। इसमें क्षेत्रीय और स्थानीय पर्यावरण का अध्ययन भी सम्भव है। इन तथ्यों को मानचित्र पर प्रदर्शित भी किया जा सकता है।

6. भूगोल के विशेषज्ञ भौतिक वातावरण की जटिलताओं का गहनता से अध्ययन करते हैं और उन्हें मानचित्रों पर अंकित करके उनके कारण और सम्बन्धों का उल्लेख भी करते हैं।

भूगोल से यह बात भी विदित होती है कि "पृथ्वी ने मनुष्य को बनाया है और मनुष्य ने पृथ्वी को वनाया है।" या यूं कहिये कि "मनुष्य पृथ्वी की देन है और पृथ्वी मनुष्य की देन है।" यह प्रक्रिया प्रारम्भ से ही चली आ रही है। यहां पर पृथ्वी से तात्पर्य प्राकृतिक (भौतिक) वातावरण से है जो मनुष्य की गतिविधियों और क्रिया कलापों को प्रभावित करता है। मनुष्य की क्रियाएं जैसे विज्ञान के अविष्कार, यातायात के साधन, औद्योगीकरण, जनसंख्या में वृद्धि, वनों का काटना और विकास की अनेक परियोजनाओं आदि ने पर्यावरण को प्रभावित किया है जो प्रतिकूल है और यह प्रतिकूलता प्रदूषण का कारण बनी है। इस प्रकार पर्यावरण और भूगोल का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

पर्यावरण और शिक्षा
[Environment and Education]

पर्यावरण विश्व के सम्पूर्ण पक्षों का दर्पण है अर्थात् विश्व के सभी पक्षों की झलक दर्शाता है। लेकिन इसके किसी विशेष समय और स्थान पर जो गतिविधि होती है उससे

सामाजिक और आर्थिक प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण की गुणवत्ता उसके भौतिक (प्राकृतिक) और जैविक पक्षों की मौलिकता पर निर्भर करती है। पर्यावरण के भौतिक एवं जैविक पक्ष सामाजिक और आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं और कभी-कभी विपरीत प्रभाव भी पड़ता है।

शिक्षा का सम्बन्ध मनुष्य और उसके व्यक्तित्व विकास, समाज के विकास एवं राष्ट्र विकास और उसके नवनिर्माण से है। इसके अन्तर्गत विकास की प्रक्रिया सम्बन्धित अनुदेशन एवं प्रशिक्षण प्रक्रियाओं को अध्ययन प्रमुख रूप से किया जाता है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक विकास करना है। जिसे हम सर्वांगीण भी कहते हैं। शिक्षक का कार्य शिक्षण करना और सिखाने हेतु कक्षा में उचित वातावरण पैदा करना होता जिससे छात्र-छात्राओं में वांछनीय परिवर्तन हो सके और भविष्य में वे देश के आदर्श नागरिक बन कर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सकें।

गेटस् ने अधिगम की परिभाषा इस प्रकार दी है-"जो अनुभवों एवं कार्यों को करने से व्यवहार परिवर्तन होता है, उसे अधिगम कहते हैं। अन्य किसी से व्यवहार परिवर्तन को अधिगम नहीं कहते है।" शिक्षक अपने विद्यार्थियों को अनुभव वातावरण और उससे सम्बन्धित परिस्थितियों के आधार पर ही करता है। शिक्षक कक्षा में शिक्षण करते समय अनेक प्रकार की क्रियायें करता है जिनके परिणाम स्वरूप कक्षा में सीखने की परिस्थितियां या वातावरण पैदा होता है और छात्र-छात्राएं सीखते हैं और सीखना एक प्रकार का अनुभव ही है। यह अनुभव ही उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करता है जिसे अधिगम का नाम दिया जाता है। पाठ्य वस्तु का प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप भौतिक वातावरण के साथ सम्बन्ध होता हैऔर जब शिक्षक छात्र-छात्राओं को उस पाठ्य वस्तु का ज्ञान कराता है तो कक्षा में सामाजिक एवं भावात्मक वातावरण पैदा होता है। जिससे विद्यार्थी प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना खुले स्थानों में की जाती है। जिससे छात्र-छात्राओं को उचित भौतिक वातावरण मिले और उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव न पड़ सके।

सामान्य शिक्षा की तरह पर्यावरण शिक्षा के दो रूप हैं। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक या हम इसको दूसरे ढंग से औपचारिक और अनौपचारिक रूप भी कह सकते हैं। पर्यावरण-शिक्षा का बोध छात्र-छात्राओं को औपचारिक और अनौपचारिक दोनों विधियों से कराया जा सकता है।

पर्यावरण की औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा का भी बहुत महत्त्व है। औपचारिक शिक्षा तो विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर तक सीमित होती है। जिनके द्वारा आने वाली पीढ़ी को पर्यावरण-शिक्षा देना सहज और स

है परन्तु जिन लोगों का प्रत्यक्ष रूप से इन संस्थाओं से सम्बन्ध नहीं है उनको भी पर्यावर की जानकारी देना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इन लोगों की अज्ञानता के कारण वातावर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है अर्थात् वातावरण प्रदूषित होता है। इस प्रकार पर्यावरण-शि कार्यक्रम को प्रौढ़ शिक्षा, सतत्-शिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों को सम्म किया जाये ताकि पर्यावरण शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।

पर्यावरण-शिक्षा का उद्देश्य
[Aims of Environmental Education]

पर्यावरण शब्द पर्यावरण के व्यापक रूप एवं क्षेत्र को दर्शाता है। मनुष्य का पर्यावर से अटूट सम्बन्ध है। 'मनुष्य पर्यावरण का उत्पादन होने का साथ-साथ उसका उत्पादक भ है।' [Man is creature and creator of Environment] वह जहां वातावरण जन्म लेता है वहां वातावरण को प्रभावित करने में भी समर्थ होता है। मनुष्य के उत्त स्वास्थ्य और सन्तुलित विकास के लिये वातावरण का स्वच्छ और सन्तुलित होना बहु आवश्यक है। मनुष्य ने इस धरती पर जब से जन्म लिया है वह तब से किसी न किसी रू में पर्यावरण (वातावरण) से घिरा हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव जीवन क पर्यावरण की परिस्थितियां पूर्ण एवं व्यापक रूप से प्रभावित करती आई हैं और भविष्य भी करती रहेंगी। मनुष्य प्रकृति के शुद्ध सात्विक और सन्तुलित पर्यावरण में मनुष्य दीर्घायु होने की इच्छा करता रहा है। परन्तु मनुष्य ने जब से प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया है तभी से वह प्रकृति के मनमोहक सुखों से भी हाथ धो बैठा है क्योंकि उसने प्रकृति के रूप को विकृत कर दिया है। जिसके कारण स्वास्थ्य के लिये कष्टदायक परिस्थितियों ने जन्म ले लिया है। संतुलित पर्यावरण (वातावरण) मानव के जीवन को सन्तुलित एवं सुचारु रूप से संचालित करता है, लेकिन जब पर्यावरण में निहित एक या अधिक तत्त्वों की मात्रा अपने निश्चित अनुपात से बढ़ जाती है तो पर्यावरण में विषैले तत्वों का समावेश होने लगता है। और ऐसा दूषित वातावरण प्राणियों एवं जन्तुओं के लिये अत्यन्त घातककारी सिद्ध होने लगता है। पर्यावरण में होने वाले इस विनाशकारी परिवर्तन को ही प्रदूषण कहते हैं। इस प्रकार प्रदूषण जलवायु अथवा भूमि के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में होने वाला कोई भी असन्तुलित एवं अनचाहा और घातक परिवर्तन है।

मनुष्य प्राकृतिक मानव के साथ-साथ सामाजिक प्राणी भी है क्योंकि उसका पालन पोषण समाज में ही होता है। इस दृष्टि से मुख्य रूप से पर्यावरण भी दो प्रकार का है- प्राकृतिक और सामाजिक। प्राकृतिक वातावरण में वायु, जल, पेड़-पौधों और विभिन्न प्रकार की जलवायु को सम्मिलित किया जा सकता है। सामाजिक वातावरण में मनुष्य के आपसी मानवीय सम्बन्धों को चर्चित किया जाता है। जैसे परिवार में पारिवारिक सदस्यों के आपसी सम्बन्ध पास पड़ोस के लोगों के साथ सम्बन्ध, व्यक्ति के व्यक्ति के साथ सम्बन्ध

समूह के समूह के साथ आदि। मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास भौतिक और सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरण से प्रभावित होता है। इस लिये दोनों प्रकार के पर्यावरणों का अध्ययन करना आवश्यक हो गया है। आज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि स्कूल स्तर पर छात्र-छात्राओं को औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा में पर्यावरण की शिक्षा को उचित स्थान दें।

पर्यावरण शिक्षा का अर्थ
[Meaning of Environmental Education]

सामान्य रूप से पर्यावरण की शिक्षा से तात्पर्य है कि ऐसी शिक्षा जिसके माध्यम से व्यक्ति को अपने आस-पास के वातावरण का ज्ञान हो जिससे वह चारों ओर से घर में या घर के बाहर घिरा रहता है और उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में व्यक्ति पर पड़ता है। पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित साहित्य की चर्चा अलग अस्तित्व के रूप सन् 1970 से पहले विश्व के किसी भी देश में नहीं हुई थी। परन्तु सातवें दशक के अन्त तक विश्व के अनेक देशों में पर्यावरण शिक्षा के कुछ संकेत अलग-अलग नामों से मिलते हैं, जैसे प्रकृति का अध्ययन, (Nature Study) क्षेत्रीय अध्ययन, (Field Study) स्थानीय अध्ययन, (local study) ग्रामीण अध्ययन (Rural study), बाहरी शिक्षा (Out door Education) आदि। इन सभी के अन्तर्गत प्राकृतिक पर्यावरण (वातावरण) का अलग से अध्ययन किया गया है। परन्तु अन्य विषयों के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित करके पर्यावरण का अध्ययन नहीं किया गया था। लेकिन बाद में बदलती परिस्थितियों के चलते यह अनुभव किया जाने लगा कि पर्यावरण केवल प्राकृतिक साधनों तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों और मानवीय साधनों से भी है। यही कारण है कि आज हम पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत भौतिक साधनों के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों और साधनों की भी चर्चा करते हैं। इसी धारणा को लेकर विश्व के बहुत से देशों ने अपनी राष्ट्रीय योजनाओं में संशोधन करने का प्रयास भी किया है। संसार के अनेक देशों ने स्कूल के पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा को भी शामिल किया है। लेकिन पर्यावरण शिक्षा को पाठ्क्रम का हिस्सा बनाने से पहले हमारे लिये पर्यावरण शिक्षा के अर्थ को गहनता से समझना अत्यन्त आवश्यक है।

आज के इस वैज्ञानिक एवं तकनीकी और बढ़ते तनाव के युग में संसार के शिक्षा शास्त्रियों और पर्यावरण के विशोषज्ञों का यह कहना है कि पर्यावरण प्रदूषण से सम्बन्धित कठिनाइयों पर काबू पाने और उनको जड़मूल से समाप्त करने के लिए स्वच्छ पर्यावरण से सम्बन्धी चेतना, जागरुकता और सजगता की विशेष रूप से आवश्यकता है। इस चेतना एवं सजगता का होना हमारी शिक्षा प्रणाली के सभी स्तरों पर अत्यन्त आवश्यक है।

अभी तक पर्यावरण शिक्षा की सर्वमान्य परिभाषा का उल्लेख नहीं किया जा सका है लेकिन पर्यावरण को समय-समय पर परिभाषित करने के प्रयास अवश्य ही किये जा रहे हैं। फिनिश नैशनल कमीशन (Finish National Commission 1974) के अनुसार "पर्यावरण-शिक्षा पर्यावरण-सुरक्षा के लक्ष्यों को लागू करने का एक तरीका है। पर्यावरण की शिक्षा विज्ञान की एक अलग शाखा या अध्ययन का विषय नहीं है। यह जीवन पर्यन्त एकीकृत-शिक्षा (Principle of life long integral Education) के सिद्धान्त के अनुसार लगातार दी जानी चाहिये।"

एक अन्य विस्तृत परिभाषा के अनुसार, "पर्यावरण-शिक्षा मनुष्य, उसकी संस्कृति और उसके भौतिक-परिवेश में अन्त: सम्बद्धता को समझने और उसकी प्रशंसा करने के लिये आवश्यक कौशलों और आवृत्तियों के विकास के लिये मूल्यों को पहचानने और धारणाओं (Concepts) को स्पष्ट करने की प्रक्रिया है। पर्यावरण-शिक्षा में पर्यावरण की गुणवत्ता से सम्बन्धित समस्याओं के बारे में निर्णय लेने और व्यवहार सम्बन्धी नियमों का स्वयं निर्धारण करने का अभ्यास भी सम्मिलित है।"

अमेरिका के शिक्षकों की कान्फ्रेंस (1968) की रिर्पोट के अनुसार, "विकसित हो रहे सामाजिक और भौतिक पर्यावरण में उनके प्राकृतिक मानव निर्मित, सांस्कृतिक आध्यात्मिक साधनों के तर्कसंगत प्रयोग एवं विकास के विषय में सुरक्षा तथा जागरुकता पैदा करना पर्यावरण के क्षेत्र में आता है।"

प्रो. कलेशोईनफील्ड (Prof Clayschoenfield) ने भी पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की चर्चा की है जो निम्न है-

1. पर्यावरण-शिक्षा मानव के वातावरण से सम्बन्ध रखती है उदाहरणार्थ जैसे जनसंख्या वृद्धि पर्यावरण पर प्रभाव डालती है।

2. पर्यावरण शिक्षा उस सम्पूर्ण वातावरण से सम्बन्धित होती है जिसमें वह रहता है।

3. पर्यावरण-शिक्षा में विभिन्न विषयों के पारस्परिक प्रभाव की झलक मिलती है।

4. पर्यावरण-शिक्षा मनुष्य की समस्याओं के दीर्घकालीन समाधान ढूंढने में सहायक होती है।

संयुक्त राष्ट्र (United States) पर्यावरण शिक्षा अधिनियम 1970 के अनुसार "पर्यावरण शिक्षा मनुष्य के प्राकृतिक और मानव निर्मित परिवेश के साथ सम्बन्ध की शैक्षिक प्रक्रिया है। इसमें जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण गन्दगी से सुरक्षा, परिवहन, तकनीकी ज्ञान और समग्र मानव पर्यावरण की शहरी और ग्रामीण योजना का सम्बन्ध सम्मिलित है।"

तबिलीसी घोषणा यू.एस.एस.आर. (U.S.S.R.) 1977 के अनुसार, पर्यावरण शिक्षा व्यापक जीवन पर्यन्त शिक्षा की रचना करती है जो कि तीव्रता से बदल रहे विश्व में

परिवर्तनों से प्रभावित होती है। शिक्षा व्यक्ति और समुदायों को, विश्व की जटिल समस्याओं तथा व्यक्ति और समुदायों के जैविक, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं में अन्त: क्रिया के परिणाम स्वरूप उत्पन्न समस्याओं के माध्यम से, जीवन के लिये तैयार करती है। पर्यावरण शिक्षा और मूल्यों के सुधार के लिये उत्पादक भूमिका के लिये आवश्यक कौशलों और दृष्टिकोणों या आवृत्तियों को प्रदान करती है।

सारांश में पर्यावरण-शिक्षा व्यक्ति की समस्या-समाधान की सक्रिय प्रक्रिया में उत्तरदायित्व की भावना के साथ और अच्छे भविष्य की आशा के साथ तन्मय करती है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण करने के पश्चात् हमें पर्यावरण-शिक्षा की मुख्य विशेषताओं का ज्ञान होता है जो निम्न हैं-

1. पर्यावरण की शिक्षा सतत् चलने वाली प्रक्रिया है।
2. पर्यावरण-शिक्षा जीवन पर्यन्त शिक्षा है।
3. पर्यावरण-शिक्षा का सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया के साथ अटूट सम्बन्ध है।
4. पर्यावरण शिक्षा औपचारिक विधि तक सीमित न होकर अन-औपचारिक विधियों के प्रयोग में लाने पर भी बल देती है।
5. पर्यावरण-शिक्षा विज्ञान की शिक्षा का ही भाग है न कि कोई अलग से शाखा है।
6. पर्यावरण-शिक्षा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर दी जानी चाहिये।
7. पर्यावरण-शिक्षा व्यक्ति को समस्याओं के समाधान हेतु उत्तरदायित्त्व निभाने के लिये प्रेरित करती है।
8. यह व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने में पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होती है।

पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता [Need of Environmental Education]

आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी के तीव्र गति से प्रगति करते युग में मनुष्य घर के अन्दर और बाहर घुटन को महसूस करने लगा है क्योंकि वह आज शारीरिक और मानसिक रूप से तनाव ग्रस्त है। इस तनाव का कारण है पर्यावरण का स्वच्छ न होना जिसमें वह घर के अन्दर और बाहर रह रहा है। घर के बाहर प्राकृतिक पर्यावरण में असन्तुलन बढ़ रहा है और घर के अन्दर सामाजिक पर्यावरण में असन्तुलन बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में मनुष्य के सन्तुलित विकास के लिये और घुटन एवं तनाव ग्रस्त जीवन से छुटकारा पाने के लिये पर्यावरण को स्वच्छ एवं साफ सुथरा बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्यावरण की शिक्षा आज के समय की सबसे बड़ी पुकार है। पर्यावरण की

शिक्षा बहुआयामी होने के साथ-साथ बहु-विषयीय भी है अर्थात् इसका सम्बन्ध बहुत से विषयों के साथ है इसका सम्बन्ध भौतिक विज्ञान के विषयों और सामाजिक विज्ञान के विषयों के साथ सहजता से स्थापित किया जा सकता रहा है। यह स्कूल पाठ्यक्रम के लगभग सभी विषयों में एकीकरण कर सकता है।

मनुष्य के जीवन पर विपरीत प्रभाव डालने वाली अनेक प्राकृतिक और सामाजिक शक्तियां है। वह अपने को सशक्त एवं सार्थक बनाये रखने के लिये इन शक्तियों से अपने को स्वतन्त्र कराना चाहता है। इस प्रक्रिया के चलते वह अपने जीवन को बेहतर बनाने हेतु अपनी वढ़ती हुई सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पर्यावरण के साधनों का दुरुपयोग या आवश्यकता से अधिक प्रयोग करने लगा है। इसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण में अत्यन्त गम्भीर असन्तुलन पैदा हो गया है वृक्षों को काटने से बहु मूल्य वनस्पति के बहुत से पौधे नष्ट हो गये हैं और भूमि के कटाव की गम्भीर समस्या के कारण बाढ़ें आने लगी हैं। आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग करने पर भी भूमि का कटाव और बाढ़ें समूचे विश्व में वृद्धि पर हैं। पृथ्वी पर रेगिस्तान की मात्रा बढ़ती जा रही है। उद्योगों के अधिक मात्रा में स्थापित होने से पर्यावरण मे कार्बनमोनो-आक्साईड (Carbon Monoxide) और सल्फर डाईक्साईड (Sulpher Dioxide) की प्रतिशत मात्रा में वृद्धि होनी प्रारम्भ हो गई है। कीट नाशक दवाईयों के अत्याधिक प्रयोग, उद्योगों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। उपरोक्त सभी अवांछनीय कारणों से पर्यावरण में असन्तुलन पैदा हो गया है। इस बढ़ते असन्तुलन को देखते हुए ही मनुष्य, समाज, राष्ट्र और समूचे विश्व ने प्रदूषण की समस्या और इसके समाधान के बारे में विचार करना प्रारम्भ किया है। इस प्रकार के विचारों के चलते स्टॉक होम (Stock Home) में सन् 1972 में राष्ट्र संघ (United Nations) ने मानव पर्यावरण पर एक कान्फैंस का आयोजन किया, जिसमें पर्यावरण को वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को सुधारने और बचाने की घोषणा की गई। इस घोषणा का एक परिणाम यह रहा है कि इसी कान्फ्रैंस की सिफारिश पर एक 'राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम' (United Nations Environment-programme or U.N.E.P.) की व्यवस्था की गई। दूसरी सिफारिश के अन्तर्गत अन्तराष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षा के लिये संयुक्त प्रयत्नों के द्वारा एक ठोस आधार तैयार किया गया। इस आधार की सहायता से पर्यावरण शिक्षा की धारणा का जन्म हुआ। इन सभी सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए यूनेस्को (UNESCO) ने पर्यावरण-शिक्षा का एक कार्यक्रम तैयार किया। यह कार्यक्रम पर्यावरण की शिक्षा की आवश्यकता को दर्शाता है। पर्यावरण की शिक्षा की आवश्यकता निम्न आवश्यक बातों को ध्यान में रखकर की गई है-

1. स्वस्थ जीवन के उच्च स्तर के लिये यह आवश्यक है कि पर्यावरण को प्रदूषण रहित बनाया जाये और इसके लिये प्रदूषणों की रोकथाम करना आवश्यक है। ऐसा करने के लिये पर्यावरण की शिक्षा अत्यन्त लाभप्रद है।

2. पर्यावरण की सुरक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये पर्यावरण-शिक्षा ही एक मात्र सार्थक एवं सशक्त साधन है।

3. राष्ट्रीय एकता, भाईचारे, आपसी प्रेम, सहयोग, सहनशीलता, देशप्रेम और विश्व बन्धुत्व की भावना के विकास के लिये पर्यावरण-शिक्षा बहुत सहायक है।

4. पर्यावरण सम्बन्धी जटिल समस्याओं के समझने और उनके समाधान हेतु पर्यावरण शिक्षा की आवश्कता है।

5. शिक्षक और छात्र-छात्राओं में स्वस्थ मानव रूचियों का विकास करने के लिये पर्यावरण शिक्षा लाभदायक है।

6. मानव मूल्यों में सुधार लाने और प्रभावपूर्ण एवं उपयोगी भूमिका निभाने के लिये पर्यावरण की शिक्षा-शिक्षक और विद्यार्थियों के लिये मूल्यवान है।

7. व्यक्ति के उत्तरदायित्त्व की भावना का विकास करने के लिये और उसको अपने बेहतर भविष्य बनाने के लिये भी पर्यावरण शिक्षा का देना जरूरी है।

8. मानव और उसके समुदायों के जैविक, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पहलुओं में अन्त: प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जो समस्याएं पैदा होती है उनका सामना करने के लिये पर्यावरण-शिक्षा पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होती है।

9. पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं को समझने के लिये व्यावहारिक कौशलों के विकास की आवश्यकता होती है। इसके लिये पर्यावरण की शिक्षा लाभप्रद होती है।

10. छात्र-छात्राओं को समाज में अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों को ध्यान में रखते हुए गतिशील भूमिका निभाने के लिये भी पर्यावरण की शिक्षा आवश्यक है।

11. शिक्षण प्रक्रिया में विभिन्न विषयों में और विषयों का वास्तविक जीवन की घटनाओं से समवाय एवं सम्पर्क स्थापित करने की दृष्टि से भी आधुनिक युग में पर्यावरण की शिक्षा एक आवश्यकता बन गई है।

12. पर्यावरण के प्रति मनुष्यों, समूहों और समाज के व्यवहार के नवीन दृष्टिकोण के विकास के लिये पर्यावरण की शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

13. शहर और ग्राम आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। इस बात के प्रति भी नागरिकों में जागरुकता लाने के लिये पर्यावरण शिक्षा का देना आवश्यक है।

14. पर्यावरण की समस्याओं के वास्तविक और आधारभूत कारणों और लक्षणों की खोज और उनको गहनता से समझने हेतु भी पर्यावरण की शिक्षा बहुत आवश्यक है।

पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य
[Objectives of Environmental Education]

पर्यावरण शिक्षा को मुख्य रूप से देखें तो पर्यावरण की सुरक्षा करना अर्थात् पर्यावरण को दूषित होने से बचाना ही पर्यावरण शिक्षा का उद्देश्य है। अन्य उद्देश्य तो इस मुख्य

उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) ने अपनी पुस्तक 'विद्यालय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा' में पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख किया है जो निम्न है–

1. जागरूकता (Awareness)–आज किसी भी प्रकार की समस्या का समाधान करने के लिये लोगों में जागरूकता का होना बहुत आवश्यक है। समस्या के सभी पहलुओं के प्रति जब लोगों में जागरूकता आ जाती है अर्थात् वे पूर्ण रूप से सजग और सचेत हो जाते हैं तो समस्या का समाधान करना सहज हो जाता है। यही कारण है कि उपरोक्त शिक्षा से सम्बन्धित संस्था (NCERT) ने पर्यावरण शिक्षा का प्रथम उद्देश्य लोगों में जागरूकता का विकास करना माना है। पर्यावरण की समस्या पूरे विश्व के लिए एक गम्भीर समस्या है। इसका समाधान पर्यावरण की समस्याओं की प्रति संवेदनशील होने और व्यक्तियों एवं समाज के समूहों में चेतना का विकास करने से सम्भव हो सकता है।

2. ज्ञान (Knowledage)–पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं का जब तक ज्ञान नहीं होगा तो उन समस्याओं का निवारण नहीं हो सकता। इसीलिए पर्यावरण की शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक समूहों और व्यक्तियों को पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं का बुनियादी ज्ञान दिया जाये और विभिन्न अनुभवों को प्राप्त करने में सहायता करनी चाहिये।

3. सकारात्मक दृष्टिकोण (Positive Attitude)–मानव जीवन के मूल्यों को पर्यावरण की समस्याओं से सम्बन्धित करके सामाजिक समूहों और व्यक्तियों में पर्यावरण में सुधार एवं सुरक्षा हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण को अभिप्रेरित करना चाहिये।

4. कौशलों का विकास (Development of Skills)–समाज के अनेक समूहों और व्यक्तियों को पर्यावरण की समस्याओं के ज्ञान और उनके समाधान हेतु उपयुक्त कौशलों को अर्जित करने के लिये सहायता करनी चाहिये जिससे समस्याओं का समाधान करना सुगम और सहज हो जाये।

5. प्रतिभागिता (Participation)–लोगों में जागरूकता के साथ-साथ प्रतिभागिता की भावना का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। समाज के इच्छुक लोगों को पर्यावरण की समस्याओं के कारणों और लक्षणों को जानने के लिये सभी स्तर पर भाग लेने के लिये अवसर दिये जाने चाहिये।

छात्र शिक्षकों के लिये पर्यावरण शिक्षा के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्न हैं–

1. छात्र-शिक्षक जो भावी राष्ट्र निर्माता हैं, उनमें सहयोग, सहनशीलता, धैर्य, भाईचारे, राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीय एकता और विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करना पर्यावरण शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

2. छात्र शिक्षकों में पर्यावरण शिक्षा के द्वारा उदार दृष्टिकोण का विकास किया जाना चाहिये जिससे मानवता का विकास हो।

3. भावी शिक्षकों को सामाजिक विज्ञान के ऐसे विषयों का ज्ञान कराया जाये जिसका सम्बन्ध भारत के इतिहास एवं संस्कृति से हो और उनको ऐसी बातों से भी अवगत कराया जाये जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान परिस्थितियों को वस्तुनिष्ठ होकर समझ सकें।

4. उनको भविष्य के विकासशील समाज के प्रति उत्तरदायित्व निभाने के लिये कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान कराया जाये जिससे पर्यावरण सुरक्षा में अपनी भूमिका सक्रिय रूप से निभा सके।

5. उनमें सामाजिक अध्ययन के माध्यम से ज्ञान एवं कौशलों का विकास किया जाये जिससे वे पर्यावरण शिक्षा हेतु साधन इकाईयों को तैयार कर सकें और उचित अनुदेशनों का ढांचा बना सकें।

पर्यावरण शिक्षा का क्षेत्र
[Scope of Environmental Education]

पर्यावरण शब्द अपने आप में व्यापक है और इसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। जब पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र की चर्चा की जाती है। तो इसके क्षेत्र से अभिप्राय-पाठ्यक्रम में शामिल किये हुए इसके उद्देश्यों, सप्रत्ययों से होता है। पर्यावरण-शिक्षा का क्षेत्र राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) ने पर्यावरण-शिक्षा के लिये अनुदेशनात्मक सामग्री की बात की है और परिषद् ने पर्यावरण-शिक्षा देने हेतु, 'पर्यावरण अध्ययन' शीर्षक को अपनाया है। पर्यावरण अध्ययन के अन्तर्गत निम्न पर्यावरणों के अध्ययन पर बल दिया गया है-

1. प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)
2. सामाजिक पर्यावरण (Social Environment)

1. प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)-प्राकृतिक पर्यावरण का सम्बन्ध प्रकृति द्वारा उपलब्ध करवाई हुई उन सभी वस्तुओं से है जिनका प्रयोग मनुष्य प्रत्यक्ष रूप या अप्रत्यक्ष रूप से करता है। प्राकृतिक वातावरण या पर्यावरण के अन्तर्गत विशेष रूप से निम्न बातों का अध्ययन कराया जाता है-

हम जहां रहकर जीवनयापन करते हैं उसके आस-पास का माहौल जिसका सम्बन्ध पौधे, पशु आवास, हमारी भोजन सामग्री, कपड़े, हमारे स्वास्थ्य और स्वच्छता, भूमि से सम्बन्धित साधन, भूमि का कटाव और इस पर नियन्त्रण, विभिन्न ऋतुओं का हमारे ऊपर अच्छा या बुरा प्रभाव, वस्तुओं का एक स्थान से दूसरे पर जाना, उत्पादन के लिये मशीनें, धरती और आकाश के बीच का स्थान और प्राकृतिक घटनायें एवं आपदायें। प्राकृतिक वातावरण की शिक्षा देने हेतु पर्यावरण से सम्बन्धित सामग्री और स्थानीय साधनों का प्रयोग किया जाता है।

2. सामाजिक पर्यावरण (Social Environment)–सामाजिक पर्यावरण का म्बन्ध व्यक्ति और उसके समाज से होता है। जिसमें वह जन्म लेता है और फलता-ूलता है। सामाजिक पर्यावरण में व्यक्ति और व्यक्ति के सम्बन्धों, व्यक्ति और समूह के म्बन्धों, और समूह और समूह के सम्बन्धों को चर्चित किया जाता है। इस प्रकार का र्यावरण सामाजिक सम्बन्धों की क्रिया एवं प्रतिक्रिया से प्रकट होता है। मानव जीवन के भी पहलू सामाजिक पर्यावरण घेरे में आ जाते हैं, जैसे राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, ाध्यात्मिक, सांस्कृतिक, शारीरिक और मानसिक आदि। मनुष्य प्राकृतिक होने के साथ-ाथ सामाजिक प्राणी भी है। वह समाज विहीन अवस्था में जीवित नहीं रह सकता। उसका विकास समाज में ही सम्भव है। इसलिये मानव के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, ार्मिक, मानसिक और आध्यात्मिक सम्बन्ध सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत ही आते हैं, जैसे पारिवारिक सम्बन्ध, समुदायगत, सम्बन्ध, विद्यालयगत सम्बन्ध, वर्गगत सम्बन्ध, जातिगत सम्बन्ध, धर्मगत सम्बन्ध, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आदि सामाजिक पर्यावरण के ही उदाहरण हैं।

विश्व में वैज्ञानिक आविष्कारों के दुरुपयोग के कारण आज का मानव मंगल ग्रह की ओर और मानवता जंगल की ओर जा रही है। समाज में मानव एवं नैतिक मूल्यों की गिरावट हो रही है। समाज में असुरक्षा, अशान्ति और अव्यवस्था का वातावरण बना हुआ है। इसका कारण है हमारा मानसिक दृष्टि से प्रदूषित होना। यदि मानवता को भावी संकट से उभारना है तो पर्यावरण को शिक्षा प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बनाना होगा। औपचारिक अनौपचारिक विधियों से पर्यावरण की शिक्षा वर्तमान विद्यालयों के भावी नागरिकों को दी जाये तो इस भयानक संकट से छुटकारा पाया जा सकता है।

प्राकृतिक और सामाजिक पर्यावरण के क्षेत्र (Scope) में अधिकतर विषय-वस्तु अधिकतर विभिन्न सामाजिक विज्ञानों जैसे इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, समाज शास्त्र और अर्थ शास्त्र से सम्बन्धित होती है। लेकिन पर्यावरण के क्षेत्र का अधिकतर भाग भूगोल के क्षेत्र से ही सम्बन्धित होता है। उदाहरण के लिये छात्र-छात्राएं जिस प्रान्त में रहते हैं उस प्रान्त का जीवन, भारत देश के कुछ भागों के लोगों का जीवन, राष्ट्र के प्राकृतिक साधन, उनका विकास और संसार के विभिन्न भागों के लोगों का जीवन और उनके विभिन्न धन्धों के बारे में जानकारी दी जा सकती है। प्राकृतिक पर्यावरण और सामाजिक पर्यावरण के क्षेत्रों का एक-दूसरे पर किस प्रकार से प्रभाव पड़ता है, यह बात भी पर्यावरण के क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। इन सभी बातों के अतिरिक्त पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में पर्यावरण से सम्बन्धित निम्न पहलुओं पर भी चर्चा करना आवश्यक हो जाता है–

1. जनसंख्या (बढ़ती जनसंख्या)
2. पृथ्वी या भूमि

3. प्राकृतिक साधन और उनका प्रयोग
4. भोजन, खुराक एवं अन्य खाद्य सामग्री
5. सुरक्षा
6. प्रदूषण
7. स्वास्थ्य
8. प्रकृति में मनुष्य की भूमिका
9. पर्यावरण का अवलोकन

उपरोक्त सभी पहलुओं का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में पर्यावरण शिक्षा से है और इनकी विस्तार से जानकारी देना पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

पर्यावरण के सिद्धान्त
[Principles of Environmental Education]

ताब्लिसी घोषणा के अनुसार पर्यावरण-शिक्षा देने हेतु कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है जो निम्न है-

1. पर्यावरण के सभी क्षेत्रों जैसे-प्राकृतिक और निर्मित, तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक को महत्त्व दिया जाना चाहिये।
2. पर्यावरण का ज्ञान नर्सरी स्कूल से लेकर जीवन पर्यन्त सभी स्तरों पर औपचारिक एवं अनौपचारिक माध्यमों से दिया जाना चाहिये।
3. पर्यावरण शिक्षण में विषयों के एक-दूसरे के तालमेल पर बल दिया जाये। प्रत्येक विषय का केन्द्र बिन्दु पर्यावरण होना चाहिए।
4. प्रमुख पर्यावरण-समस्याओं का निरीक्षण स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए ताकि छात्र-छात्राओं में दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों की पर्यावरण परिस्थितियों के बारें में भी सूझ-बूझ पैदा हो सके।
5. वर्तमान और भविष्य में पर्यावरण-शिक्ष पर्यावरण की परिस्थितियों पर केन्द्रित होनी चाहिये और इसका ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध होना चहिए।
6. पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के निदान और समाधान के लिये स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता और मूल्यों का विकास करना चाहिये।
7. विकास और अभिवृद्धि (Development and growth) के लिये पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को योजना कार्यों में शामिल किया जाना चाहिए।

8. सीखने वाले को अपने अधिगम-अनुभवों को नियोजित करने के लिये भूमिका प्रदान करनी चाहिये और निर्णय लेने और उनके परिणामों को स्वीकार करने के लिये अवसर प्रदान करने चाहिए।
9. पर्यावरण संवेदना, ज्ञान, समस्या-समाधान कौशलों और मूल्यों के स्पष्टीकरण को प्रत्येक आयु के साथ सम्बन्धित करना चाहिये परन्तु विद्यार्थी के अपने स्वयं के समुदाय की पर्यावरण संवेदना पर विशेष रूप से बल देना चाहिए
10. छात्र-छात्राओं को पर्यावरण-समस्याओं के वास्तविक कारणों की खोज करने में सहायता करनी चाहिए।
11. पर्यावरण-समस्याओं की जटिलताओं पर बल देना चाहिए और इस प्रकार आलोचनात्मक चिन्तन और समस्या-समाधान कौशलों के विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।
12. पर्यावरण शिक्षण के लिये विभिन्न अधिगम पर्यावरणों का उपयोग किया जाना चहिये।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. पर्यावरण शिक्षा से क्या तात्पर्य है? इसको पढ़ाने की क्यों आवश्यकता है?

   [What do you mean by Environmental Education? What is the need of its teaching?]
2. पर्यावरण शिक्षा को परिभाषित कीजिए। पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

   [Define Environmental Education. Write in detail the objectives of Environmental Education?]
3. पर्यावरण शिक्षा का सम्बन्ध मानव जीवन के सभी पक्षों से है। विवेचन कीजिए।

   [Environmental Education is related With all the aspects of human life, Discuss.]
4. पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र को चर्चित कीजिए और बताईये कि पर्यावरण शिक्षा किस प्रकार से प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित है?

   [Define the scope of Environmental Education and Explain how it is related with natural and social Environment?]

Unit–II

पर्यावरण शिक्षा की विधियां

[Methodologies of Environmental Education]

पर्यावरण शिक्षा की विधियां
[METHODOLOGIES OF ENVIRONMENTAL EDUCATION]

सामान्य रूप से विधि का सरल अर्थ है किसी भी कार्य को सुचार रूप से करने का सुव्यवस्थित ढंग। शिक्षा के क्षेत्र में 'विधि' शब्द का अर्थ शिक्षक की उन प्रक्रियाओं से लिया जाता है जिसके फलस्वरूप छात्र-छात्राएं सीखते हैं और ज्ञान की प्राप्ति करते हैं। इसलिए यह कहना उपयुक्त होगा कि विधि सीखने एवं ज्ञान प्राप्ति का साधन है और शिक्षक की शिक्षण सम्बन्धी अनेक प्रक्रियाओं का समूह है। शिक्षण विधि को अनुभव और परीक्षण द्वारा निखारा जाता है अर्थात् परिष्कृत (सुधार) किया जाता है।

पर्यावरण-शिक्षा में विधियों की आवश्यकता एवं महत्त्व
[Need and Importance of Methods in Environmental Education]

शिक्षण विधि के महत्त्व के सम्बन्ध में मुदालियर कमीशन (1952-53) ने अपनी रिर्पोट में लिखा है, "यहां तक कि सर्वोतम पाठ्यक्रम भी मृत तुल्य है जबकि उसके लिए उचित शिक्षण विधि तथा उचित शिक्षकों की व्यवस्था न हो।"

शिक्षण विधि की आवश्यकता और महत्त्व निम्न कारणों से है-

1. समय और शक्ति की बचत (Saves time and Energy)-किसी विधि के बिना शिक्षा देने से अध्यापकों एवं छात्रों के समय तथा शक्ति का बहुत अपव्यय होता है। शिक्षण विधि अध्यापक और छात्रों के समय और शक्ति की बचत करती है।

2. सरलता और रोचकता (Easy and Interesting)-पर्यावरण शिक्षा के सरल और रोचक बनाने के लिए शिक्षण विधि की आवश्यकता है। पर्यावरण शिक्षा उचित विधि के अभाव में कठिन और अरोचक विषय बन जाता है।

3. सफल शिक्षण (Successful Teaching)-पर्यावरण शिक्षा के सफल शिक्षण के लिए उपयुक्त विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

4. उद्देश्यों की पूर्ति (Achievement of aims)-उचित शिक्षण विधि के बिना पर्यावरण शिक्षा पढ़ाने के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती। यदि हम पर्यावरण शिक्षा पढ़ाने

के उद्देश्यों की सही अर्थों में पूर्ति करना चाहते हैं तो इन उद्देश्यों को सामने रखकर हमें ऐसे विधियों का चयन करना होगा। जिनके द्वारा पर्यावरण शिक्षा पढ़ाने के उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

शिक्षण विधियों का चयन करते समय ध्यान देने योग्य बातें [Point to be considered while Selecting Methods of Teaching]

1. बचत करने वाले (Saves time and Energy)–विधि समय और शक्ति की बचत करने वाली है।

2. सरल और रोचक (Easy and Interesting)–विधि पर्यावरण शिक्षा को रोचक बनाने वाली है।

3. प्रभावशाली शिक्षण (Effective Teaching)–विधि शिक्षण को प्रभावशाली बनाने वाली है।

4. उद्देश्य पूर्ति करने वाली (For achievements of Aims)–शिक्षण विधि ऐसी हो जिससे पर्यावरण शिक्षा पढ़ाने के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

5. व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार (According to individual Differences)–शिक्षण छात्रों की आयु, योग्यता, स्तर रूचियों के अनुसार हो।

6. सहायक सामग्री की उपलब्धता (Availability of teaching Aids)–शिक्षण विधि का चयन करते समय यह भी देख लेना चाहिए कि क्या उपयुक्त सहायक सामग्री उपलब्ध है।

7. उपयुक्त प्रयोग (Proper use)–शिक्षण विधि का चयन करते समय यह देख लेना चाहिए कि अध्यापक उस विधि का सही प्रयोग कर सके।

8. परिवर्तनशीलता (Flexibility)–शिक्षण विधि में लचक एवं परिवर्तनशीलता का होना आवश्यक है। शिक्षण विधि ऐसी होनी चाहिए जिसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सके। शिक्षण विधि कठोर अथवा अपरिवर्तित नहीं होनी चाहिए।

9. प्रेरणादायक (Encouraging)–शिक्षण विधि ऐसी हो जो छात्रों को विषय-वस्तु के लिए प्रेरित करे।

10. क्रियाशीलता (Workability)–पर्यावरण शिक्षा की शिक्षण विधि का चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इस में छात्र अधिक क्रियाशील हो।

पर्यावरण शिक्षा की शिक्षण विधियां [Teaching Methods of Environmental Education]

पर्यावरण शिक्षा की पाठ्यवस्तु की प्रकृति सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही हैं।

सलिए शिक्षा विधियों तथा शिक्षा आयामों का उपयोग किया जाता है। सैद्धान्तिक पक्ष की क्षा देने के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाया जाता है–

1. व्याख्यान विधि (Lecture Method)
2. सामूहिक वाद-विवाद (Group discussion)
3. सेमिनार तथा कार्यशाला (Seminar and workshop)
4. दूरदर्शी-शिक्षण-संचार माध्यम (Distance teaching use of Media)
5. शैक्षिक-पर्यटन (Educational Excursions)
6. नाटकीय-विधि (Dramatization Method)

इन विधियों का प्रयोग ज्ञान, बोध तथा सचेतना के लिये किया जाता है। व्यावहारिक क्ष, कौशल, कार्यक्षमता, अभिवृत्ति तथा मूल्यों का विकास करने के लिए निम्नलिखित धियों को प्रयोग किया जाता है–

1. लघु समूह योजना (Small group Project)
2. प्रदर्शन विधि (Demonstration Method)
3. सामूहिक वृहत योजना (Large Group Project)
4. अनुरूपण खेल विधि (Adjusted playway Method)
5. सामाजिक उत्पादक कार्य (Social Productive work) तथा
6. योजना विधि (Project Method)

उपरोक्त विधियों में से कुछ विधियों का प्रयोग तो पर्यावरण-शिक्षा के सैद्धान्तिक क्ष को लेकर किया जा सकता है और कुछ का प्रयोग पर्यावरण-शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष ा ज्ञान देने के लिए उपयुक्त रहता है।

ाषण एवं वाद-विवाद विधि
Lecture-cum-Discussion Method]

इस विधि का प्रयोग पर्यावरण शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्ष का ज्ञान कराने के लिए चित रहता है। भाषण अथवा कथन विधि को व्याख्यान विधि भी कहा जाता है। शिक्षण इस विधि का प्रयोग प्राचीन युग से होता आ रहा है।

ाषण अथवा कथन विधि का अर्थ
Meaning of Lecture Method]

सामान्यतय: भाषण विधि से तात्पर्य है शिक्षक की औपचारिक वार्ता। इसमें शिक्षक ौखिक रूप से पाठ्य वस्तु की अभिव्यक्ति करता है। छात्रों को भाषण के द्वारा पढ़ाया जाता । इसको कथनविधि (Telling Method) भी कहा जाता है। शिक्षक छात्रों को पढ़ाने

से पहले पाठ्य पुस्तकों को पढ़कर पाठ तैयार करता है। छात्र कक्षा में शान्तिपूर्वक सुनते हैं और लाभ उठाने का प्रयास करते हैं। पाठ में छात्रों की रखने के लिये शिक्षक अन्य समाग्री के प्रयोग से पाठ को रूचिकर बनाता जिज्ञासा जागृत करने के लिये बीच-बीच में प्रश्न भी पूछता है। जिससे छात्र प्र उत्तर देने के लिये अपने मस्तिष्क का प्रयोग करते हैं।

निम्न श्रेणियों में भाषण विधि
[Lecture method in Lower Classes]

छोटी कक्षाओं में इस विधि का रूप कहानियों और संवाद का होता है व बालक कहानियों में रूचि रखते हैं इसलिये छोटी कक्षाओं में छात्रों को जो भ हो, उसे कहानियों के रूप में रोचक ढंग से देना चाहिए। इसके लिये कक्षा में अनौपचारिक ताकि छात्र स्वतन्त्रतापूर्वक अपने सन्देह को दूर कर सकें और प्रश्न पूछ सकें।

उच्च कक्षाओं में भाषण विधि
[Lecture method in Higher Classes]

उच्च कक्षाओं में इसका रूप व्याख्यान का होता है। शिक्षक को विभिन्न सहायता से विषय का चयन करके भाषण तैयार करना चाहिए ताकि उसमें सभ रूप से आ जाएं। व्याख्यान पूरे विश्वास के साथ दिया जाये और छात्रों को सन्दे हेतु प्रश्न पूछने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। शिक्षक व्याख्यान की मुख्य चाकबोर्ड पर लिखता रहे और यह भी देखे कि छात्र उस सार को अपने कापियों

भाषण विधि का प्रयोग (Use of Lecture Method)–पर्यावरण शि लिए अध्यापक को भाषण विधि का प्रयोग निम्नलिखित कार्यों के लिये करन

1. संक्षिप्त करने के लिए (For Briefing)–यदि विषय वस्तु ब व्यापक होती है तो कुछ छात्र उसकी व्यापकता को देखकर घबरा जाते हैं। अ को व्यापक विषय वस्तु को संक्षिप्त करने के लिए भाषण विधि का प्रयोग कर

2. समय बचाने के लिए (For saving Time)–शिक्षक भाषण द्वा समय में विषय वस्तु प्रस्तुत कर सकता है। अत: भाषण का प्रयोग छात्रों का के लिए भी किया जाता है।

3. प्रेरणा देने के लिए (For Motivation)–किसी पाठ अथवा इकाई करने से पूर्व शिक्षक भाषण विधि का प्रयोग करके उस पाठ अथवा इकाई के बिन्दुओं का ज्ञान कर कर छात्रों को उस पाठ अथवा इकाई को सीखने के लि सकता है।

4. स्पष्ट करने के लिए (For Clarification)–शिक्षक पाठ सम्बन्धी धारणाओं, ान्तों तथा तकनीकी शब्दों को स्पष्ट करने के लिए भाषण विधि का प्रयोग कर ता है।

5. अतिरिक्त विषय-वस्तु प्रस्तुत करने के लिए (To present extra subject tter)–कभी-कभी पुस्तकों में किसी विषय से सम्बन्धित विषय-वस्तु संक्षिप्त अथवा र्याप्त होती है। उस समय शिक्षक भाषण द्वारा छात्रों को अतिरिक्त विषय वस्तु प्रदान कर ता है।

6. गृह कार्य के लिए (For home Assignment)–जो कुछ भी गृह कार्य किया उसकी उपयोगिता, वर्तमान विषय वस्तु से उसका सम्बन्ध तथा गृह कार्य कैसे किया आदि पर एक छोटा-सा भाषण दे देना अच्छा रहता है। अत: शिक्षक को गृह कार्य देते य भाषण का प्रयोग कर लेना चाहिए।

7. योजना अथवा क्रिया के लिए (For project Work)–छात्रों को किसी ना अथवा क्रिया के लिए तैयार करने के लिए भाषण विधि का प्रयोग किया जा ता है।

ण विधि के लाभ
dvantages of Lecture Method]

1. तर्क शक्ति का विकास (To develop thingking power)–भाषण विधि ों में तर्क शक्ति का विकास करती है। छात्र भाषण द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों का विश्लेषण विवेचन करते हैं और वाद-विवाद के द्वारा अपने सन्देहों को दूर करते हैं। इस प्रकार की तर्क शक्ति का विकास होता है।

2. समय तथा शक्ति की बचत (Saves time and Energy)–भाषण विधि समय तथा शक्ति की बचत होती है। भाषण द्वारा न्यूनतम समय में अत्याधिक ज्ञान ा जा सकता है।

3. विषय-वस्तु की स्पष्टता (Clarification of subject Matter)–भाषण ध द्वारा शिक्षक विषय-वस्तु को अधिक अच्छी तरह स्पष्ट कर सकता है। इस विधि विषय-वस्तु को उस समय तक बार-बार दुहराया जा सकता है तथा दूसरे शब्दों में क किया जा सकता है जब तक कि वह छात्रों को स्पष्ट न हो जाए।

4. साधारण पढ़ाई से अधिक प्रभावशाली (More effective than ordiry Teaching)–छपे हुए अक्षर कुछ कह नहीं सकते। वैस्ले (Wesley) ने कहा है, बोले हुए शब्द छपे हुए शब्दों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं'' शिक्षक आवाज उतार-चढ़ाव से हाव-भाव तथा मुख-मुद्राओं से उनको ऐसे अर्थ देता है जो वह

बतलाना चाहता है उसका भाषण छपी हुई पुस्तक से अधिक प्रभावशाली तथा
सकता है।

5. व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान (For individual Differences)
विधि में शिक्षक तथा छात्र आमने-सामने बैठकर ज्ञान का आदान-प्रदान करते
आदान-प्रदान में वाद-विवाद, बातचीत और तर्क-वितर्क से छात्रों की कठिनाइय
की जा सकती है तथा व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पूरा ध्यान रखा जा सकता है।

6. छात्र और अध्यापक की सक्रियता (Active Participations of
and Teacher)-भाषण विधि में कुछ सीमा तक छात्र और अध्यापक दोनों
रहते हैं। अध्यापक छात्रों से प्रश्न पूछता है तथा छात्र अध्यापक के सम्मुख समस्या
करते हैं।

7. बहुगिनती में शिक्षा (Students can be Education in Large
bers)-भाषण विधि से अध्यापक छात्रों की बड़ी संख्या को व्यवस्थित रूप से
देकर ज्ञान प्रदान कर सकता है।

8. बहुपक्षीय प्रयोग (Multi-purpose use for Aspects)-भाषण वि
विभिन्न उद्देश्यों के लिये प्रयोग किया जा सकता है, यथा (1) विषय-वस्तु को
करने के लिए (2) समय बचाने के लिए (3) प्रेरणा देने के लिए (4) विषय-व
स्पष्ट करने के लिए (5) अतिरिक्त विषय वस्तु प्रस्तुत करने के लिए (6) गृह
लिए (7) योजना अथाव क्रिया के लिये तैयार करने के लिए।

भाषण विधि के दोष
[Disadvantages of Lecture Method]

भाषण विधि के दोष निम्नलिखित हैं-

1. अस्वाभाविक विधि (Unnatural Method)-भाषण विधि छात्रों
सीखने की अस्वाभाविक विधि मानी जातीहै। इस विधि में छात्र निष्क्रिय श्रोता बन
जाते हैं। अध्यापक भाषण देता रहता है और छात्र निर्जीव मूर्ति के समान भाषण सुन
है। कई बार वह मानसिक रूप से कक्षा में उपस्थित ही नहीं रहता। वह कहीं
सोचता रहता है।

2. व्यावहारिक पक्ष की अवहेलना (Ignores practical Aspects)
विधि विषय के सैद्धान्तिक ज्ञान पर अधिक बल देती है। इसमें ज्ञान के व्यावहारिक
महत्व नहीं दिया जाता है। यह विधि 'क्रिया' को कोई स्थान नहीं देती। यह विधि
सीखने' (Learning by doing) के सिद्धान्त की अवहेलना करती है।

3. अस्थायी ज्ञान (Temporary Knowledge)–भाषण विधि द्वारा प्रस्तुत किया हुआ ज्ञान अधिक स्थायी नहीं होता। क्योंकि इसका सम्बन्ध क्रिया से नहीं है। छात्र इस प्रकार के ज्ञान को शीघ्र ही भूल जाता है।

4. अध्यापक पर अधिक बोझ (More burden on Teacher)–भाषण विधि शिक्षक पर अदिक बोझ डालती है। भारत में अध्यापक को 7-8 भाषण प्रतिदिन देने पड़ते हैं। यह कठिन कार्य है। अध्यापक इतने अधिक भाषण न तो सरल एवं रोचक ढंग से तैयार कर सकता है और न ही इतना अधि प्रभावशाली ढंग से बोल सकता है।

5. शुष्क और उक्ता देने वाली (Unintersting and Boring)–भाषण विधि शुष्क और उक्ता देने वाली है। इससे पढ़ाई नीरस और बोझिल बन जाती है।

6. वास्तविक शिक्षण का अभाव (Lack of real Teaching)–भाषण विधि से पाठ्यक्रम तो समाप्त किया जा सकता है परन्तु इस विधि से वास्तविक शिक्षण नहीं हो पाता।

7. मौलिक चिन्तन का अभाव (Lack of basic Thinking)–भाषण विधि में छात्रों को मौलिक चिन्तन करने का अवसर नहीं प्राप्त होता है। अध्यापक जो कुछ विषय-वस्तु प्रस्तुत कर देता है उसी से छात्र सन्तोष करने लगते हैं। वे स्वाध्याय (Self-Study) की आदत का भी विकास नहीं कर पाते।

8. निम्न कक्षाओं में अनुपयोगी (Not useful in lower Classes)–भाषण विधि का निम्न कक्षाओं में सफलतापूर्वक प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस विधि का प्रयोग उच्च स्तर पर ही किया जा सकता है।

भाषण विधि प्रयोग करने के सुझाव
[Suggestions for using the Lecture Method]

पर्यावरण शिक्षा देने के लिए भाषण विधि का प्रयोग करते समय शिक्षक को कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना चाहिए। वे बातें निम्नलिखित हैं–

1. तैयारी (Preparation)–शिक्षक भाषण को पूर्ण रूप से तैयार करके लाये। उसे भाषण की विषय-वस्तु का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिए ताकि वह प्रश्न पूछे जाने पर सही स्पष्टीकरण दे सके।

2. रूपरेखा तैयार करना (Preparing Outline)–भाषण देने से पूर्व भाषण की रूपरेखा तैयार कर लेनी चाहिए। इससे शिक्षक को मुख्य-मुख्य बिन्दु प्रस्तुत करने की सुविधा रहेगी।

3. भाषा का विशेष ध्यान (Special stress on Language)–शिक्षक को भाषण की भाषा का विशेष ध्यान रखना चाहिए। भाषा न तो अधिक निम्न स्तर की हो और न ही अधिक जटिल। भाषा विषय वस्तु के मुख्य बिन्दुओं को ही न दबा दे।

4. शान्त भाव एवं धीमी गति (Lecturing Peacefully with mod Speed)–शिक्षक को शान्त भाव एवं धीमी गति से भाषण देना चाहिए जिससे छात्र वस्तु को अच्छी तरह समझ सके। बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए रूक भी जाना च

5. उच्चारण एवं हाव-भाव का ध्यान (Stress on pronunciation Posture)–शिक्षक को भाषण करते समय शब्दों के सही उच्चारण एवं हाव-भा विशेष ध्यान रखना चाहिए।

6. छात्रों की भाव-मुद्रा का ध्यान (Observation of students Postu भाषण देते समय शिक्षक को छात्रों की भाव मुद्रा को देखते रहना चाहिए। छात्रों की मुद्रा शिक्षक को बतला सकती है कि छात्र उसके भाषण को कहां तक समझ रहे हैं।

7. उदाहरणों एवं कहानियों का प्रयोग (Use of examples and Stories)–उ जहां आवश्यक हो उन स्थानों पर शिक्षक को उदाहरणों एवं कहानियों का प्रयोग करना चा

8. सहायक सामग्री का प्रयोग (Use of teaching Aids)–आवश्यक स पर चित्रों, मानचित्रों, मॉडलों एवं अन्य सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।

9. श्यामपट का प्रयोग (Use of Black Board)–भाषण देते समय श्याम का उचित एवं भली भान्ति प्रयोग करना चाहिए। भाषण के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं श्यामपट पर लिखना चाहिए।

10. प्रश्नोत्तर (Question-Answer)–भाषण देते समय वह छात्रों से बी बीच में प्रश्न पूछता रहे जिससे उसे पता चलता रहे कि छात्र उसके भाषण को समझ रहे अथवा नहीं।

11. संदेह दूर करना (To clear Doubts)–शिक्षक को छात्रों की कठिनाई और संदेहों को दूर करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

12. बातचीत के रूप में भाषण (Lecturing through Conversation) स्वतन्त्रतापूर्वक बातचीत के रूप में भाषण देने का प्रयत्न करना चाहिए।

13. स्तरों का ध्यान (Keep in mind the level of the Students)–भाष देते समय सभी स्तरों के छात्रों का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

14. परीक्षा को उपयुक्त स्थान (Importance to Examination)–भाष विधि में परीक्षा को भी उपयुक्त स्थान प्रदान करना चाहिए।

वाद-विवाद विधि
[Discussion Method]

वर्तमान समय में आधुनिक शैक्षिक विचारधारा के अनुसार छात्र को निष्क्रिय श्रोत नहीं माना जाता बल्कि सीखने की प्रक्रिया में उसको सक्रिय रखने पर बल दिया जाता है

वह ज्ञान स्थायी रहता है जिस ज्ञान को छात्र स्वयं क्रिया करके प्राप्त करता है। वाद-विवाद अथवा तर्क-वितर्क विधि द्वारा छात्र को सक्रिय बनाये रखने की दृष्टि से ज्ञान का प्रयोग किया जाता है।

वाद-विवाद विधि का अर्थ
[Meaning of discussion Method]

निम्नलिखित परिभाषाओं से वाद-विवाद विधि का अर्थ स्पष्ट हो जाता है-

1. **योकम एवं सिम्पसन** (Yokam and Simpson)-का विचार, "वाद-विवाद बातचीत का एक विशिष्ट रूप है। इसमें सामान्य बातचीत की अपेक्षा अधिक विस्तृत एवं विवेकयुक्त विचारों का आदान-प्रदान होता है। सामान्यत: वाद-विवाद में महत्त्वपूर्ण विचारों एवं समस्याओं को शामिल किया जाता है।"

2. **थामस डब्ल्यू रॉस्की** (Thomas R. Ronski)-का विचार , "अध्ययन की जाने वाली समस्या अथवा प्रकरण में निहित सम्बन्धों का तर्क युक्त विवेचन ही वाद-विवाद है।"

3.**जेम्स एम. ली.** (James M. Lee)-का विचार, "वाद-विवाद एक सामूहिक क्रिया है जिसमें अध्यापक एवं छात्र सहयोगात्मक रूप से किसी समस्या अथवा प्रकरण पर वार्तालाप करते हैं"

उपरोक्त परिभाषाओं के प्रकार में यह कहा जा सकता है कि वाद-विवाद शिक्षण की वह विधि है जिसमें अध्यापक एवं छात्र मिल-जुल कर स्वतन्त्रतापूर्वक सामूहिक रूप में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। वाद-विवाद में अध्ययन तथा तैयारी, विषय-वस्तु का चयन एवं गठन, विचारों का आदान-प्रदान तथा प्रक्रिया सभी कुछ आ जाता है। वाद-विवाद का प्रमुख लक्ष्य छात्रों को 'सामूहिक चिन्तन' अथवा 'सामूहिक निर्णय' की शिक्षा देना है।

वाद-विवाद के रूप (Forms of Discussion)-वाद-विवाद के निम्नलिखित रूप हैं-

1. **औपचारिक वाद-विवाद** (Formal Discussion)-औपचारिक वाद-विवाद में निश्चित नियमों का पालन करना आवश्यक है। इसमें प्रत्येक कार्य क्रमानुसार एवं विधि पूर्वक किया जाता है। ऐसे वाद-विवाद के लिए छात्र में से सभापति मन्त्री तथा अन्य अधिकारी चुनते हैं। इनके निर्देशन में छात्र सभी कार्यों को निर्धारित नियमों के अनुसार करते हैं। पेनल फोरम, सिम्पोजियम आदि औपचारिक वाद-विवाद के विभिन्न रूप हैं।

2. **अनौपचारिक वाद-विवाद** (Informal Discussion)-अनौपचारिक वाद-विवाद में किसी विधि अथवा निर्धारित नियमों का पालन नहीं किया जाता। इस प्रकार के

वाद-विवाद में छात्र किसी प्रश्न या समस्या पर अध्यापक के निर्देशन में स्वतन्त्रता विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।

वाद-विवाद के प्रमुख अंग (Essential Constituents of Disscussio

वाद-विवाद के प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं-

1. **नेता** (Leader)-शिक्षक स्वयं ही समूह का नेता होता है। वही वाद-वि का आयोजन करता है वह समस्या प्रस्तुत करता है, उद्देश्यों पर प्रकाश डालता है, सम्बन्धित सामग्री के स्रोतों को बतलाता है तथा वाद-विवाद का निर्देशन करता है। उस कार्य यह भी देखना है कि सभी छात्र वाद-विवाद में भाग ले रहे हैं। उसे सावधानी पू स्थिति का अवलोकन करना चाहिए।

2. **छात्रों का समूह** (Group of Students)-यहां समूह का अर्थ कक्षा के छ हैं। कक्षा में छात्रों का बौद्धिक स्तर स्वभाव तथा रूचियां भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ धी गति से सीखने वाले छात्र होते हैं, तथा कुछ तीव्र गति से। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि व सभी प्रकार के छात्रों को वाद-विवाद में भाग लेने के लिए उत्साहित करे। कक्षा के म छात्रों के विचारों की भी ध्यान से सुनना चाहिए तथा उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए।

3. **समस्या अथवा विषय** (Problem or Topic)-वाद-विवाद के लिये वि शिक्षक तथा छात्रों के द्वारा मिलकर चुना जाना चाहिए। जो समस्या चुनी जाए व वास्तविक, क्रियात्मक, तथा छात्रों की योग्यताओं के अनुकूल होनी चाहिए। यह शैक्षि सम्भावनाओं से ओत-प्रोत होनी चाहिए। यदि समस्या क्रिया से सम्बन्धित होंगी तथा छ उसमें रूचि लेंगे। समस्या को यथासम्भव निश्चित एवं स्पष्ट कर लिया जाना चाहिए।

4. **सामग्री** (Content)-सामग्री का अर्थ है अध्ययन के लिए आवश्यक विषय वस्तु। इसमें चित्र, मानचित्र, चार्ट, आकृतियां एवं अन्य श्रव्य-दृश्य सहायक सा शामिल हैं। विषय-वस्तु के प्रतिपादित सत्यों के बारे में किसी प्रकार का वाद-विवाद न किया जा सकता परन्तु उनकी सत्यता को सिद्ध किया जा सकता है। मूल्यों के सम्बन्धि विभिन्न तत्त्वों पर वाद-विवाद भी किया जा सकता है तथा छात्र अपने सत्य स्व प्रतिपादित कर सकते हैं।

5. **मूल्यांकन** (Evaluation)-वाद-विवाद के अन्त में इस बात का मूल्यांक करना चाहिए कि वाद-विवाद निर्धारित उद्देश्य प्राप्त करने में कहां तक सफल रहा है विषय-वस्तु के ज्ञान में कितनी वृद्धि हुई है? वाद-विवाद में कहां तक कठिनाईयां आई है क्या कमियां रहीं है? क्या प्रत्येक छात्र ने भाग लिया? क्या कुछ ही छात्र वाद-विवाद छाये रहे? सफल वाद-विवाद वही माना जाता है जिससे छात्रों के विचारों में वांछनी परिवर्तन हो।

वाद-विवाद विधि के लाभ
[Advantages of Discussion Method]

वाद-विवाद विधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. सामूहिक निर्णय (Group Decision)–वाद-विवाद द्वारा छात्र सामूहिक रूप से निर्णय करना सीख जाते हैं। वाद-विवाद सामूहिक रूप से निर्णय लेने की एक प्रकिया है।

2. ज्ञान की प्राप्ति (To gain Knowledge)–वाद-विवाद विधि ज्ञान प्राप्ति का एक ढंग है। विभिन्न विचारों को सुनने से ज्ञान में वृद्धि होती है।

3. सहयोग की भावना का विकास (Development of the feeling of Co-opartion)–पर्यावरण शिक्षा के लिए वाद-विवाद विधि बहुत लाभदायक है। वाद-विवाद द्वारा छात्र-छात्राओं में सहयोग एवं सहनशीलता की भावना का विकास होता है। वे मिलजुल कर कार्य करना सीखते हैं।

4. तर्क शक्ति का विकास (Development of reasoning Power)–इस विधि द्वारा छात्रों में तर्क शक्ति एवं अन्य बौद्धिक शक्तियों का विकास होता है।

5. प्रतियोगिता की भावना का विकास (Development of the feeling of Competition)–छात्रों में सहयोगितापूर्ण प्रतियोगिता की भावना का विकास होता है।

6. स्वाध्याय का विकास (Development of habit of self-Study)–इस विधि द्वारा छात्र-छात्राओं में स्वाध्याय एवं स्वतन्त्र अध्ययन करने की आदत का विकास होता है।

7. सोद्देश्यपूर्ण अध्ययन (Purposeful Study)–यह विधि छात्रों को सोद्देश्यपूर्ण अध्ययन करना सिखलाती है।

8. व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित (Based upon the principle of individual Differences)–यह विधि व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर आधारित है। सभी छात्र-छात्राओं को उनके स्तर के अनुसार वाद-विवाद का विषय दिया जाता है।

9. क्रियाशीलता पर आधारित (Based upon Workability)–यह विधि क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित है। यह छात्र को क्रियाशील बनाए रखती है। वह सीखने की क्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने वाला बन जाता है। सक्रियता से सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है।

10. विषय-वस्तु का चयन एवं संगठन (Selection and organisations of Subject-matter)–यह विधि छात्रों को विषय-वस्तु का चयन एवं संगठन करना सिखाती है।

वाद-विवाद के दोष
[Disadvantages of Discussion Method]

वाद-विवाद विधि जहां पर्यावरण शिक्षा के लिए लाभदायक है। वहां उसके कुछ दोष भी हैं। वे दोष निम्नलिखित हैं–

1. कुछ ही छात्रों का एकाधिकार (Monoply of a few Students)–इस विधि में थोड़े से चतुर एवं प्रतिभाशाली छात्र वाद-विवाद पर प्रभुत्व जमाए रखते हैं। बाकी छात्र सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते। इसलिए छात्रों को सीखने के समान अवसर नहीं मिलते।

2. समय का अपव्यय (Wastage of Time)–इस विधि का प्रयोग करने से छात्रों का बहुत सा समय व्यर्थ ही चला जाता है। कभी-कभी कक्षा में निरर्थक वाद-विवाद होने लगता है और छात्रों का समय नष्ट होता है।

3. छोटी कक्षाओं के लिए अनुपयुक्त (Not proper for lower Classes)-यह विधि छोटी कक्षाओं के छात्रों के लिए उपयुक्त नहीं है। इस विधि का संचालन उच्च कक्षाओं में ही सम्भव हो सकता है।

4. लज्जाशील एवं मंद बुद्धि छात्रों के लिए अनुपयुक्त (Not proper for shy and slow Learners)–लज्जाशील एवं मन्दबुद्धि छात्र इस विधि से विशेष लाभ नहीं उठा पाते।

5. सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का शिक्षण असम्भव (Complete syllabus can not be Taught)–इस विधि द्वारा सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का शिक्षण सम्भव नहीं है। सभी प्रकरणों के लिए इस विधि का प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता।

6. कुशल अध्यापकों का अभाव (Lack of skilled Teachers)–इस विधि को सफलतापूर्वक चलाने के लिए योग्य एवं कुशल अध्यापकों का अभाव है। सभी अध्यापक सफलतापूर्वक वाद-विवाद विधि का संचालन नहीं कर पाते।

7. व्यक्तिनिष्ठ निष्कर्ष (Subjective Conclusion)–इस विधि में निष्कर्ष निकालने एवं मूल्यांकन करने में व्यक्तिनिष्ठता की सम्भावना रहती है।

वाद-विवाद विधि अपनाने के कुछ सुझाव
[Some suggestions for using Discussion Method]

वाद-विवाद विधि अपनाने के कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं–

1. समस्या का चयन (Selection of Problem)–समस्या का भली-भान्ति चयन किया जाये।

2. पूर्व तैयारी (Pre-preparation)–वाद-विवाद शुरु करने से पहले सभी आवश्यक तैयारियां कर ली जाएं उचित योजना बना लेनी चाहिए तथा बैठने के लिए उचित

व्यवस्था कर लेनी चाहिए। सर्वोत्तम व्यवस्था यह है कि सभी छात्र एक-दूसरे को देख सकें। इसके लिए अर्ध-चन्द्राकर रूप में छात्रों के बैठने की व्यवस्था करनी चाहिए। अध्यापक को ऐसे स्थान पर बैठना चाहिए यहां से वह सभी छात्रों को देख सके। वाद-विवाद शुरु करने से पहले यह आवश्यक है कि विषय-वस्तु छात्रों को स्पष्ट हो। अत: अध्यापक को विषय-वस्तु प्रस्तुत करते समय ही एक प्रस्तावनात्मक भाषण द्वारा छात्रों को समस्या का रूप बतला देना चाहिए।

3. सुखदाय वातावरण (Healthy Environment)–वाद-विवाद को प्रारम्भ करने से पहले अध्यापक को कक्षा का वातावरण ऐसा बना देना चाहिए जिसमें सभी छात्र अपने विचारों का आदान-प्रदान कर सकें। वातावरण जितना सुखदाय होगा, परिणाम भी उतने ही अच्छे निकलेंगे।

4. लोकतान्त्रिक संचालन (Democratic Management)–वाद-विवाद विधि का संचालन लोकतान्त्रिक विधि से किया जाये।

5. समान अवसर (Equal Opportunity)–सभी छात्रों को समान रूप से वाद-विवाद में भाग लेने के अवसर प्रदान किये जायें।

6. व्यर्थ वाद-विवाद का निरुत्साहन (Discouragement of useless Discussion)–निरर्थक अव्यवस्थित अर्थ व्यर्थ के वाद-विवाद को निरुत्साहित करना चाहिए।

7. पक्षपात रहित मूल्यांकन (Impartial Evaluation)–वाद-विवाद का मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ होना चाहिए अर्थात् पक्षपात रहित होना चाहिए।

प्रोजैक्ट विधि (योजना विधि)
[Project Method]

मनोविज्ञान के तथ्यों और अनुभवों से यह पता चलता है कि बालक क्रियाशील है। इसीलिये बालकों को क्रियाशील बनाकर ज्ञान देना चहिए। बालक कुछ न कुछ करने में विश्वास करता है। वह निष्क्रिय होकर नहीं बैठ सकता क्योंकि वह स्वभाव से ही क्रियाशील है इसीलिये बालकों को करके सीखने (Leaning by doing) का अवसर दिया जाना चहिए। यही कारण है कि विशेषज्ञों ने विभिन्न देशों में परिस्थितियों के अनुसार ऐसी शिक्षण विधियों की खोज की है जो छात्र-छात्राओं की प्रवृतियों के अनुसार हो और जिससे उनको जीवन के वास्तविक अनुभव प्राप्त हों। इन खोजी हुई विधियों में से एक विधि प्रोजेक्ट विधि है जो उपरोक्त आधार पर छात्र-छात्राओं को शिक्षा देने में प्रभावपूर्ण, सशक्त और सार्थक है।

प्रोजैक्ट विधि के सम्बन्ध में जॉन डीवी (John Dewey) और किलपैट्रिक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अमेरिका में प्रचलित कृषि सम्बन्धी शिक्षा के

दोषों को दूर करने की दृष्टि से इस विधि की खोज की। डा. किलपैट्रिक ने इस विधि के नाम प्रोजैक्ट विधि रखा।

यह विधि जॉन डीवी के प्रयोजनवाद पर आधारित है।

प्रोजैक्ट विधि की सबसे अधिक मान्य परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

1. **डॉ. किलपैट्रिक** (Dr. Kilpatrik)–के अनुसार, "वह उपयोगी प्रक्रिया है जिसे पूर्ण रूचि के साथ सामाजिक वातावरण में किया जाए।" (A project is a whole hearted purposeful activity in a social environment.)

2. **स्टीवनस** (Stevens)–के शब्दों में, "प्रोजैक्ट एक समस्यामूलक कार्य है जिसे स्वाभाविक वातावरण में पूरा किया जाए।" (A project is a problematic act carried to completion in its natural setting.)

3. **बेलार्ड** (Ballard)–के विचार, "प्रोजैक्ट वास्तविक जीवन का वह अंश है जो विद्यालय में दिया जाता है।" (A project is a bit of real life that has been imparted into the school.)

4. **पार्कर** (Parker)–के शब्दों में, "प्रोजैक्ट क्रिया की इकाई है जिसमें योजना एवं सुझाव का दायित्व छात्रों पर होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रोजैक्ट बच्चे के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित किसी समस्या का हल ढूंढने के लिए भली–भान्ति चयन किया हुआ उद्देश्यपूर्ण कार्य है जिसे स्वाभाविक परिस्थितियों में खुशी–खुशी पूरा किया जाता है। बालक में ज्ञान तभी स्थायी होता है जब वह उसे स्वेच्छा से ग्रहण करता है तथा उसका जीवन में उपयोग होता है। प्रोजैक्ट विधि का भी यही अभिप्राय है। यह विधि विद्यार्थियों को कुशल नागरिक बनने में सहायता करती है। उसमें सहयोग, सहायता एवं सहानुभूति की भावना का विकास करती है।

योजनाएं प्राथमिक कक्षाओं के लिए बहुत उपयोगी होती हैं और छोटे–छोटे समूहों में अच्छी तरह से कार्य करती हैं। योजना के द्वारा प्रकृति का अध्ययन भली–भान्ति हो सकता है। पक्षियों के बारे में तथा विभिन्न पौधों के बारें में मौसम के अनुसार आवश्यक सूचनाएं एकत्रित की जा सकती हैं। कुछ आवश्यक योजनाएं नीचे लिखी जा रही हैं। जिन्हें सम्पन्न करके पर्यावरण की शिक्षा दी जा सकती है। वे योजनाएं निम्न हैं–

1. स्कूल के भवन को सुन्दर बनाना।
2. स्कूल–उद्यान बनाना।
3. स्कूल में संग्राहलय बनाना।
4. विज्ञान के प्रयोगों में संशोधन।

5. विज्ञान के यंत्रों का रख-रखाव।

6. प्रदर्शनियों का आयोजन करना।

7. प्रदर्शनियों के लिए वस्तुएं एकत्रित करना।

8. स्थानीय उद्योगों का सर्वेक्षण (Survey) करना इत्यादि।

प्रोजैक्ट विधि की अवस्थायें अथवा सोपान [Stages involved in Project Method]

प्रोजैक्ट विधि के निम्नलिखित सोपान हैं-

1. उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करना (Providing a Situation)-प्रोजैक्ट विधि में अध्यापक को बहुत समझ के साथ कार्य करना पड़ता है। शिक्षक बच्चों की प्रकृति के अनुकूल विभिन्न युक्तियों द्वारा वातावरण उत्पन्न करता है। परिस्थिति उत्पन्न करने के लिये अध्यापक कोई कहानी कह सकता है, कोई घटना सुना सकता है। बच्चों से बातचीत करके परिस्थिति उत्पन्न कर सकता है। विद्यार्थी समस्या को हल करने के लिये उपाय सोचने लगते हैं। इस प्रकार परिस्थिति को हल करने के लिये प्रोजैक्ट का चयन किया जाता है।

2. प्रोजैक्ट का चुनाव (Choosing the project)-विद्यार्थियों के द्वारा ही योजना का चयन किया जाता है। शिक्षक छात्र-छात्राओं का पथ-प्रदर्शन करता है वह उन पर कोई योजना लादता नहीं है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी योजना को भार स्वरूप नहीं समझते, बल्कि उसमें रूचि लेकर काम करते हैं। तर्क वितर्क द्वारा प्रोजैक्ट का चयन किया जाता है। योजना के उद्देश्यों से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

3. योजना सम्बन्धी कार्यक्रम का निर्धारण (Planning)-कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी योजना को सफल बनाने के लिए कार्यक्रम में योगदान देता है। शिक्षक छात्र-छात्राओं के विचार-विमर्श से दूर नहीं रहता अपितु उनको अपने अनुभव से पूरा सहयोग प्रदान करता है क्योंकि अनुभवहीन विद्यार्थी सही रास्ते से दूर जा सकते हैं। योजना की कार्यविधि के निर्माण में शिक्षक सही मार्ग निर्देशन करता है। जिससे योजना का सम्पादन स्वाभाविक परिस्थितियों में हो। छात्र-छात्राओं को समूह में बांट कर प्रत्येक समूह को उनकी योग्यता के अनुसार कार्य दिया जाता है। सभी छात्र-छात्राएं मिलजुल कर कार्य पूरा करने में जुट जाते हैं।

4. योजना को कार्यान्वित करना (Execution of the Plan)-योजना बनाने के बाद योजना की पूर्ति के लिए शिक्षक छात्र-छात्राओं को प्रोत्साहित करता है। उनका मार्गदर्शन करता है। प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करता है। कोई लिखने का कार्य करता है, कोई हिसाब रखता है, कोई विचार-विमर्श का कार्य करता है। इससे छात्र-छात्राएं क्रिया द्वारा सीखते हैं तथा उनमें मिलकर कार्य करने की भावना विकसित होती है।

5. प्रोजैक्ट का मूल्यांकन करना (Evaluation of the Project)–यह है जिसमें छात्र-छात्राएं आत्म निरीक्षण एवं स्वयं की आलोचना करता है। योजना जाने पर सभी अपने कार्य की जांच करते हैं कि वे कहां तक निर्धारित योजना चले और कहां रास्ते से विचलित हो गए।

6. प्रोजैक्ट का रिकार्ड रखना (Recording of project)–इस पद छात्राओं द्वारा प्रोजैक्ट सम्बन्धी बातें रिकार्ड कर ली जाती हैं। जैसे प्रोजैक्ट का किया गया, इसका आयोजन व रुपरेखा कैसे तैयार की गई, कार्य का विभाजन कार्य करते समय जिन स्थानों पर जाते हैं, जिन व्यक्तियों से मिलते हैं, कार्य किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, योजना में कहां तक सफलता विद्यार्थी अन्त में अपनी आलोचना करते हैं, अपनी कमियों का पता लगाते हैं।

प्रोजैक्ट विधि के सिद्धान्त
[Principle of project Method]

योजना विधि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है–

1. उद्देश्यपूर्णता का सिद्धान्त (Principle of Purposefulness)–छात्र के सामने कार्य करने का निश्चित उद्देश्य होता है। वे उस कार्य को अपना समझ मन लगाकर रूचिपूर्वक कार्य करते हैं। उद्देश्यपूर्ण कार्य होने के कारण छात्र-छात्रा कार्य करने में आत्म-सन्तुष्टि का अनुभव होता है।

2. अनुभव का सिद्धान्त (Principles of Experience)–योजना विधि समूह में कार्य करते हैं तथा अपने अनुभव से बहुत कुछ सीखते हैं। छात्र-छात्रा अनुभव के द्वारा ही सामाजिक गुणों का विकास होता है।

3. वास्तविकता का सिद्धान्त (Principles of Reality)–योजना के शिक्षक छात्र-छात्राओं के सामने जीवन की वास्तविक समस्याएं रखता है और छात्र उन समस्याओं को हल करने का प्रयास करते हैं। योजना विधि एक शिक्षण विधि वास्तविक ही होनी चाहिए। शिक्षा भावी नागरिकों का निर्माण करती है। कार्य में वास्त होने के कारण छात्र-छात्राएं मन लगाकर कार्य करते हैं और उनके ज्ञान में वृद्धि

4. क्रियाशीलता का सिद्धान्त (Principles of Activity)–बालक स्व ही क्रियाशील होते हैं। उनको सही विकास करने के लिए क्रिया करने का पूर्ण अव चाहिए। उन्हें क्रिया करने में आनन्द आता है। योजना विधि उन्हें क्रिया करने का प्रदान करती है। इस विधि का सिद्धान्त है कि छात्र-छात्राओं को शारीरिक तथा रूप से क्रियाशील बनाये रखना चाहिए।

5. स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (Principles of Freedom)–बच्चे किसी तभी आनन्द लेते हैं जब उन्हें कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। योजना

स्वतन्त्रता का पूरा ध्यान रखा जाता है। योजना का चुनाव बच्चों की आवश्यकता तथा रूचि के अनुसार होता है।

6. उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)–बालक उसी कार्य को रुचिपूर्वक करता है जिससे उसे लाभ हो। योजना विधि द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान क्रियात्मक एवं व्यावहारिक होता है। इस विधि में उपयोगिता के सिद्धान्त को उचित स्थान दिया गया है। बालकों को वही कार्य दिये जाते हैं जिनकी वास्तविक जीवन में उपयोगिता हो।

प्रोजैक्ट विधि के गुण
[Merits of Project Method]

प्रोजैक्ट विधि में निम्नलिखित गुण हैं–

1. मनोवैज्ञानिक विधि (Psychological Method)–योजना विधि एक मनोवैज्ञानिक विधि है इसमें बच्चों की रूचियों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं एवं क्षमताओं का ध्यान रखा जाता है। इस विधि द्वारा बच्चों की जिज्ञासा तथा रचनात्मक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि होती है। इस विधि में बच्चे उत्साह रूचि एवं प्रसन्नता से कार्य करते हैं कयोंकि कार्य के लक्ष्य निश्चित एवं स्पष्ट होते हैं। यह विधि सीखने के नियमों पर आधारित है।

1. तत्परता का नियम (Law of Readiness)–योजना विधि में छात्र स्वयं योजना का चुनाव करते हैं और उस समस्या को हल करने के लिए योजना बनाते हैं। इसीलिये छात्रों में कार्य करने की तत्परता होती है।

2. अभ्यास का नियम (Law of Exercise)–छात्र कार्य करते हुए जिन तथ्यों एवं नियमों को सीखते हैं उनका अभ्यास करते हैं तभी सीखा हुआ ज्ञान स्थायी रहता है।

3. प्रभाव का नियम (Law of Effect)–योजना विधि में बच्चे कार्य स्वयं करते हैं और जब उन्हें उस कार्य में सफलता मिलती है तब उन्हें बहुत आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार उन्हें कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

2. वास्तविक जीवन से सम्बन्धित (Related to real life)–योजना विधि द्वारा दी गई शिक्षा का सम्बन्ध वास्तविक जीवन से होता है। छात्र इसमें स्वयं कार्य करने शिक्षा प्राप्त करते हैं। अत: उस प्राप्त ज्ञान को अपने व्यावहारिक जीवन में प्रयोग में लाते हैं। योजना विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान विद्यार्थियों के जीवन के लिए लाभदायक होता है।

3. सामाजिक गुणों का विकास (Development of social Values)–इस विधि द्वारा छात्र छात्राओं में सामाजिक गुणों का विकास होता है। छात्रों में सहयोग, सहिष्णुता, धैर्य, आत्मविश्वास, कर्त्तव्य परायणता एवं उत्तरादायित्व की भावना का विकास होता है।

4. श्रम का महत्त्व (Importance of Labour)–योजना विधि में छात्र-छात्राओं द्वारा किये जाते हैं। अत: छात्र-छात्राएं श्रम के महत्त्व को समझ अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार योजना पूर्ण करने के लिये कार्य करते हैं।

5. प्रजातन्त्रीय शिक्षण (Democratic Teaching)–छात्र योजना के लेकर समाप्ति तक सोचते, विचारते और कार्य करते हैं। उन्हें कार्य करने के स मिलते हैं। इस प्रकार उनमें प्रजातान्त्रिक भावना का शिक्षण मिलता है। छात्रों में भावना का विकास होता है।

6. समवाय द्वारा शिक्षण (Teaching through Co-relation)- द्वारा विषयों तथा पाठ्यक्रम की उपयोगिता के मध्य समवाय स्थापित होता है। इ पर्यावरण शिक्षा का अन्य विषयों के साथ आसानी से समवाय किया जा सकता

7. समस्या हल करने के लिए प्रोत्साहन (Motivation for solvi lems)–योजना विधि के द्वारा छात्र-छात्राओं को जीवन की समस्याओं को हल प्रोत्साहन मिलता है। वे समस्याओं को हल करने के लिए योजना बनाते हैं।

8. स्थायी ज्ञान (Permanent Knowledge)–योजना विधि में विद्या द्वारा सीखते हैं। क्रियात्मक अनुभव से प्राप्त किया ज्ञान स्थायी होता है। ऐसे ज्ञान विद्यार्थी अपने भावी जीवन में कर सकते हैं।

9. विभिन्न शैक्षिक समस्याओं का हल (Solution of differen tional Problems)–योजना विधि में विद्यार्थी स्वयं कार्य करते हैं। इसलिए की समस्या नहीं आती। अध्यापक को गृह कार्य देने की समस्या, टाईम टेबल समस्या से छुटकारा मिल जाता है। क्योंकि अपनी रूचि व आवश्यकता के अनु करते हैं।

प्रोजैक्ट विधि की सीमाएं
[Limitations of Project Method]

प्रोजैक्ट विधि की निम्नलिखित सीमाएं है–

1. खर्चीली (Expensive)–योजना विधि में धन, समय और शक्ति खर्च होता है। छात्रों में अनुभव व योग्यता की कमी होती है। इसलिए धन अ बहुत खर्च होता है। योजना को अच्छी तरह सम्पन्न करने के लिए स्कूल अधि नहीं कर पाते।

2. सीमित क्षेत्र (Limited Scope)–योजना विधि द्वारा पर्यावरण शिक्षा विषय-वस्तु नहीं पढ़ाई जा सकती कई विषयों पर योजना नहीं बनाई जा सक विधि का क्षेत्र सीमित है।

3. व्यक्तिगत ध्यान देना कठिन (Difficult to pay individual Attention)–शिक्षक सभी छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान नहीं दे सकता। जिन कक्षाओं में छात्राओं की संख्या कम होती है, उनमें व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से ध्यान न देने के कारण शिक्षक यह नहीं जान पाता कि विद्यार्थी योजना पर ठीक से कार्य कर रहे हैं या नहीं।

4. प्रक्षिशित अध्यापकों का अभाव (Lack of Trained Teacher)–पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण में योजना विधि के अनुसार शिक्षण देने के लिए शिक्षक को छात्रों को योजना का चयन करने, आयोजन करने, निरीक्षण करने और उचित पथ-प्रदर्शन करने में कुशल होना चाहिए पर स्कूलों में ऐसे प्रशिक्षत शिक्षकों की कमी है।

5. पाठ्य-पुस्तकों की कमी (Lack of text Books)–योजना विधि के आधार पर लिखी गई पुस्तकों का अभाव है।

6. पाठ्य-क्रम समाप्त करने में कठिनाई (Difficult to complete course of Study)–एक योजना को पूरा करने में बहुत समय लग जाता है। अत: सम्पूर्ण पाठ्यक्रम योजना विधि द्वारा वर्ष भर में पूरा नहीं किया जा सकता।

7. स्कूल की वर्तमान परिस्थितियों के प्रतिकूल (Against the present condition of School)–योजना विधि खर्चीली है। भारत एक गरीब देश है। अत: इस विधि पर फजूल खर्च नहीं किया जा सकता। स्कूलों में अनुभवी तथा योग्य शिक्षक तथा पाठ्य-पुस्तकों का अभाव है।

अत: योजना विधि को अकेले ही पर्यावरण शिक्षा के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता, परन्तु शिक्षण को रोचक, व्यावहारिक बनाने के लिए यह उपयोगी है।

प्रदर्शन विधि
[Demonstration Method]

छात्र-छत्राओं को कक्षा में कुछ क्रिया करके दिखाने की पद्धति को प्रदर्शन विधि का नाम दिया जाता है। यह विधि भाषण और प्रदर्शन विधि के गुणों से युक्त होती है। इसलिये इसे भाषण युक्त प्रदर्शन विधि के नाम से भी जानते हैं। इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक कक्षा में छात्र-छात्राओं की उपस्थिति में प्रयोग करके दिखाता है और बीच-बीच में प्रश्न भी पूछता है। इस विधि में छात्र-छात्राएं वस्तुओं और शिक्षक की क्रियाओं को बहुत ध्यान से देखते हैं क्योंकि प्रदर्शन करने हेतु प्रत्येक चरण की बहुत सावधानी से व्याख्या करनी होती है और बाद में सही निष्कर्ष पर भी पहुंचना होता है। इसमें सभी छात्र-छात्राएं सक्रिय होकर भाग लेते हैं और ऐसा करना आवश्यक भी होता है। प्रदर्शन विधि पर्यावरण-शिक्षा से सम्बन्धित विज्ञान विषयों के प्रकरणों का शिक्षण करने के लिये बहुत लाभप्रद और सशक्त है।

प्रदर्शन विधि की विशेषताएं
[Characteristics of Demonstration Method]

पर्यावरण-शिक्षा के लिये प्रदर्शन विधि बहुत उपयोगी और सार्थक है। इसकी विशेषतायें हैं-

1. यह विधि पहले से ही योजना बद्ध की जाती है।
2. सभी सावधानियों को ध्यान में रखा जाता है।
3. प्रदर्शन के लक्ष्य एवं उद्देश्य स्पष्ट होते हैं।
4. इस विधि में प्रदर्शन से सम्बन्धी प्रयोगों के लिये समय और मौसम का रखा जाता है।
5. प्रदर्शन में प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं का प्रयोग छात्र-छात्राओं द्वारा क जाता है।
6. इसमें छात्रों द्वारा समस्या उत्पन्न करवा के समाधान किया जाता है।
7. प्रदर्शन से पहले अभ्यास के लिये अर्थात् रिहर्सल के लिये समय दिया जा
8. प्रदर्शन में प्रयुक्त होने वाली सामग्री को सुव्यवस्थित ढंग से रखा जाता है
9. प्रदर्शन सरलता और धीमी गति से होता है।
10. छात्र-छात्राएं इस विधि में जो कुछ सीखते हैं। उसे अपनी नोटबुक में लिखते हैं।
11. प्रदर्शन क्रिया के समय सभी छात्र-छात्राओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता
12. प्रदर्शन से सम्बन्धित सभी गतिविधियां छात्र-छात्राओं को दिखाई पड़ती

अच्छे प्रदर्शन की आवश्यकताएं
[Requirements of Good Demonstration]

अच्छे प्रदर्शन के प्रस्तुत करने हेतु कुछ मूलभूत आवश्कताएं होती हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. प्रदर्शन के लिये कक्ष पर्याप्त रूप से आकार में उचित होना चाहिए।
2. प्रदर्शन में प्रयोग में लाई जाने वाली सामग्री भी आकार में बड़ी होनी चाहिए सबको दिखाई पड़े।
3. प्रदर्शन में प्रयुक्त होने वाला सामान कुछ अधिक होना चाहिये ताकि खराब की स्थिति में कठिनाई न आये।
4. प्रदर्शन के स्थान के पीछे चाकबोर्ड की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि आवश्यक पड़ने पर उसका प्रयोग किया जा सके।

5. प्रदर्शन के सामान का प्रयोग शिक्षक को पूरी तरह से करना आना चाहिये।

6. शिक्षक को छात्र-छात्राओं की चिन्तन शक्ति के विकास हेतु प्रश्न पूछने चाहिये।

7. छात्र-छात्राओं को महत्त्वपूर्ण बातों को लिखने के लिये समय दिया जाना चाहिये।

8. छात्र-छात्राओं की बैठने की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे सभी छात्र-छात्राओं को प्रदर्शन की क्रियाओं का अवलोकन करने में किसी प्रकार की कोई कठिनाई न हो।

प्रदर्शन विधि का संचालन
[Conduct of Demonstralion Method]

प्रदर्शन विधि का प्रभावपूर्ण एवं सशक्त ढंग से संचालन करने के लिये निम्न पदों को अपनाना अत्यन्त आवश्यक है-

1. प्रदर्शन योजना की तैयारी (Prepration of planning of Demonstration)-यह इसका सबसे पहला पद या सोपान होता है प्रदर्शन की योजना का बनाना और फिर उसकी तैयारी करना। तैयारी से तात्पर्य है विषय-वस्तु पाठ से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण बातों को नोट बुक में लिखना, साधनों का सचंय करना और रिहर्सल को कर लेना।

(1) तैयारी (Preparation)-विषय-वस्तु की पहले से ही अच्छी तरह से तैयारी हो। अगरं शिक्षक किसी बात को पहले से जानता भी है तो फिर भी उसे एक बार पढ़ लेना चाहिए। ऐसा करने से आत्म विश्वास बढ़ता है और ध्यान एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाता है।

(2) पाठ-योजना (Lesson Planning)-शिक्षक को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि पाठ का प्रस्तुतीकरण कैसे करना है और छात्र छात्राओं से किस प्रकार के प्रश्न पूछे जायें और कब पूछे जायें।

(3) प्रयोग की रिहर्सल (Rehearsal of Experiment)-प्रदर्शन के सभी पक्षों को ध्यान में रखकर एक बार सही ढंग से रिहर्सल कर लेनी चाहिए। बिना रिहर्सल किये अगर प्रदर्शन किया जाता है और सफलता नहीं मिलती तो इसका प्रभाव छात्र-छात्राओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(4) उपकरणों का एकत्रित करना और व्यवस्थित करना (Collection and arrangements of Apparatus)-उपकरणों को एकत्रित करके पहले से व्यवस्थित रूप से रख लेना चाहिए ताकि उनका प्रयोग बिना किसी कठिनाई के सुचारु रूप से हो सके।

2. पाठ को प्रस्तुत करना (Introducing the lesson)-पाठ को प्रस्तुत करते समय निम्न बातों को आधार माना जा सकता है।

(1) छात्र-छात्राओं के अनुभव।

(2) छात्र-छात्राओं का पर्यावरण से सम्बन्धित ज्ञान।

(3) कहानी या उदाहरण।

(4) पाठ्य वस्तु को प्रश्न के रूप में और समस्यात्मक ढंग प्रस्तुत किया जाये छात्र-छात्राएं मानसिक रूप से तैयार हो जाये और प्रदर्शन पर उनका ध्यान केन्द्रित हो

3. शिक्षण (Teaching)–शिक्षक का शिक्षण रूचिकर होना चाहिये। शिक्षण हुए सामान्यीकरण किया जाना चाहिए। किसी विषय को पढ़ाने के लिये विज्ञान की शाखाओं का प्रयोग करना उचित रहता है। छात्रों को और अधिक सीखने के लिये किया जाये। शिक्षक को पर्याप्त रूप से साधारण भाषा का प्रयोग करते हुए शिक्षण चाहिए। शिक्षक का उच्चारण शुद्ध होना चाहिए।

4. प्रयोगीकरण (Experimentation)–प्रदर्शन का ढंग बहुत व्यवस्थित, क्रम और यथा विधि होना चाहिये। शिक्षक को प्रयोग करते समय उचित विधि का प्रयोग चाहिये। प्रयोग साधारण ही होने चाहिये। सभी सामग्रियों का प्रयोग एक साथ नहीं क चाहिये। केवल सम्बन्धित सामग्री का प्रयोग करना ही श्रेयस्कर होता है। फालतू उपकरण मेज़ के आसपास ही रखे हुए होने चाहियें ताकि आवश्यकता पढ़ने पर उ प्रयोग किया जा सके।

5. चाक बोर्ड कार्य (Chalk board Work)–शिक्षक को चाकबोर्ड का बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिये। चाकबोर्ड पर केवल आवश्यक बातों को ही लि जाना चाहिये। शीर्षकों को बड़े-बड़े शब्दों में लिखना चाहिए। चाकबोर्ड पर जो लिखा जाये वह शुद्ध भाषा में होना चाहिए और जहां कहीं रंगीन चाक के प्रयोग आवश्यकता हो वहां रंगीन चाक का प्रयोग करना चहिये। चाक बोर्ड पर जो कुछ लि जाये वो साफ़-सुथरा और पठनीय होना चाहिये।

विषय सामग्री जो प्रदर्शन विधि के द्वारा पढ़ाई जाये (Subject matter which is to be taught by Demonstration)–पर्यावरण-शिक्षा के लिये प्रदर्शन विधि प्रयोग उन विषयों के लिये अधिक उपयुक्त रहता है जिनमें प्रयोगीकरण सम्भव हो। पृथ्वी, आकाश, सूर्य और चन्द्रमा से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन के लिये प्रदर्शन वि का प्रयोग किया जा सकता है। वायु और पानी के प्रदूषण के प्रभाव को प्रदर्शन विधि माध्यम से स्पष्ट रूप से दिखाया जा सकता है। मानव जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं उनकी विशेषताओं का प्रदर्शन द्वारा समझाना पर्यावरण-शिक्षा देने हेतु बहुत उचित भौतिक और रासायनिक परिवर्तनों के बारे में बताने के लिये प्रदर्शन विधि अति उत्तम प्रयोगशाला में प्रयोग होने वाली साधारण क्रियाएं जैसे फिल्ट्रेशन, उदात्तीकरण (sublimation) आदि का प्रदर्शन करके छात्र-छात्राओं को यह सब कुछ अपने आप करने लिये प्रेरित किया जा सकता है।

इस प्रकार संजीव वस्तुओं की विशेषताओं एवं उपयोगिताओं और पशुओं एवं पौधों के अन्तर को प्रदर्शित करना इस विधि की प्रमुख विशेषता है। इस विधि के द्वारा यह स्पष्ट किया जा सकता है कि पौधों के लिये किस प्रकार की आवश्यक परिस्थितियां होनी चाहिये।

मनुष्य की इन्द्रियों का ज्ञान भी प्रदर्शन विधि द्वारा देना बुहत उचित रहता है। शिक्षक मानव शरीर से सम्बन्धित मनुष्य के विभिन्न अंगों और इन्द्रियों का ज्ञान प्रदर्शन विधि के द्वारा दे सकता है और इसके लिये चार्ट, माडल आदि को प्रयोग में ला सकता है।

प्रदर्शन विधि के गुण
[Merits of demonstration Method]

(1) यह विधि मनोवैज्ञानिक है। छात्र-छात्राओं को सुनने के साथ-साथ ठोस वस्तुओं के प्रयोग को देखने का भी अवसर मिलता है। इसमें छात्र-छात्राओं को झूठी कल्पना का सहारा लेकर समझने की आवश्यकता नहीं होती।

(2) प्रदर्शन विधि से समय की बचत के साथ-साथ पैसों की भी बचत होती है क्योंकि यह सस्ती है।

(3) छात्र-छात्राओं की जिज्ञासा शान्त होती है और सृजनात्मकता के लिये प्रेरणा मिलती है।

(4) प्रदर्शन विधि उस समय अधिक सार्थक एवं उपयोगी होती हैं जबकि प्रयोग में आने वाली वस्तुएं बहुत कोमल और महंगी हों।

प्रदर्शन विधि के अवगुण
[Demerits of Demonstration Method]

(1) प्रदर्शन विधि में छात्र-छात्राएं स्वयं प्रयोगात्मक गतिविधियों को करने से वंचित रह जाते हैं।

(2) इस विधि में यह भी आवश्यक नहीं कि सभी छात्र-छात्राएं क्रियाओं को समझ रहे हों।

(3) इस विधि में छात्र-छात्राएं की सक्रिय भागीदारी नहीं होती।

(4) इस विधि में 'करके सीखने' का सिद्धान्त लागू नहीं होता।

(5) छात्र-छात्राओं में प्रयोगशाला से सम्बन्धित कौशलों का विकास नहीं हो पाता।

निरीक्षण विधि (अवलोकनन विधि)
[Observation Method]

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य प्रत्यक्ष अनुभवों से अधिक सीखता है और इस प्रकार का सीखा हुआ ज्ञान अधिक समय तक स्थाई रहता है। अप्रत्यक्ष अनुभवों की अपेक्षा

प्रत्यक्ष अनुभव अधिक सार्थक, सशक्त एवं प्रभावपूर्ण होते हैं। इन अनुभ
अधिक इन्द्रियों का प्रयोग होता है। क्योंकि इनको देखा जा सकता है, सूंघा
और छुआ भी जा सकता है। किसी भी स्थान, मन्दिर, मस्जिद, ऐतिहा
संस्थाओं आदि का भ्रमण मनुष्य को प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करने में सक्षम हो
बारे में छात्र-छात्राएं स्वयं देखकर प्रश्न पूछ सकते हैं और इनकी बारीकी से जां
हैं। प्रत्यक्ष अनुभव सीखने में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। ये सीखे हुए अनु
खोजों के लिये छात्र-छात्रायों को प्रोत्साहित करते हैं। छात्र-छात्राओं का वर्तमा
और समुदाय उनको निरीक्षण (अवलोकन) के अनेक अवसर प्रदान करता है
विधि विशेष रूप से सामाजिक विज्ञान के अध्ययन हेतु अधिक उपयोगी एवं स

समाज और पर्यावरण का अटूट सम्बन्ध है। जितनी भी संस्थाएं हैं वे किस
प्रकार से वातावरण से घिरी हुई हैं। पर्यावरण शिक्षा देने हेतु शिक्षक के मार्गदर्शन
छात्राओं को प्रश्न पूछने, आंकड़े एकत्रित करने और सूचनाओं का वर्गीकरण करने
अवसर प्रदान किये जा सकते हैं। सम्प्रेषण (आदान-प्रदान) से सम्बन्धित धारणाओं
करने के लिये छात्र-छात्राओं को टेलीफोन एक्सचेंज, समाचार पत्रों और टेलीग्राम क
में ले जा सकता है। प्रत्यक्ष निरीक्षण से इन संस्थाओं के बारे में स्पष्ट ज्ञान होता है। इ
स्कूल के छात्र-छात्राओं को हवाई अड्डों और अन्य स्थानों पर ले जाकर पर्यावरण
प्रत्यक्ष अनुभवों को प्राप्त करने का अवसर दिया जाना चाहिये। छात्र-छात्राओं को
उद्योगों से सम्बन्धित फैक्टिरियों में ले जाकर उन फैक्टिरियों से पैदा होने वाले प्रदू
प्रत्यक्ष अनुभव कराके स्वच्छ वातावरण बनाये रखने के लिये प्रेरित किया जा सक

निरीक्षण की प्रविधियां
[Techniques of Observation]

निरीक्षण करने हेतु निम्न प्रविधियों को अपनाया जा सकता है-

1. क्षेत्र-भ्रमण (Field Trips)-निरीक्षण हेतु क्षेत्र-भ्रमण बहुत अच्छी प्रविधि
इसके द्वारा सूचनाएं एकत्रित करने, रुचियों का विकास करने, चिन्तन का विकास और
अनुभवों का आनन्द उठाने के लिये पर्याप्त रूप से अवसर मिलता है। प्रकृति का गहन
निरीक्षण करने के लिये क्षेत्र भ्रमण प्रविधि का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरि
पर्यावरण के विभिन्न क्षेत्रों का निरीक्षण करने के लिये क्षेत्र-भ्रमण विधि बहुत सार्थक
उपयोगी होती है।

2. समुदाय सर्वेक्षण (Community Surveys)-समुदाय की क्रियाओं
समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने के लिये समुदाय सर्वेक्षण बहुत आवश्यक है।
प्रविधि के द्वारा समुदाय की संरचना और प्रतिदिन उस समुदाय की संरचना और प्रवि
उस समुदाय में होने वाली घटनाओं, प्रक्रियाओं, अन्त: क्रियाओं और जटिलताओं

सुगमता से समझा जा सकता है। इस प्रकार के सर्वेक्षण समुदाय की जटिलताओं को समझने और जटिलताओं का निवारण करने के लिये सूझ-बूझ पैदा करते हैं।

3. समुदाय सेवा योजना (Community service Projects)–समुदाय सेवा योजना प्रविधि के द्वारा मानसिक, शारीरिक, सवेंगात्मक और अध्यात्मिक अनुभवों का एकीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार इस प्रविधि के द्वारा शैक्षिक मूल्यों, मानव मूल्यों और सामाजिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है जो कि बहुत आवश्यक है।

LIBRARY Acc. No.

छात्र-छात्राएं जिन साधनों का प्रयोग करते हैं। वे एक समुदाय से दूसरे समुदाय में अलग-अलग होते हैं। शिक्षक और छात्र-छात्राओं के प्रयासों से इन साधनों की सूची तैयार की जा सकती है। इन साधनों के निरीक्षण हेतु उपयुक्त प्रविधियों का चयन करना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है। कि निरीक्षण इन्द्रियों से सम्पन्न की जाने वाली क्रिया है। और यह विशेष पर्यावरण परिस्थितियों में ही मुमकिन है। इसलिये शिक्षक को विशेष पर्यावरण परिस्थिति का चयन करना पड़ता है। जो कि उसके शिक्षक के उद्देश्य की पूर्ति के लिए सार्थक एवं उपयोगी हो। पर्यावरण परिस्थितियां पहले से ही विद्यमान होती हैं। शिक्षक तो केवल उनकी ओर संकेत ही करता है। कई बार ऐसा देखने में आता है कि शिक्षक इन पर्यावरण परिस्थितियों में स्थानीय संसाधनों के उचित एवं सार्थक प्रयोग से परिवर्तन कर लेता है।

निरीक्षण विधि के गुण
[Merits of Observation Method]

(1) निरीक्षण विधि का आधार अनुभव होते हैं और प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा स्थाई रूप से सीखा जा सकता है।

(2) निरीक्षण विधि के अन्तर्गत समुदाय सेवा योजना के द्वारा मानव एवं सामाजिक मूल्यों का विकास होता है।

(3) निरीक्षण विधि से अनुभव ग्रहण करके छात्र-छात्राएं खोज करने के लिये प्रेरित होते हैं।

(4) इस विधि से समुदाय की विभिन्न समस्याओं के समाधान करने की सूझ-बूझ का विकास होता है।

(5) निरीक्षण विधि द्वारा एक से अधिक इन्द्रियों का प्रयोग किया जा सकता है जिससे सीखना सहज हो जाता है।

निरीक्षण विधि की कमियां
[Limitations of Observation Method]

(1) निरीक्षण विधि में सर्वेक्षण के लिये अधिक समय अपेक्षित है।

(2) इस विधि द्वारा सभी बातों को सीखने के लिये प्रत्यक्ष अनुभव सम्भव नहीं।

(3) पर्यावरण शिक्षा के कई पक्ष हैं और उनका अध्ययन करने के लिये यह विधि पर्याप्त नहीं है।

(4) यह विधि अधिक खर्चीली है।

(5) इस विधि द्वारा प्राप्त किये गए अनुभवों का लिखित रिकार्ड नहीं रखा जाता।

पूछताछ विधि (अन्वेषण विधि) [Inquiry Method]

समय के साथ-साथ ज्ञान भी परिवर्तनशील है। यह हमेशा के लिये स्थाई नहीं होता। जो ज्ञान आज सार्थक एवं उपयोगी है वो समय परिवर्तन के बाद आने वाले भविष्य में सार्थक एवं उपयोगी सिद्ध न हो। उदाहरणार्थ जब कोई वैज्ञानिक किसी सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है तो वही सिद्धान्त कालान्तर में अर्थहीन होकर परिवर्तन की अपेक्षा करता है। यही कारण है कि मनुष्य नया ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिज्ञासु होता है। वह अपनी इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिये वस्तुओं और घटनाओं के बारे में प्रश्न पूछता है और इस प्रकार वह खोज करता है। इस खोज के लिये ही वह पूछताछ प्रक्रिया को अपनाता है जिसे पूछताछ विधि कहा जाता है। इस विधि के अन्तर्गत हम उपकल्पनाओं (Hypothesis) की जांच कर निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करते हैं जैसे कि कोई घटना घटित होती है तो हम उस घटना के वास्तविक कारणों को जानना चाहते हैं। इस प्रकार की जांच को व्यवस्थित, सुचारु और क्रमबद्धता एवं वैज्ञानिक ढंग से करने के तरीके को ही पूछताछ कहते हैं। इसमें ज्ञान को संचय करने के बाद सिद्धान्त निकालने का प्रयास किया जाता है। इस विधि के द्वारा छात्र-छात्राएं स्वतन्त्र रूप से सीखते हैं और पूछताछ करने में धीरे-धीरे निपुण होकर जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिये प्रेरित होते हैं। इससे उनमें नये ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा जागृत होती है। इसी विधि में छात्र-छात्राएं पर्यावरण में घटित किसी घटना को देखकर या अनुभव करके उसके बारे में पूर्ण रूप से खोज करके आवश्यक सूचनाओं को एकत्रित करते हैं। सूचनाओं को एकत्रित करने के बाद उनकी पुष्टि के लिये सम्बन्धित प्रश्न पूछते हैं। घटनाओं से सम्बन्धित प्रश्नों में घटना घटने की पुष्टि की जाती है। इस प्रकार शिक्षक छात्र-छात्राओं द्वारा की गई पूछताछ को विस्तृत रूप देते हैं और कुछ आंकड़ों को संचय करके उपकल्पनाओं का निर्माण करके उनको परीक्षण करने के लिये कहते हैं। शिक्षक इस कार्य में छात्र-छात्राओं को अपना सहयोग देते हैं ताकि वे गलत उपकल्पनाओं के परीक्षण में अपना समय न लगाएं।

इस विधि का प्रयोग अधिकतर विज्ञान से सम्बन्धित विषयों के लिये किया जाता है। छात्र-छात्राएं इस विधि के द्वारा एकत्रित की गई सूचनाओं का विश्लेषण करके निष्कर्ष

या अनुसन्धान सीखता है। इस विधि को प्राकृतिक विज्ञानों के लिये बहुत उपयुक्त और सार्थक माना जाता है। किसी समस्या का समाधान करने हेतु भी यह विधि सहायक सिद्ध होती है।

पूछताछ विधि के गुण
[Characteristics of Inquiry Method]

(1) यह विधि स्वतन्त्र रूप से सीखने के लिये प्रेरित करती है।

(2) यह विधि बौद्धिक समस्याओं से सम्बन्धित होने के कारण छात्र-छात्राओं के बौद्धिक विकास में पर्याप्त रूप से सहायक सिद्ध होती है।

(3) छात्र-छात्राओं को उपकल्पनाओं का विकास करके उनकी जाँच करने का अवसर मिलता है। इसमें विद्यार्थी खोजकर्ता बनने के प्रयास करते हैं।

(4) इस विधि में छात्र-छात्राओं को शिक्षण प्रक्रिया में भाग लेने का पूर्ण अवसर मिलता है।

(5) इस विधि में शिक्षक छात्र-छात्राओं का सहयोगी बनकर मार्गदर्शन करता है।

(6) इस विधि में छात्र-छात्राएं अपनी शंकाओं को दूर करने के लिये स्वतन्त्र होते हैं।

(7) इस विधि द्वारा विद्यार्थी प्रश्न पूछने की कला में निपुण हो जाते हैं।

छात्र-छात्राएं इस विधि द्वारा विभिन्न प्रकार की समस्याओं का समाधान करना जान जाते हैं क्योंकि उनको विभिन्न समस्याओं से अवगत कराते हुए उनकी अनुभूति भी कराई जाती है।

पूछताछ विधि के गुण
[Merits of Inquiry Method]

इस विधि के निम्नलिखित गुण हैं-

(1) इस विधि के प्रयोग से छात्र-छात्राओं का बौद्धिक विकास होता है।

(2) यह विधि छात्र-छात्राओं को सन्तुष्टि प्रदान करती है क्योंकि यह उनके कार्य के लिये पुरस्कृत करती है।

(3) इस विधि से छात्र-छात्राओं की प्रवृत्तियों का संशोधन होता है।

(4) इस विधि से सहयोग की भावना एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।

(5) इस विधि से सफलता के बाद छात्र-छात्राओं में उत्साह का विकास होता है और वे अन्य नये कार्य को सम्पन्न करने का प्रयास करते हैं।

(6) यह विधि छात्र-छात्रों को नई-नई चुनौतियां स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहित करती है।

(7) इस विधि द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान अधिक स्थाई होता है।

पूछताछ विधि के दोष
[Demerits of Inquiry Method]

(1) इस विधि में छात्र-छात्राओं को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और इससे अनुशासनहीनता का भय बना रहता है।

(2) इस विधि में कई बार जब छात्र-छात्राएं मिलजुल कर काम नहीं करते तो सफलता में सन्देह बना रहता है।

(3) इस विधि में अधिक समय अपेक्षित है।

(4) इस विधि के अन्तर्गत जब कभी विद्यार्थियों को सफलता नहीं मिलती तो वे कार्य को अधूरा ही छोड़ देते हैं।

(5) ऐसा भी देखा जाता है कि गलत उपकल्पनाओं के परीक्षण में छात्र अपना समय नष्ट करते हैं।

(6) इस विधि का नियोजित होना सम्भव नहीं है।

पूछताछ विधि में शिक्षक की भूमिका
[Role of the teacher in Inquiry Method]

इस विधि के अन्तर्गत शिक्षक छात्र-छात्राओं को पहले से तैयार विषय सामग्री प्रदान नहीं करता और न ही किसी प्रकार का भाषण देता है। वह छात्र-छात्राओं का मार्गदर्शन करता है। वह विद्यार्थियों को कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु प्रेरित करता है और स्वयं पृष्ठभूमि में रहता है। इस विधि में शिक्षक को निम्नलिखित भूमिका निभानी चाहिये-

(1) शिक्षक को छात्र-छात्राओं के समक्ष अनुक्रियाशील पर्यावरण की व्यवस्था करनी चाहिये।

(2) शिक्षक को समस्या समाधान हेतु उचित ढंग से मार्गदर्शन करना चाहिये।

(3) उसको छात्रों में पूछताछ से सम्बन्धित कौशलों का विकास करने का प्रयास करना चाहिये।

(4) उसको समस्या समाधान से सम्बन्धित आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करनी चाहिये।

(5) शिक्षक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि छात्र-छात्राएं स्वतन्त्र रूप से कार्य करें और शिक्षक पर पूर्ण रूप से आश्रित न हों।

(6) शिक्षक यह भी देखे कि सभी विद्यार्थी मिलजुल कर कार्य करें और एक-दूसरे को सहयोग दें और आपस में विचारों का सुचारु रूप से आदान-प्रदान करें।

(7) शिक्षक को छात्र-छात्राओं द्वारा किये गए अच्छे कार्यों की समय-समय पर सराहना करनी चाहिये। इससे छात्र-छात्राओं को आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहन मिलेगा।

क्षेत्र भ्रमण विधि [Field Trips Method]

क्षेत्र भ्रमण की विधि सबसे पुरानी दृश्य विधि है लेकिन यह आज भी उतनी ही सार्थक विधि है जितनी कि पहले थी। यह विधि वास्तविक जीवन के अधिगम अनुभव प्रदान करने में सक्षम है। इस विधि के द्वारा छात्र-छात्राओं को सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण की प्रत्यक्ष रूप में जानकारी मिलती है। यह विधि पूर्व अर्जित अर्थात पहले से प्राप्त अनुभवों को पुनर्बलन प्रदान करती है और इससे खोज की प्रक्रिया सतत् रहती है। इसके द्वारा मौके पर निरीक्षण करने का अवसर मिलता है। क्षेत्र भ्रमण रुचिकर स्थानों पर किये जा सकते हैं जैसे चिड़ियाघर, संग्रहालय, दूरदर्शन स्टूडियो, समाचार पत्र, ऐतिहासिक स्थान, मौसम कार्यालय, फैक्ट्रियां, पानी के शुद्धिकरण के स्थान, भूमि संरक्षण स्थान, डैम आदि।

क्षेत्र भ्रमण विधि के गुण [Merits of Field Trips Method]

क्षेत्र भ्रमण की विधि के निम्नलिखित गुण हैं–

(1) भ्रमणों द्वारा स्कूल और समुदाय में दूरी कम होती है।

(2) भ्रमणों द्वारा वास्तविक जीवन में खोज, जाँच-पड़ताल आदि के अवसर प्रदान किये जाते हैं।

(3) भ्रमण से विद्यार्थी प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करते हैं।

(4) भ्रमण से पर्यावरण शिक्षा में रुचि उत्पन्न होती है।

(5) भ्रमण के द्वारा विद्यार्थियों के कई संप्रत्ययों को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।

(6) इन भ्रमणों द्वारा पर्यावरण शिक्षा के प्रति उचित तथा अनुकूल दृष्टिकोण उत्पन्न करने में सहायता मिलती है।

एस.के. कोछड़ ने भी भ्रमण के कुछ अन्य गुण बताए हैं। वे निम्नलिखित हैं–

(1) भ्रमण कल्पना और प्रत्यक्षीकरण द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करते हैं।

(2) भ्रमण के द्वारा कक्षाकक्ष अनुदेशन को एकीकृत करते हैं।

(3) भ्रमण समुदाय को वास्तविक रूप से अनुभव करवाते हैं जो कि पुस्तकीय ज्ञान से सम्भव नहीं।

(4) भ्रमण दूसरों के साथ जीने की कला सिखाते हैं।

(5) भ्रमण संवेगात्मक और बौद्धिक परिधि (Emotional and Intellectual Horizon) का विस्तार करते हैं।

क्षेत्र भ्रमण के लिये सावधानियां
[Precautions for Field Trips]

जब भी छात्र-छात्राओं को कहीं भ्रमण पर ले जाने का कार्यक्रम बनाया जाए तो शिक्षक को कई बातों का ध्यान रखना चाहिये। सावधानीपूर्वक भ्रमण कार्यक्रम बनाने से ही भ्रमण का पूर्ण लाभ सम्भव है। इसके लिये सावधानियां निम्नलिखित हैं-

(1) क्षेत्र-भ्रमण विद्यार्थियों की सहायता से नियोजित करके तथा ठीक ढंग से संगठित करके सावधानीपूर्वक लागू किया जाना चाहिये।

(2) क्षेत्र भ्रमण के लिये जाने से पहले छात्र-छात्राओं और अध्यापकों को इस बात की जानकारी होनी आवश्यक है कि यह क्षेत्र भ्रमण क्यों आयोजित किया जा रहा है और कक्षा के अनुभवों और क्रियाओं से क्षेत्र भ्रमण किस प्रकार से सम्बन्धित है। छात्र-छात्राओं की प्रारम्भिक अभिप्रेरणा के लिये उपयुक्त सहायक सामग्री का प्रयोग भी किया जा सकता है और उन्हें यह भी बताया जा सकता है कि वास्तविक भ्रमण के समय उन्होंने वहां पर क्या कुछ देखना है।

(3) शिक्षक छात्र-छात्राओं को मार्ग-दर्शक प्रश्न बता सकता है जिनका उत्तर विद्यार्थी अध्यापक से या समुदाय के नेताओं से पूछ सकें। उनके प्रश्नों का स्पष्टीकरण आवश्यक है।

(4) जहां तक सम्भव हो, शिक्षक को उन सभी रास्तों, बस स्टापों, दिग्दर्शक-सुविधा का ज्ञान तथा उन वस्तुओं का ज्ञान हो जिन्हें उन्हें देखना है, उन कार्यों का ज्ञान जिनको समूह द्वारा किया जाना हो, खाने-पीने का प्रबन्ध और क्षेत्र-भ्रमण के प्रत्येक स्तर या चरण के लिये समय की आवश्यकता आदि का पहले से ही ज्ञान होना चाहिये।

(5) प्रत्येक भ्रमण के बाद निश्चित अनुवर्ती सेवा (Follow-up Service) का होना अति आवश्यक है। इस सेवा के अन्तर्गत उन स्थानों से सम्बन्धित पुस्तकों को पढ़ा जाना चाहिये जिन स्थानों का भ्रमण किया गया हो या जिन स्थानों का निरीक्षण किया जा चुका हो। उन्हीं स्थानों के बारे में रिपोर्ट लिखी जानी चाहिये तथा उन पर बहस करने के लिये पैनल बनाया जाना चाहिये।

(6) क्षेत्र-भ्रमण का मूल्यांकन मौलिक रूप से निर्धारित उद्देश्यों के सन्दर्भ में किया जाना चाहिये। त्रुटियों और कठिनाइयों का निदान (Diagnosis) किया जाना चाहिये। समूह के व्यवहार पर बहस होनी चाहिए। सम्बन्धित व्यक्तियों को धन्यवाद के पत्र भेजे जाने चाहिये तथा क्षेत्र भ्रमण के मुख्य अंशों (Highlights) का स्थायी रिकार्ड रखा जाना चाहिये।

इस प्रकार ठीक से नियोजित, सुव्यवस्थित और अच्छी प्रकार से क्षेत्र भ्रमण पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण में एक नया परिवर्तन ला सकता है।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त पर्यावरण शिक्षा देने के लिये कुछ अन्य तरीके निम्नलिखित हैं–

(क) प्रदर्शनियां
[Exhibitions]

पर्यावरण शिक्षा देने हेतु स्कूल स्तर समय-समय पर प्रदर्शनियों का आयोजन करना बहुत आवश्यक है। ये प्रदर्शनियां पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित सभी विषयों को लेकर आयोजित की जा सकती हैं। इन प्रदर्शनियों में छात्र-छात्राओं द्वारा तैयार की गई वस्तुओं और उनकी क्रियाओं का प्रदर्शन किया जा सकता है। इन प्रदर्शनियों की सफलता हेतु शिक्षक और छात्र-छात्राओं को मिलकर सहयोग करना चाहिये। स्कूल में समय-समय पर प्रदर्शनियों में विशेषज्ञों की वार्ताओं, विज्ञान या सामाजिक विज्ञान के विषयों से सम्बन्धित फिल्म शो, वाद-विवाद, प्रतियोगिताओं, संगीत कार्यक्रमों आदि का आयोजन किया जा सकता है। इस प्रकार विज्ञान से सम्बन्धित विषयों पर लगाई गई प्रदर्शनियों से भाग लेने वाले छात्र-छात्राओं को विज्ञान के प्रयोगों और विधियों का ज्ञान पर्याप्त रूप से हो जाता है।

इन प्रदर्शनियों में छात्र-छात्राओं को विभिन्न कौशलों का विकास करने के लिये अवसर प्रदान किये जा सकते हैं। इसलिये इनकी योजना और प्रक्रिया बहुत विस्तृत होनी चाहिये। प्रदर्शनी की सम्पूर्ण योजना को तत्काल और क्रमबद्ध रूप से तैयार करके लागू करना चाहिये। प्रदर्शनी के लिये सबसे बड़ी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रदर्शित की गई वस्तुओं का मूल्यांकन अवश्य ही किया जाना चाहिये और उन पर निर्णय भी दिया जाना चाहिये। ऐसा करने से प्रदर्शनी में भाग लेने वाले छात्र-छात्राओं को प्रोत्साहन मिलता है।

पर्यावरण से सम्बन्धित प्रदर्शनियों को बढ़ावा देने हेतु राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (N.C.E.R.T.) राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के द्वारा प्रदर्शनियों के आयोजन पर बल दे रही है। इस उद्देश्य के लिये परिषद् इन प्रदर्शनियों को ज़िला स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर और राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक सहायता देती है।

प्रदर्शनी के उद्देश्य
[Objectives of Exhibition]

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के अनुसंधान प्रदर्शनियों के निम्न उद्देश्य हैं–

(1) छात्र-छात्राओं को अपने विचारों को प्रयोग करने और कक्षा-अधिगम (Class-Room Learning) को अधिक सृजनात्मक ढंग से प्रयोग करने के लिये प्रोत्साहित करना।

(2) छात्रों को उनके सहपाठियों की उपलब्धियों को देखने का अवसर प्रदान करना जिससे कि उन्हें अभिप्रेरणा मिल सके।

(3) पर्यावरण-शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं को अधिक से अधिक विद्यार्थियों में लोकप्रिय बनाना।

(4) प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं को प्रोत्साहित करना।

(5) भविष्य के लिये खोजकर्त्ताओं की खोज करना।

(6) समुदाय के लोगों को स्कूल के निकट लाना।

प्रदर्शनी हेतु वस्तुएं
[Exhibition's Material]

प्रदर्शनी में कई प्रकार की वस्तुओं का प्रदर्शन किया जा सकता है। इन वस्तुओं की सूची निम्न है-

(1) संग्रह (Collections)

(2) जीवित और संग्रहित नमूने (Specimens)

(3) ग्राफिक सामग्री जैसे चार्ट, रेखा चित्र आदि।

(4) मॉडल (Models)

(5) खोज सम्बन्धी योजनायें

(6) व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयोग

(7) संशोधित यन्त्र और मशीनें आदि।

प्रदर्शनी का आयोजन
[Organisation of Exhibition]

प्रदर्शनी के आयोजन में शिक्षक और छात्र-छात्राओं को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिये। प्रदर्शनी आयोजन के लिये निम्न प्रक्रिया का अनुसरण करना लाभप्रद होता है-

1. योजना (Planning)-प्रदर्शनी को प्रारम्भ करने से पहले सोच समझकर योजना का बनाना अत्यन्त आवश्यक होता है। योजना के अन्तर्गत निम्न पक्षों का होना बहुत आवश्यक है-

(क) धन की व्यवस्था

(ख) स्थान, समय और अवधि

(ग) अन्य सुविधाएं और अपेक्षित आवश्यकताएं।

2. कार्य विभाजन (Distribution of Work)–योजना बनाने के बाद योग्यता और क्षमता को ध्यान में रखते हुए प्रदर्शनी सम्बन्धी कार्यों को व्यक्तियों और समूहों में बांट दिया जाना चाहिये। प्रदर्शनी के उप-भागों को कार्यों की देखभाल के लिये विभिन्न कमेटियां बनानी चाहिये। इन सभी कमेटियों को शिक्षक इन्चार्ज और छात्रों के साथ विचार-विमर्श करके कार्य करने चाहियें।

3. योजना को व्यवहार में लाना (Execution of Planning)–विभिन्न कमेटियों को सहयोग करके योजना लागू करनी चाहिये। योजनाबद्ध तरीके से प्रदर्शनी की व्यवस्था की जाये और कार्यक्रम अनुसार प्रदर्शनी के अन्तर्गत विभिन्न क्रियाओं जैसे प्रदर्शन, वार्तायें, फिल्म, जादू के खेल, संग्रह, चित्र, मॉडल आदि को संगठित किया जाए। प्रदर्शनी में प्रदर्शित की हुई हर वस्तु अपने में स्पष्ट होनी चाहिये। स्पष्टता के लिये हर चीज़ पर लेबल लगा देना चाहिये और संक्षिप्त विवरण भी होना चाहिये। पहले से चयन किये हुए छात्र-छात्राओं को विभिन्न वस्तुओं और प्रयोगों का इन्चार्ज बना देना चाहिये। समुदाय के लोगों और अन्य स्कूल के छात्र-छात्राओं को प्रदर्शनी देखने हेतु आमन्त्रित करना चाहिये।

4. मूल्यांकन (Evaluation)–प्रदर्शनी के मूल्यांयन हेतु दर्शकों के प्रदर्शनी के बारे में विचार एकत्रित करने चाहिये। प्रदर्शनी के मूल्यांकन हेतु समुदाय के लोगों में से, कालेज के प्रोफेसरों (प्राध्यापकों) में से और अन्य बुद्धिजीवियों में कुछ के विचारों को जानना बहुत आवश्यक होता है। मूल्यांकन के लिये उचित नियमावली पहले से ही बना देनी चाहिये और इस नियमावली के आधार पर ही मूल्यांकन किया जाना चाहिये। प्रदर्शनी के बाद स्कूल के शिक्षकों और विद्यार्थियों को मूल्यांकन करना चाहिये। यह मूल्यांकन आन्तरिक मूल्यांकन होगा और फिर इस मूल्यांकन के साथ नियमावली द्वारा किये गये मूल्यांकन की तुलना करनी चाहिये। इस तुलनात्मक अध्ययन से यह देखना चाहिये कि क्या प्रदर्शनी के उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया गया है या नहीं। अगर उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती तो इस बात पर विचार करना चाहिये कि प्रदर्शनी में क्या कमियां रह गई हैं और फिर भविष्य के लिये इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिये।

प्रदर्शनी के लिये सुझाव
[Suggestions for Exhibition]

प्रदर्शनी के निम्न सुझावों का अनुसरण करना जिससे प्रदर्शनी के उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव हो सके–

(1) यदि किसी प्रयोग में कोई खतरा हो तो सावधान रहने के निर्देश लाल रंग से लिखकर प्रयोग वाले स्थान पर लगाएं।

(2) किसी खतरे की सम्भावना होने पर प्रदर्शनी में रखी वस्तुओं की सुरक्षा करनी चाहिये।

(3) प्रदर्शनी देखने आने वाले लोगों से सभी प्रयोग सुरक्षित रखे जाने चाहियें।

(4) आग की दुर्घटना से बचने के लिये सभी प्रबन्ध किये जाने चाहियें।

(5) प्रदर्शनी में प्रत्येक प्रयोग के साथ कोई न कोई व्यक्ति उसकी सुरक्षा के लिये वहां मौजूद होना चाहिये।

(6) प्रदर्शनी में लगाई गई वस्तुओं पर लेबल ठीक तरह से लगाने चाहियें।

(7) प्रदर्शनी में वस्तुओं के प्रदर्शन के लिये एक जैसे फर्नीचर होने चाहियें।

(ख) आकाशवाणी (रेडियो) (Radio)

पर्यावरण शिक्षा देने के लिये रेडियो भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। रेडियो एक श्रव्य साधन है। रेडियो पर शैक्षिक पाठों के प्रस्तुत करने से दूर रहने वाले छात्रों को बहुत लाभ पहुंचा है। रेडियो पर शिक्षा शास्त्रियों तथा अन्य विद्वानों के भाषण प्रसारित होते हैं जिससे बहुत से विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं। आकाशवाणी पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों अथवा पाठों की सूची बहुत पहले ही प्रसारित कर दी जाती है। स्कूल के प्रधानाचार्य तथा अध्यापकों को रेडियो पर प्रसारित होने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों की जानकारी पहले से ही होनी चाहिये। रेडियो द्वारा पर्यावरण शिक्षा के प्रसार से यह लाभ है कि किसी विशेष भाषण को बार-बार सुना जा सकता है।

रेडियो का प्रसारण दो प्रकार का होता है–

1. साधारण प्रसारण (Ordinary Broadcast)
2. शैक्षिक प्रसारण (Educational Broadcast)

1. साधारण प्रसारण (Ordinary Broadcast)–साधारण प्रसारण में साधारण घटनाओं तथा साधारण स्थितियों की सामान्य जानकारी दी जाती है।

2. शैक्षिक प्रसारण (Educational Broadcast)–शैक्षिक प्रसारण विशेष कर विद्यार्थियों के लिये तैयार किये जाते हैं। ये प्रसारण पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित एवं सामान्य शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये रेडियो के द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं।

पर्यावरण शिक्षा शिक्षण में रेडियो का प्रयोग [Use of Radio in Teaching of Environmental Education]

पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण में रेडियो का निम्नलिखित प्रयोग हो सकता है–

(1) सबसे पहले अध्यापक को रेडियो पर प्रसारित होने वाली शैक्षिक विषय-वस्तु के बारे में उपलब्ध साहित्य को एकत्रित कर उसका अध्ययन करना चाहिये। इस साहित्य के अध्ययन में कार्यक्रमों की सूची तथा दैनिक समय-सारिणी शामिल है।

(2) शिक्षक एकत्रित सूचना के आधार पर प्रसारित पाठ को अपने विषय में शिक्षण के साथ जोड़कर उस प्रसारण को छात्रों को सुनाने की योजना बनाये।

(3) सभी छात्र-छात्राओं को मानसिक रूप से तैयार करें जिससे वे रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम को ध्यान से सुने। शिक्षक को चाहिये कि पर्यावरण शिक्षा के जिस घटक-विषय का रेडियो पाठ प्रसारित होना है, रेडियो सैट का प्रबन्ध उसी विषय के कमरे में करे। सारी कक्षा को उठाकर रेडियो वाले कमरे में नहीं ले जाना चाहिये। यदि रेडियो पर विज्ञान से सम्बन्धित प्रसारण होना है तो रेडियो विज्ञान के कमरे में ले जाना चाहिये। यदि पर्यावरण शिक्षा का अलग कमरा है तो रेडियो सैट उसी कमरे में रखा जाए।

(4) रेडियो प्रसारण सुनने के लिये भौगोलिक परिस्थितियों पर ध्यान देना चाहिये। अत: बैठने का स्थान, हवा, रोशनी आदि का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। कक्षा में प्रसारण के समय शोर नहीं होना चाहिये।

(5) जब छात्र-छात्राएं रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम को सुन लें तो उसके बाद छात्र-छात्राओं की शंकाओं का शिक्षक को समाधान करना चाहिये। रेडियो पर प्रसारित विषय पर वाद-विवाद भी हो सकता है। प्रसारण के समय छात्र अपनी कापी में महत्त्वपूर्ण बातों को लिखें। प्रसारण समाप्त होने पर उन नोटस में रह गई कमियों को पूरा करने का समय दिया जाना चाहिए। प्रसारण के बीच छात्र-छात्राओं को प्रश्न पूछने के लिये मना करना चाहिये। छात्र-छात्राओं को पहले ही निर्देश दे दें कि यदि वे कोई प्रश्न पूछना चाहते हैं तो उसे अपनी कापी में नोट कर लें और प्रसारण के बाद पूछें।

रेडियो के गुण
[Merits of Radio]

पर्यावरण शिक्षा में रेडियो के निम्नलिखित गुण हैं-

(1) रेडियो प्रसारण के द्वारा महान् शिक्षाशास्त्रियों, विद्वानों तथा कलाकारों के विचारों को, उनकी कलाकृतियों के बारे में सुनने का अवसर मिलता है जो कि प्रत्येक व्यक्ति के लिये व्यक्तिगत रूप से सम्भव नहीं है।

(2) रेडियो पर प्रसारित शैक्षिक कार्यक्रमों से शैक्षिक उद्देश्यों की तो पूर्ति होती ही है, साथ ही मनोरंजन भी होता है।

(3) इसका प्रत्येक छात्र-छात्राएं लाभ उठा सकते हैं। यह बहुत सस्ता साधन है।

(4) पर्यावरण शिक्षा में सम्बन्धित उद्देश्यों को प्राप्त करने में रेडियो अध्यापक की मदद करता है।

(5) रेडियो का प्रसारण उन क्षेत्रों में बहुत महत्त्वपूर्ण है जिन क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाएं बहुत कम हैं।

(6) रेडियो के द्वारा छात्र-छात्राएं ही नहीं, अध्यापक भी नये तथ्यों, प्रत्ययों सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करता है और उस ज्ञान से विद्यार्थियों को लाभ होता है।

(7) बढ़ती हुई जनसंख्या के संदर्भ में भी रेडियो का पर्यावरण शिक्षा के शिक्षण क्षेत्र में प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है।

रेडियो की सीमाएं
[Limitations of Radio]

रेडियो की कुछ ऐसी सीमाएं हैं जिनके कारण वह हर प्रकार की परिस्थितियों लाभकारी सिद्ध नहीं होता है। ये सीमाएं निम्नलिखित हैं-

(1) जब छात्र रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम में रुचि नहीं लेते तो वे ध्यानपूर्वक न सुनते। इसलिये उन्हें कोई लाभ नहीं होता।

(2) कई बार रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम विद्यार्थियों और शिक्षकों की आवश्यकता के विपरीत होता है तब दोनों ही का रुचि पाठ में नहीं होती।

(3) रेडियो द्वारा पाठ पढ़ाये जाने में छात्र-छात्राएं निष्क्रिय (Passive) हो जाते हैं कई बार छात्र अनुवृत्ति कार्य (Follow-up Programme) में भाग नहीं लेते।

(4) कई बार शिक्षक छात्रों को रेडियो पर प्रसारित कार्यक्रम की पूर्व सूचना नहीं होती जिससे शिक्षक एवं छात्रों की तैयारी कठिन हो जाती है।

उपरलिखित सीमाओं के बावजूद भी रेडियो की महत्ता कम नहीं होती। शिक्षक के थोड़े से परिश्रम से इन कमियों पर नियन्त्रण किया जा सकता है और रेडियो प्रसारण का पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

(ग) दूरदर्शन
[Television]

दूरदर्शन आकाशवाणी (रेडियो) की अपेक्षा जनसंचार का अधिक सार्थक, सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम है क्योंकि यह दृश्य-श्रव्य माध्यम है जबकि रेडियो (आकाशवाणी) श्रव्य माध्यम तक सीमित है। यही कारण है कि यह बहुत लोकप्रिय है। इस माध्यम से पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में पर्याप्त रूप से सहयोग मिलता है। दूरदर्शन महानिदेशालय के मैनुअल (Mannual) में ही दूरदर्शन के कुछ उद्देश्य हैं जो पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्यों से प्रत्यक्ष रूप या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। ये उद्देश्य निम्न हैं-

(1) सामाजिक परिवर्तन में प्रेरक भूमिका निभाना।

(2) राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करना।

(3) जनसाधारण में सामाजिक चेतना का विकास करना।

(4) परिवार कल्याण के साधन के रूप में परिवार नियोजन के सन्देश का प्रसारण करना।

(5) आवश्यक सूचना और जानकारी देकर कृषि उत्पादन को प्रोत्साहित करना।

(6) पर्यावरण के संरक्षण एवं पर्यावरण का सन्तुलन बनाये रखने में सहायता देना।

(7) राष्ट्र की संस्कृति और कला जो देश की धरोहर है, उसके प्रति लोगों में जागरुकता उत्पन्न करना।

यदि दूरदर्शन उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्ण रूप से सहायक होता है तो पर्यावरण शिक्षा के प्रचार-प्रसार का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है। दूरदर्शन आज के युग में इतना सशक्त माध्यम है कि इसके विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा पर्यावरण की समस्याओं का समाधान कर सकने की क्षमता का विकास लोगों में सुगमता से किया जा सकता है। उदाहरण के लिये वृत्त-चित्र, बाल-फिल्म आदि को दिखाने से पर्यावरण के सम्बन्ध में चेतना का विकास किया जा सकता है।

वर्तमान में हम अभी यह नहीं कह सकते कि दूरदर्शन की भूमिका पर्यावरण शिक्षा हेतु पर्याप्त है। इसके लिये अनेक कारगार कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। अगर लोकप्रिय सीरिअल, फिल्म आदि के बीच में जो व्यावसायिक विज्ञापन और प्रचार का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। उनके स्थान पर यदि पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ जानकारी अति रोचक तरीके से प्रस्तुत की जाये तो निश्चय ही पर्यावरण शिक्षा के प्रचार और प्रसार में इसकी भूमिका अधिक सार्थक एवं सशक्त हो सकती है। जैसे-पोलियो रोकने के लिये प्रचार किया जा सकता है वैसे ही कुछ पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित प्रचार की आवश्यकता है।

दूरदर्शन के गुण
[Merits of Television]

आज के वैज्ञानिक युग में दूरदर्शन सम्प्रेषण, जनसंचार और प्रसारण का एक प्रमुख साधन है। इसके द्वारा मानव जीवन में एक महत्त्वपूर्ण क्रान्ति हुई है। तकनीकी की दृष्टि से यह दृश्य एवं श्रव्य गुणों से युक्त सशक्त एवं प्रभावशाली साधन है। शिक्षा की दृष्टि से देखा जाए तो इसके द्वारा औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा का विकास हो सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में दूरदर्शन एक ऐसी जादुई शक्ति है जिसके द्वारा समस्त विश्व को एक कक्षा का रूप प्रदान किया जा सकता है और कक्षा को घर का रूप प्रदान किया जा सकता है। इस जादुई शक्ति के विशेष गुण हैं जो निम्नलिखित हैं-

(1) दूरदर्शन अपनी गुणवत्ता शिक्षा जगत में कृषि, गणित और भूगोल विषयों की शिक्षा देने हेतु सिद्ध कर चुका है।

(2) दूरदर्शन शिक्षा के सामाजिक समानता के उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्ण रूप से

सहायक है। नगरीय क्षेत्रों में जो लोग निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करते हैं, उनके लिये अत्यन्त प्रभावशाली साधन के रूप में उपयोगी सिद्ध होता है।

(3) यह अनुदेशन की गुणात्मकता को बढ़ावा देने में सहायक है क्योंकि दूरदर्शन के कार्यक्रमों को सुव्यवस्थित एवं कक्षा अनुदेशन की तुलना में समुचित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

(4) यह छात्र-छात्राओं की शिक्षक पर निर्भरता को कम करने के लिये सक्षम है। छात्र-छात्राएं अपने व्यक्तिगत प्रयासों से स्वतन्त्र रूप से सीखने में सफल हो सकते हैं। यदि दूरदर्शन की उपयोगिता का विस्तरीकरण कर दिया जाये तो शिक्षक की आवश्यकता को कम किया जा सकता है।

(5) इसके कार्यक्रमों में लचकीलापन होता है। दूरदर्शन द्वारा पाठ्यक्रम एवं नवीन अनुदेशनात्मक तकनीकों को विकसित किया जा सकता है। सामाजिक आवश्यकता एवं शिक्षा के विस्तार के पाठ्यक्रम में निरन्तर संशोधन किया जा सकता है।

(6) इसके द्वारा प्रतिभावान शिक्षकों की सेवाओं का लाभ अधिक से अधिक छात्र-छात्राओं द्वारा उठाया जा सकता है क्योंकि यह स्कूल और कालिजों की अपेक्षा अधिक निकट है। इससे सभी को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होते हैं।

(7) इसके माध्यम से देश के प्रत्येक भाग में कम व्यय पर शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

(8) दूरदर्शन सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु बहुत लाभप्रद है। एन.सी.ई.आर.टी. शिक्षकों को अपनी शिक्षण विधियों और कौशलों का विकास करने के लिये प्रत्येक सप्ताह में कुछ शैक्षिक कार्यक्रमों का आयोजन करती है।

(9) दूरदर्शन के द्वारा दृश्य एवं श्रव्य क्रियाओं का लाभ उठाया जा सकता है क्योंकि यह दृश्य एवं श्रव्य घटकों का मिश्रण है। इसमें आकाशवाणी और अन्य साधनों से लाभकारी साधन उपलब्ध होते हैं।

(10) दूरदर्शन की सहायता से शिक्षा के अन्य रूपों में भी गुणात्मक सुधार लाये जा सकते हैं क्योंकि दूरदर्शन के कार्यक्रमों में छात्र-छात्राएं सक्रिय रूप से रुचि लेते हैं।

दूरदर्शन की सीमाएं
[Limitations of Television]

दूरदर्शन की शैक्षिक उपयोगिता के साथ-साथ कुछ सीमाएं भी हैं जो निम्नलिखित हैं-

(1) यह एक तरफा संचार का माध्यम है। इसमें अन्त:क्रिया सम्भव नहीं होती है। छात्र-छात्राएं अपने प्रश्नों का समाधान प्राप्त नहीं कर सकते। शिक्षकों का कहना है कि सूचना एकत्रित करने के लिये यह एक अच्छा साधन है लेकिन शिक्षण की दृष्टि से इसमें अधूरापन है। शिक्षण प्रक्रिया में आदान-प्रदान का होना आवश्यक है। इससे छात्र-छात्राओं की जिज्ञासा शक्ति का विकास नहीं होता।

(2) छात्र-छात्राओं को अपनी गति से सीखने का अवसर नहीं मिलता क्योंकि इसके माध्यम से व्यक्तिगत विभिन्नताओं के आधार पर शिक्षा सम्भव नहीं हो सकती।

(3) शिक्षण संस्थाओं में अधिकांश रूप से इसके द्वारा शिक्षा देने हेतु समुचित ढंग से कार्यक्रमों की व्यवस्था नहीं होती।

(4) दूरदर्शन के द्वारा शिक्षण काफी महंगा है। कई प्रकार के शिक्षा साधनों से युक्त दूरदर्शन शिक्षा कार्यक्रम भारत जैसे विकासशील देश अवहनीय क्योंकि यह बहुत खर्चीला है।

(5) दूरदर्शन के कार्यक्रमों को तैयार करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। शिक्षण हेतु अनेक शिक्षण साधन हैं और अनेक शिक्षण विधियां हैं। इनका एकीकरण करने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

दूरदर्शन का क्षेत्र और सुझाव
[Suggestions and Scope of Television]

शिक्षा क्षेत्र में दूरदर्शन कार्यक्रमों का प्रसारण अभी तक विकसित देशों में ही सम्भव हो पा रहा है। भारत एक विकासशील देश है और अभी यह सम्भव नहीं है कि भारत शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण दूरदर्शन के माध्यम से सन्तोषजनक ढंग से कर सके। गत तीन वर्षों में भारत में शैक्षिक कार्यक्रमों का विकास बहुत धीमी गति से हुआ है और सीमित क्षेत्र में ही हुआ है। सन् 1984 के आरम्भ से सन् 1987 के अन्त तक बिना किसी कठिनाई के कोई भी कार्यक्रम प्रसारित नहीं किया जा सका है। वर्तमान स्थिति यह है कि भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या को 200 ट्रांसमीटरों के द्वारा दूरदर्शन कार्यक्रम प्रसारित हो रहा है। किसी भी प्रकार से इस प्रसारण को सन्तोषजनक उपलब्धि नहीं माना जा सकता। लेकिन यह कहना उचित होगा कि दूरदर्शन के कार्यक्रमों के विस्तार द्वारा पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में सन्तोषजनक प्रगति हुई है। भविष्य में भारतीय प्रशिक्षकों के लिये यह आवश्यक हो जायेगा कि वे दूरदर्शन के कार्यक्रमों में अधिक सहयोग करें। उनके द्वारा रचनात्मक सहयोग विभिन्न विषयों के कार्यक्रम तैयार करने में दिया जा सकता है और फिर दूरदर्शन द्वारा पर्यावरण शिक्षा के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित कैसेट तैयार किये जा सकते हैं और फिर उनका समय-समय पर आवश्यकता अनुसार प्रसारण किया जा सकता है।

इग्नू शिक्षा तकनीकी विकास की दृष्टि से एक अच्छी सफल संस्था है। इग्नू और अन्य इग्नू जैसी अन्य संस्थाओं का शिक्षा तकनीकी के उपयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार इन संस्थाओं की सहायता से स्व-अनुदेशनात्मक सामग्री को पर्याप्त रूप से बढ़ावा दिया जा सकता है।

दूरदर्शन कार्यक्रम से सम्बन्धित कुछ सुझाव निम्नलिखित हैं–

(1) पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों के लिये रचनात्मक मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। रचनात्मक मूल्यांकन पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रमों की गुणवत्ता

बढ़ाने में सहायक सिद्ध होती है। रचनात्मक मूल्यांकन शोध के आधार पर होना चाहिये। शोध से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर ही कार्यक्रम की रूप-रेखा तैयार की जानी चाहिये।

(2) हमारे भारत देश में इस प्रकार की कोई संस्था नहीं है जिसके द्वारा इस प्रकार के कार्यक्रमों को तैयार किया जा सके, जिसके द्वारा रचनात्मक मूल्यांकन सम्भव हो सके। इगनू जैसे मुक्त विश्वविद्यालय इस प्रकार के कार्यक्रम तैयार करने में जुटे हैं जिससे प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रोत्साहन मिल सके। इगनू ही हमारे देश में अपने प्रकार की ऐसी संस्था है, जिसमें शिक्षा देने हेतु दूरदर्शन एवं आकाशवाणी का प्रयोग किया जाता है। इसलिये इगनू में इस प्रकार के कार्यक्रम की व्यवस्था की जा सकती है।

(3) पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों को तैयार करने हेतु और उनकी गुणवत्ता बनाये रखने की दृष्टि से अनुसंधान कर्त्ताओं को पूर्ण रूप से सहयोग देना चाहिये। उनको अनुसंधान तक सीमित न रहकर अनेक प्रकार के कार्यक्रमों को तैयार करने में सक्रिय योगदान देना चाहिये।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. पर्यावरण अध्ययन शिक्षण की वाद-विवाद अथवा तर्क विधि का वर्णन करें।
   [Discuss in detail the Discussion Method of teaching Environmental Education.]
2. योजना विधि क्या है? पर्यावरण शिक्षा में योजना विधि का सविस्तार वर्णन करो।
   [What do you mean by Project Method? Discuss in detail the project method for imparting Environmental Education.]
3. प्रदर्शन विधि की पर्यावरण शिक्षा में क्या भूमिका है? प्रदर्शन विधि के गुणों और अवगुणों की चर्चा कीजिये।
   [What is the role of Demonstration Method in Environmental Education? Discuss the merits and demerits of this method.]
4. संक्षिप्ति टिप्पणी लिखें–
   (1) निरीक्षण विधि
   (2) प्रदर्शनी विधि
   (3) दूरदर्शन
   [Write a brief note on the following—
   (1) Observation Method
   (2) Exhibition
   (3) Television.]

Unit–III

पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम का विकास

[Curriculum Development in Environmental Education

पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम का विकास
[CURRICULUM DEVELOPMENT IN ENVIRONMENTAL EDUCATION]

छात्र-छात्राओं को शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से पाठ्यक्रम का विशेष स्थान है। इसलिये पाठ्यक्रम का निर्माण एवं विकास बहुत सुव्यवस्थित ढंग से किया जाना चाहिये। यदि पाठ्यक्रम का नियोजन एवं निर्माण सुचारू रूप से होता है तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति सहजता एवं सरलता से हो जाती है और यदि पाठ्यक्रम बिना सूझबूझ अर्थात् ना समझी से बना होता है तो निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती। इसलिये पाठ्यक्रम नियोजन एवं निर्माण और विकास से सम्बन्धित बातें हमारे मस्तिष्क में स्पष्ट होनी चाहिये जिससे पाठ्यक्रम का गठन एवं विकास सही ढंग से किया जा सके।

पाठ्यक्रम शिक्षा के क्षेत्र में एक ऐसा साधन है जो शिक्षा तथा जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होता है। पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेज़ी के 'केरीकुलम' (Curriculum) शब्द का पर्यायवाची है। 'केरीकुलम' एक लेटिन शब्द है जिसका अर्थ 'दौड़ का मैदान' है। शिक्षा के क्षेत्र में इसका तात्पर्य विद्यार्थी की 'दौड़ के मैदान' से है। शिक्षा की तुलना एक दौड़ से की जाती है जिसमें पाठ्यक्रम उस दौड़ के मैदान के सदृश है जिसको पार करके एक दौड़ने वाला अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचता है। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम वह मार्ग है जिसका अनुसरण करके विद्यार्थी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करता है। बेन्ट और क्रोनेन बर्ग ने अपनी पुस्तक 'माध्यमिक शिक्षा के सिद्धान्त' में पाठ्यक्रम के बारे में उल्लेख किया है कि "संक्षेप में पाठ्यक्रम वस्तु का सुव्यवस्थित रूप है जो बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता है।"

पाठ्यक्रम क्या है?
[What is Curriculum?]

कनिंघम (Cunningham) के अनुसार, "कलाकार (शिक्षक के हाथ में यह एक साधन है जिससे वह पदार्थ (शिक्षा) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपने स्कूल में ढाल सके।" [The curriculum is the tool in the hands of the artist (the teacher) to mould his material (the pupil) according to his ideal (objective) in his studio (the school)]. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पाठ्यक्रम अध्ययन का एक क्रम है जिसके अनुसार चलकर विद्यार्थी ज्ञान, शिक्षा एवं जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करता है।

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार पाठ्यक्रम एक ऐसा महत्त्वपूर्ण साधन है जिससे शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति होती है।

डॉ० इकबाल बहादुर वर्मा (Dr. I.B. Verma) ने इस विचार को निम्न शब्दों इस प्रकार अभिव्यक्त किया है अर्थात् पारिभाषित किया है–"यह (पाठ्यक्रम) क्रियाओं और अनुभवों की शृंखला जिसका निर्माण पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी की भलाई के लिये करती है ताकि वह समाज के आदर्श सदस्य बन सकें।" (It is a series of activities and experiences which the older generation plans for the benefit of the younger generation so that they become the ideal members of society.)

क्रो और क्रो (Crow and Crow) के अनुसार, "पाठ्यक्रम में विद्यालय या विद्यालय से बाहर विद्यार्थी के वे सभी अनुभव शामिल हैं जिनके उस कार्यक्रम में रखा गया है जो उसके मानसिक, शारीरिक, संवेदनात्मक, सामाजिक, अध्यात्मक व नैतिक विकास के लिये निर्मित हुआ है।" (Curriculum includes all the learner's experiences in or outside school that are included in a programme which has been devised to help him develop mentally, physically, emotionally, socially, spiritually and morally.)

माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) ने पाठ्यक्रम की परिभाषा इन शब्दों में दी है–"इसमें वे सभी अनुभव शामिल हैं जिन्हें विद्यार्थी स्कूल, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला व खेल के मैदान में होने वाली अनेक क्रियाओं व अध्यापक के साथ अनेक अनौपचारिक सम्बन्धों से प्राप्त करता है।" (It included the totality of experiences that pupil receives through the manifold activities that go on in the school, in the class-room, library, laboratory, workshop, playgrounds and in the numerous informal contacts between teachers and pupils.)

फ्रांसिस जे० ब्राऊन (Francis J. Brown) के अनुसार, "यह (पाठ्यक्रम) समग्र स्थिति या स्थितियों का समूह है जो अध्यापक व स्कूल प्रशासक को उपलब्ध हैं और जिनके द्वारा उन असंख्य बच्चों व नवयुवकों के व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सकता है जो स्कूल के दरवाज़ों से गुज़रते हैं।" [It (curriculum) is the total situation or group of situations available to the teacher and school administrator through which to make behaviour changes in the ehdless stream of children and youth that pass through the doors of the school.]

ब्राऊन ने अपनी इस परिभाषा में स्वयं व्याख्या करते हुए कहा है कि पाठ्यक्रम में चार बातें शामिल हैं–(क) विषय, (ख) शिक्षण विधि, (ग) स्कूल व शिक्षा संगठन, (घ) मूल्यांकन।

पाठ्यक्रम के आधुनिक स्वरूप की व्याख्या **ग्राम्बस व मक्लयोर** ने इस प्रकार की है–"पाठ्यक्रम के पूर्ण विवरण में कम-से-कम तीन भाग शामिल होते हैं–

(क) क्या अध्ययन किया जाता है–अध्यापन का विषय

(ख) कैसे यह अध्ययन या अध्यापन किया जाता है–अध्यापन की विधि

(ग) कब विभिन्न विषयों को प्रस्तुत किया जाता है–अध्यापन का क्रम।"

(A complete description of the curriculum has at least three components—

(*a*) What it studies—the content or subject of instruction.

(*b*) How they study and teaching are done—the method of instruction.

(*c*) When the various subjects are presented—the order of instruction.)

दी एजूकेटर्ज़ इनसाईक्लोपीडिया ने पाठ्यक्रम की संक्षिप्त व अर्थपूर्ण परिभाषा दी है। इस पुस्तक के अनुसार पाठ्यक्रम वह "समग्र अनुभव है जो विद्यार्थी स्कूल के निरीक्षण में प्राप्त करता है।" ("The total experience the learner has under the supervision of the school.—The Educator's Encyclopedia.")

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम से हमारा अभिप्राय स्कूल के निरीक्षण में चलने वाली उन सभी क्रियाओं से है जिनका आयोजन शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है। पाठ्यक्रम के प्रमुख अंग हैं–(क) विषय वस्तु व सहगामी क्रियाएं, (ख) शिक्षण विधि व (ग) विषय एवं क्रियाओं का क्रम।

पाठ्यक्रम की आवश्यकता एवं महत्त्व [Need and Importance of Curriculum]

शिक्षा प्रक्रिया में पाठ्यक्रम का बुहत अधिक महत्त्व है। बिना पाठ्यक्रम के किसी शिक्षा प्रणाली के बारे में सोचना भी सम्भव नहीं है। पाठ्यक्रम के द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। विद्यालय में विद्यार्थियों के सही विकास के लिये पाठ्यक्रम का शिक्षा में बहुत महत्त्व एवं आवश्यकता है।

किस स्तर पर विद्यार्थियों को कितनी शिक्षा देनी है, कितना ज्ञान प्राप्त करना है, किस कौशल में दक्षता प्राप्त करनी है और किन दृष्टिकोणों का निर्माण करना है–इसकी व्यवस्था पाठ्यक्रम में होती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के नियन्त्रण से समाज के सभी विद्यालयों में शिक्षा के स्तर को समान किया जा सकता है। निश्चित पाठ्यक्रम में पाठ्य-पुस्तकों की रचना एवं मूल्यांकन में भी सहयोग मिलता है।

शिक्षा प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने के लिये पूर्व नियोजित पाठ्यक्रम की सहायता की आवश्यकता होती है। अध्यापक को यह ज्ञात होता है कि उसे क्या पढ़ाना है और विद्यार्थी को यह पता होता है कि उसे क्या पढ़ना है। अध्यापक और विद्यार्थी एक निश्चित अवधि में पूर्व निर्धारित कार्य को पूरा करते हैं। इससे समय व शक्ति का दुरुपयोग नहीं होता।

विद्यार्थियों की रुचि एवं आवश्यकताओं को देखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। इसमें सभी विषय एवं क्रियाएं किसी व्यवस्थित क्रम में होती हैं। रुचिकर एवं उपयोगी पाठ्यक्रम की उपस्थिति में विद्यार्थी अपने कार्य को अधिक उत्साह से करते हैं। इस प्रकार विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिये पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम का होना अनिवार्य है।

पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकार [Different Types of Curriculum]

शिक्षा प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिये अनेक शिक्षा शास्त्रियों ने पाठ्यक्रम की रचना के लिये अपने अनेक सुझाव दिये हैं जिनके फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का विकास हुआ है। क्रो और क्रो ने परम्परागत पाठ्यक्रम के अतिरिक्त चार नये पाठ्यक्रमों की चर्चा की है। ये निम्नलिखित हैं–

(1) सहसम्बद्ध पाठ्यक्रम
(2) मिश्रित पाठ्यक्रम
(3) कोर पाठ्यक्रम और
(4) अनुभव पाठ्यक्रम

इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रयोग भारत में बेसिक शिक्षा पाठ्यक्रम के रूप में हुआ है जो इनमें से किसी एक श्रेणी में शामिल नहीं हो सकता। इन सभी प्रकार के पाठ्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है–

1. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम (The Subject Centred Curriculum)–इस प्रकार के पाठ्यक्रम में समस्त ज्ञान को विषयों के आधार पर बांट दिया जाता है और विद्यालय की पुस्तकों के रूप में इनका अध्ययन किया जाता है और इस पाठ्यक्रम की सत्ता को समाप्त करने के लिये प्रयास किये गए हैं। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में पुस्तकों पर बल दिया जाता है। इसलिये इसे 'पुस्तक केन्द्रित पाठ्यक्रम' भी कहते हैं। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में अनेक दोष हैं। आज की परिस्थितियों में यह पाठ्यक्रम लोकप्रिय नहीं है।

2. बालक केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child Centred Curriculum)–इस प्रकार के पाठ्यक्रम में विषयों को महत्त्व न देकर बालकों को महत्त्व दिया जाता है। पाठ्यक्रम का संगठन बालक की प्रकृति, आवश्यकता एवं रुचि के आधार पर किया जाता है जिससे कि उसके व्यक्तित्व का विकास हो सके। मनोविज्ञान इस बात पर बल देता है कि यदि बालक की रुचियों और आवश्यकताओं पर ध्यान न दिया गया तो उसका विकास न हो सकेगा। इसलिये मनोविज्ञान ने इस बात पर बल दिया है कि पाठ्यक्रम बालकों की रुचियों एवं आवश्यकताओं के आधार पर संगठित किया जाए। सभी आधुनिक शिक्षा पद्धतियां इस प्रकार के पाठ्यक्रम पर जोर देती हैं।

3. क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम (Activity Centred Curriculum)–इस प्रकार का पाठ्यक्रम विभिन्न क्रियाओं पर आधारित होता है। छात्र-छात्राओं के लिये ऐसे कार्यों का आयोजन किया जाता है जिनका कुछ सामाजिक मूल्य हो और विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास में सहायक हो। इन क्रियाओं का चयन शिक्षक और विद्यार्थियों के सहयोग से किया जाता है और चयन के समय विद्यार्थियों की रुचि का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। जॉन डीवी महोदय क्रियाशील पाठ्यक्रम के प्रमुख समर्थक हैं। वे छात्र-छात्राओं को समाज उपयोगी क्रियाओं द्वारा शिक्षा देने का सुझाव रखते हैं जिनके सीखने पर वे भविष्य में समाजोपयोगी नागरिक बन सकें।

4. सुसम्बन्ध पाठ्यक्रम (Correlated Curriculum)–इस प्रकार के पाठ्यक्रम से तात्पर्य है कि पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में परस्पर सह-सम्बन्ध हो। वे एक-दूसरे से बिल्कुल अलग न हों। आज के पाठ्यक्रम का सबसे बड़ा दोष यही है कि जो विषय पढ़ाये जाते हैं उनमें आपस में सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जाता। ज्ञान अलग-अलग विभाजित रहता है। यह दोषपूर्ण है। ज्ञान एक इकाई है। इसलिये इसे विभाजित नहीं करना चाहिये। उसको सम्बन्धित रूप में ही प्रदान करना चाहिये।

5. मिश्रित पाठ्यक्रम (Mixed Curriculum)–विभिन्न विषयों का आपसी सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक और प्रयास किया गया है जिसे मिश्रित पाठ्यक्रम का नाम दिया गया है। इस पाठ्यक्रम में सम्बन्धित विषयों को मिलाकर एक विषय बना दिया जाता है। उदाहरणतया, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र व प्राणी शास्त्र को मिलाकर सामान्य विज्ञान और भूगोल, इतिहास व नागरिक शास्त्र को मिलाकर सामाजिक अध्ययन के विषय को बनाने का प्रयास किया गया है। परन्तु मिश्रित पाठ्यक्रम का यह अर्थ कदापि भी नहीं लेना चाहिये कि कुछ विषयों को मिलाकर उनका नया नाम रख दिया जाए। मिश्रित पाठ्यक्रम में सम्बन्धित विषयों के ज्ञान को इकाई के रूप में माना जाता है और किसी एक प्रकरण के अध्ययन में आवश्यक समस्त ज्ञान का एक स्थान पर केन्द्रीयकरण किया जाता है।

6. कोर पाठ्यक्रम (Core Curriculum)–यह पाठ्यक्रम अमेरिका की देन है। इस पाठ्यक्रम में कुछ विषय ऐसे होते हैं जो सभी छात्र-छात्राओं के लिये अनिवार्य होते हैं और बहुत से ऐसे होते हैं जिनमें से वे कुछ अपनी रुचि के अनुसार चयन कर लेते हैं। जो विषय अनिवार्य होते हैं वे ऐसे होते हैं जिनका सभी छात्र-छात्राओं के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इस पाठ्यक्रम की कई विशेषताएं हैं। पहली विशेषता यह है कि एक ही ज्ञान कई विषयों द्वारा दिया जाता है। विषय एक-दूसरे से अलग करके नहीं पढ़ाये जाते। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि किसी भी विषय के लिये समय निश्चित नहीं होता। तीसरी विशेषता यह है कि छात्र-छात्राओं को क्रियाओं द्वारा वर्तमान एवं भावी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

कोर पाठ्यक्रम का उद्देश्य छात्र-छात्राओं को व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं से परिचत कराना है और उनको ऐसी शिक्षा देना है कि वे इन समस्याओं का समाधान कर सकें। इस पाठ्यक्रम द्वारा ऐसे अनुभव प्रदान करने का प्रयास किया जाता है जो उन्हें समाज के उपयोगी एवं उत्तम नागरिक बनाने में सहायक हो।

7. अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम (Experience Centred Curriculum)-इस प्रकार के पाठ्यक्रम में अनुभवों को प्रधानता दी जाती है। समस्त मानव जाति के अनुभव जिनसे छात्रों को प्रेरणा मिल सके और वे अपने जीवन को उपयोगी और सार्थक बना सकें। इस पाठ्यक्रम में मानव के अनुभवों को शामिल करते हैं। दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम अनुभवों पर आधारित होता है। नन महोदय के कथनानुसार पाठ्यक्रम में समस्त मानव जाति के अनुभवों को शामिल करना चाहिये। व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिये और जीवन को सफल बनाने के लिये वर्तमान अनुभवों की अपेक्षा भूतकाल के अनुभव अधिक उपयोगी होते हैं।

पाठ्यक्रम विभाजन
[Division of Curriculum]

पाठ्यक्रम के विषयों को चुन लेने के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि उनमें परस्पर क्या सम्बन्ध हो? वे एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक रखे जाएं अथवा जंज़ीर की कड़ियों की भांति एक-दूसरे से गुंथे रहें। इस प्रसंग में लगभग सभी शिक्षा शास्त्रियों का यह मत है कि जिस प्रकार समाज में प्रत्येक मनुष्य एक-दूसरे के सहारे पर टिका हुआ है, उसी प्रकार शिक्षा में प्रत्येक विषय परस्पर जोड़कर पढ़ाये जाने चाहिये। तभी बालक को समाज में सफलतापूर्वक रहने के लिये तैयार किया जा सकता है। सम्पूर्ण ज्ञान एक इकाई है, उसे पृथक्-पृथक् खण्डों में नहीं बांटा जा सकता। अतः पाठ्यक्रम के विभिन्न भागों को ही ज्ञान न समझने लग जाए। यदि बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना है तो पाठ्यक्रम के विषयों की विविधता के बीच समवाय स्थापित करना अनिवार्य है। समवाय के अभाव में शिक्षा के सम्बन्धित उद्देश्य की पूर्ति कठिन हो जाएगी और जिस निष्क्रियता, औपचारिकता एवं शब्दाडम्बर को हम शिक्षा से दूर करना चाहते हैं वही महत्त्व के पद पर आसीन हो जाएगी। नन और डयूबी ने हमें इस भूल से बचने का आदेश दिया है। उन्होंने शिक्षा की प्राथमिक अवस्था समवाय को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक बतलाया है। अतः विषयों के स्थान पर आज क्रियाओं की स्थापना कर दी गई है। नन और डयूबी ने पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के समवेतीकरण का मुख्य साधन बालक बताया है। उनका कथन है कि जब तक बालक शिक्षा की समस्त कार्यवाहियों का केन्द्र-बिन्दु है तब तक पृथक्-पृथक् प्रवृत्तियों को पनपने का अवसर नहीं मिलेगा। इस प्रकार डयूबी ने पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के बीच समवाय रखने के सुझाव का समर्थन किया है।

उपर्युक्त विवरण से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि नियमित (Formal) शिक्षा बिल्कुल व्यर्थ है और पाठ्यक्रम का विभाजन अप्रासंगिक तथा अनावश्यक है।

यद्यपि शिक्षा-शास्त्री इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्थाओं में नियमित शिक्षा को गौण और बालक की सोद्देश्य क्रियाओं को प्रमुख स्थान मिलना चाहिये तथापि वे नियमित शिक्षा का विरोध नहीं करते। उनके कथानानुसार यदि बालक को नियमित आदेशों (Formal Instructions) की आवश्यकता होती है तो उसे नियमित आदेश अवश्य मिलने चाहियें। यही बात पाठ्यक्रम के विभाजन के सम्बन्ध में ठीक है। स्कूल का यह कर्त्तव्य है कि वह बालक को समस्त मानव जाति के अनुभवों के सार से परिचित कराये और उसे ऐसा ज्ञान दे जो उसके भावी जीवन में काम आ सके। इस कार्य के लिये शिक्षक को मानव अनुभव के विश्लेषण और खण्ड-खण्ड करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है क्योंकि तभी वह यह निश्चित कर सकता है कि अनुभव के अमुक भाग को स्कूल में लाभपूर्वक क्रियान्वित किया जा सकता है। इस प्रकार हमें पाठ्यक्रम को स्वतन्त्र क्रियाओं में विभक्त करना पड़ता है परन्तु क्रियाएं सोद्देश्य होनी चाहिएं जिससे बालक यह अनुभव कर सके कि उसे अपने ज्ञान तथा कौशल का विस्तार करना आवश्यक है अन्यथा जीवन की समस्याओं के हल की सम्भावना कम हो जायेगी। चतुर शिक्षक इस बात का ध्यान रखता है कि बालक का साक्षात् उन कठिनाइयों से हो जाए जो बिना गणित तथा साहित्य के ज्ञान के हल नहीं हो सकतीं। सावधानी इस बात की रखनी चाहिये कि शिक्षा की प्रक्रिया को एक ऐसी लम्बी तैयारी मात्र न समझ लिया जाये जिसका विद्यार्थी के लिये कोई प्रयोजन न हो। दूसरे शब्दों में यदि विद्यार्थी को अपने अध्ययन का तत्कालीन लाभ न दिखाई पड़ेगा तो बहुत सम्भव है कि वह उस तैयारी को निरर्थक, निष्प्रयोजन एवं लाभशून्य समझे। अतएव पाठशालीय क्रियाओं का तत्कालीन प्रयोजन अनुभव कराना एक सफल पाठ्यक्रम एवं शिक्षक का प्रथम कर्त्तव्य है।

नन द्वारा प्रस्तावित पाठ्यक्रम के आदर्श को अनेक शिक्षा-शास्त्री कल्पना का आदर्श मात्र मानते हैं। उनके कथनानुसार नन का पाठ्यक्रम लक्ष्य सुन्दर और आदर्श तो अवश्य है परन्तु वास्तविक जगत में उसकी प्राप्ति असम्भव है। पाठ्यक्रम के इस आदर्श उद्देश्य मानव जगत की सर्वोत्कृष्ट निष्पत्तियों के साक्षात्कार को साधारण योग्यता का बालक प्राप्त नहीं कर सकता। रौस महोदय का कथन है कि उक्त साक्षात्कार पूर्णरूपेण भले ही सम्भव न हो परन्तु आंशिक रूप में शिक्षा की विभिन्न अवस्थाओं में यह अवश्य सम्भव हो सकता है। **प्रो. ए.एन. व्हाइटहैड** (Prof. A.N. Whithead) ने शिक्षा जीवन की तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है। ये तीन अवस्थाएं निम्नलिखित हैं-

1. कौतूहल (Romance)
2. यथार्थता (Precision)
3. सामान्यीकरण (Generalization)

प्रत्येक विद्यार्थी के शिक्षा-जीवन की पहली अवस्था ऐसी होती है जिसमें बालक के मानस में वस्तु जगत के सामग्री-वैचित्र्य के कारण और उसके विचार और अनुभवों के कारण कौतूहल-सा होता है। इसी कौतूहलपूर्ण वातावर्ण में वह कुछ सीखता है। कौतूहल

की अवस्था समाप्त होने पर यथार्थता की अवस्था आरम्भ होती है जिसमें बालक ठीक-ठीक नियम निर्धारण तथा तथ्य-संकलन करने के लिये प्रेरित होता है। इसमें वह अपने ज्ञान व कौशल को बढ़ाता है। किशोरावस्था उसके शिक्षा-जीवन की तीसरी अवस्था है। इस अवस्था में उसके मन में सामान्यीकरण की उत्कंठा जागृत होती है। इस अवस्था में शिक्षार्थी विस्तृत दृष्टिकोण अपनाने तथा गूढ़ सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न करता है। व्हाइटहैड महोदय के अनुसार पाठ्यक्रम की उक्त तीन अवस्थाओं का समावेश होना चाहिये। दूसरे शब्दों में पाठ्य विषयों का रूप तथा उनकी सीमा उक्त अवस्थाओं के अनुसार ही निर्धारित होनी चाहिये। नन महोदय ने भी शिक्षण प्रक्रिया के तीन सोपान माने हैं। उन्होंने इन तीन सोपानों को जिज्ञासा (Wonder), उपयोगिता (Utility), और व्यवस्था (System) की संज्ञा से विभूषित किया है। प्रत्येक विषय के शिक्षण में इन तीन सोपानों का अनुकरण आवश्यक है क्योंकि ये तीनों बाल-विकास के भी सोपान हैं। उदाहरणार्थ, पर्यावरण-शिक्षा का प्रारम्भ दन्त कथाओं और कहानियों से होना चाहिये। कालान्तर में बालक पर्यावरण से सम्बन्धित प्राकृतिक और अप्राकृतिक घटनाओं के बारे में जानने के लिये उत्सुक होगा और उन तथ्यों को समझने का प्रयास करेगा जो घटनाओं का कारण बनते हैं। तत्पश्चात् घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया जायेगा जिससे वर्तमान पर्यावरण को समझने में सहायता मिले। पर्यावरण शिक्षा के उद्देश्य तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जब मनुष्य पर्यावरण की विशेष परिस्थितियों को समझ सके और आज के प्रदूषित वातावरण को स्वच्छ बनाने के लिये सही दृष्टिकोण से देख सके।

पर्यावरण शिक्षा पाठ्यक्रम निर्धारण के सिद्धान्त [Principles of the Construction of Curriculum of Environmental Education]

पर्यावरण शिक्षा के स्वरूप को जानने के बाद इसके पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों को आंशिक रूप से अवश्य ही सुनिश्चित किया जा सकता है। ये सिद्धान्त निम्न हैं-

1. मानव जाति के अनुभवों का ज्ञान होना (Imparting knowledge of experiences of Human being)-पर्यावरण शिक्षा में पाठ्यक्रम निर्धारण का सिद्धान्त यह होना चाहिये कि पाठ्यक्रम में ऐसी क्रियाओं, स्थितियों, विषयों और वस्तुओं को सम्मिलित करना चाहिये जो छात्र-छात्राओं को समस्त मानव जाति के अनुभवों की जानकारी कराये। इन अनुभवों को छात्र-छात्राएं कक्षा में, खेल के मैदान में, प्रयोगशाला में अथवा अन्य किसी स्थान पर प्राप्त कर सकते हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद वे जाति के जीवन में भाग लेने के लिये पूर्ण रूप से तैयार हो जाते हैं।

2. जीवन से सम्बन्धित (Related with Life)-पाठ्यक्रम में वही पाठ्य-वस्तु अथवा क्रियाएं सम्मिलित की जायें जो किसी-न-किसी रूप में अर्थात् प्रत्यक्ष रूप या अप्रत्यक्ष रूप में छात्र-छात्राओं के वर्तमान जीवन से सम्बन्धित हों।

3. रुचियों और योग्यताओं का ध्यान (Keeping in view the Interest and Abilities)–इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम की रचना छात्र-छात्राओं की रुचियों और योग्यताओं के अनुसार होनी चाहिये। जिस श्रेणी में जिस रुचि, योग्यता अथवा आकांक्षा के छात्र हों उसी प्रकार की पाठ्य-वस्तु होनी चाहिये जिससे विद्यार्थियों को सीखने में आनन्द आये और कोई कठिनाई न हो। जिस वस्तु के सीखने में आनन्द आता है उसे बालक शीघ्र सीख लेता है और पर्याप्त समय तक याद रखता है।

4. व्यक्तिगत विभिन्नताओं का सिद्धान्त (Individual Differences)–इस सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान रखा जाता है। पाठ्यक्रम व्यक्तिगत भेदों पर आधारित होना चाहिये। शिक्षा मनोवैज्ञानिक विकास के पहले सभी व्यक्तियों के लिये एक जैसा पाठ्यक्रम उपयुक्त समझा जाता था। अब मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न है और उसका अपना एक विशेष व्यक्तित्व है। पाठ्यक्रम द्वारा विशेष व्यक्तित्व का विकास होना चाहिये।

5. सामाजिक पक्ष का ध्यान (Emphasis on Social Aspect)–इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसी क्रियाएं हैं जो विद्यार्थियों की सामाजिक भावनाओं को प्रोत्साहित करें। ऐसी भावनाओं के जागृत होने पर विद्यार्थी समाज में रहने योग्य बन सकेगा और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा। पाठ्यक्रम में समस्त मानव जाति की ऐसी प्रथाओं और मान्यताओं एवं सामाजिक समस्याओं को स्थान देना चाहिये जो विद्यार्थी के वर्तमान जीवन से सम्बन्धित हो। स्कूलों में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये जिनका मानव जाति से सम्बन्ध हो। इस प्रकार के कार्यक्रम छात्र-छात्राओं को समाज में भली प्रकार रहने के लिये शक्ति प्रदान करते हैं और उनके अनुभवों को सार्थक एवं सशक्त बना देते हैं। समाज में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिये पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाया जाये। ऐसा करने से बदलते समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकेगी।

6. सहसम्बन्ध (Correlation)–पाठ्यक्रम में विशेष रूप से यह बात ध्यान देने योग्य है कि पाठ्यक्रम के प्रकरणों में सह-सम्बन्ध होना चाहिये। विषय-वस्तु बिल्कुल अलग-अलग न हो। एक विषय की शिक्षा के साथ-साथ दूसरे विषयों की शिक्षा भी दी जा सके। आज के युग में सभी शिक्षा शास्त्री सह-सम्बन्धों पर बल देते हैं।

7. प्रजातन्त्रीय भावना का विकास (Development of democratic Feeling)–वर्तमान भारत में प्रजातन्त्र की स्थापना है और प्रजातान्त्रिक सरकार में पाठ्यक्रम का विशेष स्थान होता है। छात्र-छात्राओं में प्रजातन्त्र की भावना का विकास करना पाठ्यक्रम का एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य समझा जाता है। इसलिये पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो प्रजातान्त्रिक भावना एवं आदर्शों का पोषक हो। स्कूल की समस्त गतिविधियां, खेल, अध्ययन और समाज सेवी कार्य सामूहिक रूप से होने चाहियें। शिक्षक, विद्यार्थी

और समाज के लोगों को अपने कर्त्तव्यों का पालन निष्ठापूर्वक करना चाहिये तभी प्रजातान्त्रिक भावना का विकास हो सकेगा।

पर्यावरण शिक्षा और पाठ्यक्रम [Environmental Education and Curriculum]

पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण से पहले हमारे लिये यह समझना भी आवश्यक है कि पर्यावरण सचेतना से क्या तात्पर्य है और पर्यावरण शिक्षा और पर्यावरण सचेतना में किस प्रकार की भिन्नता है। क्योंकि अधिकतर यह देखा गया है कि 'पर्यावरण शिक्षा' और 'पर्यावरण सचेतना' का एक ही अर्थ लिया जाता है परन्तु ऐसा नहीं है और इन दोनों में सार्थक अन्तर है। पर्यावरण अध्ययन से सम्बन्धित विषयों भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, भूगोल, कृषि विज्ञान से पर्यावरण सचेतना ही प्रदान की जाती है। इसमें व्यक्तियों के मूल्यों, अभिवृत्तियों, मान्यताओं और कौशलों का विकास सम्भव नहीं है। इसलिये हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि पर्यावरण शिक्षा और पर्यावरण चेतना के अन्तर को समझा जाए। बेलगार्ड की अन्तर्राष्ट्रीय कार्यशाला (1975) में जो लेख पढ़े गए उनसे पर्यावरण की शिक्षा की स्थिति का बोध होता है। पर्यावरण सचेतना में विश्व के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा बोध प्राप्त किया गया। पर्यावरण चेतना के अर्थ को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया गया–

(1) भौतिक पर्यावरण, पौधे, जानवर और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्धों व निर्भरता को पहचानना और अभिवृद्धि एवं विकास को समझना।

(2) सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास करने के लिये व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप से क्रियाओं को प्रारम्भ करना।

(3) पर्यावरण के अन्तर्गत मानवीय सामग्री, स्थान तथा समय और स्त्रोत्रों की पहचान करना।

(4) पर्यावरण के स्त्रोत्रों की प्रभावपूर्ण उपयोगिता हेतु विधियों की पहचान करना जिससे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विकास और अभिवृद्धि की जा सके।

(5) प्राकृतिक साधनों के प्रयोग के लिये निर्णय लेना और उनके महत्व को समझते हुए समुदाय प्रयासों में सहायता देना जिससे उनका विशेष रूप से सदुपयोग हो सके।

पर्यावरण चेतना का विकास [Developing Environment Awareness]

संयुक्त राष्ट्र संघ का सम्मेलन 'मानव-पर्यावरण' पर स्टाक होम में जून (1971) में हुआ था जिसका मुख्य लक्ष्य पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखना था। सम्मेलन की संस्तुति के परिणाम स्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण योजना तैयार की गई जिसमें 'पर्यावरण चेतना' के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये गये–

(1) पर्यावरण से सम्बन्धित समस्याओं को पहचानना, विश्लेषण करना, समझना और स्वास्थ्य, व्यक्तिगत जीवन तथा व्यवसाय पर प्रभाव देखना।

(2) सामाजिक जीवन को विभिन्न स्तरों-जाति, परिवार, धर्म, नगर, गांव, राज्य और राष्ट्र पर समझना।

(3) राष्ट्रीय जीवन को आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से अध्ययन करना।

(4) सामाजिक, राष्ट्रीय, स्वास्थ्य और व्यवसाय की दृष्टि से पर्यावरण के महत्व का आकलन करना।

(5) शासन और सामाजिक अभिक्रमों की अन्त: क्रिया का विकास की दृष्टि से उपयोगिता को समझना और व्यक्तिगत प्रयासों तथा क्रियाओं का अवलोकन करना।

(6) व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्थिति को स्वीकार करके सौन्दर्यानुभूति का भाव विकसित करना।

इस प्रकार पर्यावरण चेतना के अन्तर्गत स्रोतों के सन्दर्भ में भौतिक तथा जैविक घटकों को पारस्परिक निर्भरता का बोध प्रदान किया जाता है।

पर्यावरण चेतना की पाठ्य वस्तु [Content of Environment Awareness]

पर्यावरण चेतना की पाठ्यवस्तु के अन्तर्गत सामाजिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक, रासायनिक तत्वों और मानवकृत पर्यावरण की चर्चा की जाती है। इस पर्यावरण की पाठ्य वस्तु को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है जो निम्न हैं-

1. भौतिक घटक-वायु, जल, भूमि, पृथ्वी, आर्द्रता और तापक्रम।

2. जैविक घटक-पौधे, जानवर, जीव-जन्तु और मानव क्रिया-कलाप, कृषि, उद्योग, यातायात आर्थिक पक्ष, राजनैतिक, सांस्कृतिक पक्ष आदि रूप से इस प्रकार पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम अप्रत्यक्ष रूप से वैज्ञानिक एवं मानवीय अध्ययन विषयों से भी सम्बन्धित है।

पर्यावरण शिक्षा और पर्यावरण चेतना में अन्तर [Difference between Environmental Education and Environmental Awareness]

पर्यावरण शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण सचेतना का विकास किया जाता है। इसलिये यह कहना उचित होगा कि पर्यावरण सचेतना (चेतना) पर्यावरण शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। इन दोनों में निम्न अन्तर हैं-

पर्यावरण शिक्षा का मुख्य कार्य सकारात्मक परिस्थितियों को उत्पन्न करना है। जिससे जीवन का विकास किया जाता है और जीवन को गुणवत्ता पूर्ण बनाया जाता है।

लेकिन पर्यावरण चेतना से भौतिक.पक्षों और जैविक पक्षों की जानकारी कराई जाती है और इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों एवं एक दूसरे की निर्भरता का बोध भी कराया जाता है।

पर्यावरण शिक्षा में भौतिक, जैविक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और मनुष्य द्वारा निर्मित वातावरण की व्याख्या की जाती है। पर्यावरण में सुधार लाने के लिये विधियों और सशक्त साधनों की खोज की जाती है। जिनके प्रयोग द्वारा मानव जीवन मे गुणवत्ता लाई जा सके। पर्यावरण चेतना में प्राकृतिक, भौतिक, जैविक पर्यावरण और मानव सामग्री और क्रियाओं की जानकारी दी जाती है। प्राकृतिक स्रोतों के सही ढंग से उपयोग का ज्ञान कराया जाता है।

पर्यावरण शिक्षा में समुचित वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है जिससे छात्र-छात्राओं के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाया जा सके इसमें शिक्षक वातावरण का सम्पादन करता है और पर्यावरण चेतना में केवल ज्ञान दिया जाता है।

पर्यावरण शिक्षा का सम्बन्ध ज्ञानात्मक क्रियात्मक और भावात्मक पक्षों के विकास से होता है लेकिन पर्यावरण चेतना का सम्बन्ध केवल ज्ञानात्मक पक्ष से ही है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पर्यावरण चेतना पर्यावरण शिक्षा का अंग है। पर्यावरण शिक्षा का सम्बन्ध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों से हैं लेकिन पर्यावरण चेतना सैद्धान्तिक पक्ष तक सीमित है।

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम [Curriculum of Environment Education at Different Stages of Education]

पर्यावरण शिक्षा का आज के युग में स्वतन्त्र रूप से निजी पाठ्यक्रम है। पर्यावरण शिक्षा की और इसके पाठ्यक्रम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें निरन्तरता की प्रवृत्ति है। यही कारण है कि पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रम को प्राथमिक स्तर से प्रारम्भ करके विश्व विद्यालय स्तर और यहां तक की प्रौढ़ शिक्षा में भी सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण शिक्षा का पाठ्यक्रम निम्न स्तरों के अनुसार-

1. प्राईमरी शिक्षा स्तर (Primary Stage)-इस स्तर पर अधिकांश रूप से पर्यावरण चेतना का विकास की दृष्टि से शिक्षण किया जाता है, इस लिये दो तिहाई से अधिक पाठ्यक्रम पर्यावरण चेतना से सम्बन्धित होता है और एक तिहाई से कम पाठ्यक्रम जीवन की परिस्थितियों और पर्यावरण संरक्षण से जुड़ा होता है। इस स्तर पर पर्यावरण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों को पर्यावरण के प्रति संवेदनशील करना होता है। आस-पास के वातावरण, घर, विद्यालय से सम्बन्धित प्रकरणों का उपयोग किया जाता है। इस स्तर पर श्रव्य-दृश्य सामग्री और शैक्षिक भ्रमणों को अधिक महत्त्व दिया जाता है छोटे बालक इस प्रकार की क्रियाओं में अधिक रूचि लेते हैं।

2. माध्यमिक शिक्षा स्तर (Secondary Stage)–माध्यमिक स्तर पर पर्यावरण संरक्षण पर विशेष रूप से बल दिया जाता है। पर्यावरण शिक्षा के ज्ञान और उसकी समस्याओं को पहचानने तथा कौशलों के विकास पर ज़ोर देते हैं। इसकी पाठ्यक्रम विज्ञान के प्रकरणों पर आधारित होती है और पर्यावरण शिक्षा की क्रियाओं को करने के लिये पर्याप्त रूप से अवसर दिया जाता है। पाठ्यक्रम में प्रयोगात्मक और क्षेत्रीय गतिविधियों को प्राथमिकता दी जाती है। परन्तु भारत विकासशील देश है और इस देश में साधनों का अभाव, आर्थिक सहायता की क़मी और पूर्णरूप से प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव के कारण पर्यावरण शिक्षा के अध्ययन की सुविधाओं को उपलब्ध कराने में कठिनाई का अनुभव हो रहा है।

3. उच्चस्तर माध्यमिक शिक्षा स्तर (Higher Secondary Stage)–इस स्तर पर पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित ज्ञान की जानकारी जीवन की परिस्थितियों और आवश्यकताओं से सम्बन्ध स्थापित करके दी जाती है। संरक्षण और स्रोतों उपयोग को वांछनीय विकास से जोड़ा जाता है। पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के पहचानने पर भी बल दिया जाता है। सामान्य विज्ञान विषय में इस प्रकार के प्रकरणों को सम्मिलित किया जाता है। व्यावहारिक और प्रयोगात्मक क्रियाओं को पर्याप्त रूप से प्रोत्साहित किया जाता है।

4. उच्च स्तर (Higher Education Stage)–इस स्तर पर पर्यावरण संरक्षण की शिक्षा अनुभवों के आधार पर दी जाती है और उसका सम्बन्ध अपेक्षित विकास के साथ जोड़ते हैं। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का सम्बन्ध वास्तविक जीवन से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। जिससे छात्रों में अभिवृत्तियों और मूल्यों का विकास किया जा सके। प्रकरणों के ज्ञान को वैज्ञानिक और तकनीकी ढंग से दिया जाता है। अध्यापक शिक्षा में पर्यावरण शिक्षा की मूल-पाठ वस्तु का शिक्षण किया जाये और शिक्षण-विषयों के प्रकरणों को सम्मिलित किया जाये। कुछ विश्वविद्यालयों में 'पर्यावरण शिक्षा' की व्याख्या की गई है। पर्यावरण से सम्बन्धित शोधकार्यों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस स्तर पर मुख्य रूप से तीन कार्य-शिक्षण, प्रसार और शोध कार्य किए जाते हैं। माध्यमों का भी पर्याप्त रूप से प्रयोग किया जाता है। विश्वविद्यालय और स्नातकोत्तर स्तर पर पर्यावरण से सम्बन्धित चार क्षेत्रों की गहनता से पहचान की गई है जो निम्न है–

1. पर्यावरण अभियान्त्रिकी (Environmental Engineering)
2. संरक्षण एवं प्रबन्धन (Conservation and Management)
3. पर्यावरण स्वास्थ्य और व्यवस्था (Environmental Organisations and Health)
4. सामाजिक-परिस्थिति की (Social Ecology)–पर्यावरण विभाग की सहायता हेतु भारत में कुछ संस्थाएं और केन्द्रों की स्थापना की गई है। जहां पर औपचारिक शिक्षा और प्रशिक्षण देने की उचित व्यवस्था की गई है। 'पर्यावरण शिक्षा केन्द्र' अहमदाबाद में है। 'भारतीय वन प्रबन्धन संस्थान' भोपाल में और 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय वन शिक्षा संस्थान' देहरादून में स्थित है।

इन संस्थाओं के मुख्य रूप से चार उद्देश्य हैं जो निम्न हैं–

1. पर्यावरण की गुणवत्ता का विकास करना।

2. छात्र-छात्राओं को पर्यावरण चेतना, समस्याओं, संरक्षण ज्ञान से अवगत कराना।

3. स्कूल और कालिजों में ऐसा वातावरण उत्पन्न करना जिससे समस्या समाधान हेतु निर्णय लेने और समाधान करने की योग्यता का विकास किया जा सके।

4. विभागीय क्रिया कलापों की प्रभावोत्पादकता के आकलन की योग्यताओं और क्षमताओं का विकास करना।

न्यूमैन (1981) में 'पर्यावरण शिक्षा' के कार्यक्रमों और योजनाओं का विभाजन चार भागों में विभाजित किया है जो निम्न है–

(क) पर्यावरण अध्ययन (Environmental Studies)–इसके अन्तर्गत पर्यावरण की विकृति और उसकी असन्तुलिता का अध्ययन किया जाता है। इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि मनुष्य व सामाजिक क्रियाओं और परिवर्तनों के माध्यम से इस विकृति और असन्तुलन को किस सीमा तक कम किया गया।

(ख) पर्यावरण विज्ञान (Environmental Sciences)–इसमे वायु, जल, भूमि और जीवों की प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जिनसे पर्यावरण में प्रदूषण होता है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण प्रदूषण को वैज्ञानिक ढंग से किस प्रकार कम या दूर किया जाये इस बात का भी अध्ययन किया जाता है।

(ग) पर्यावरण अभियान्त्रिकी (Environmental Engineering)–इसमें इस बात के अध्ययन पर बल दिया जाता है कि किस प्रकार अभियान्त्रिकी क्रियाओं का सही ढंग से उपयोग करके प्रदूषण को कम किया जा सकता है। इनके प्रभाव का मापन किन-किन प्रविधियों द्वारा किया जाता है।

(घ) अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रम (Teacher education Programme)–इस प्रकार के कार्यक्रमों का सम्बन्ध छात्र-छात्राओं में चेतना, कौशलों, अभिवृत्तियों और मूल्यों के विकास करने से होता है।

पर्यावरण-शिक्षा देने हेतु पाठ्य सहगामी गतिविधियों की भूमिका (Role of co-curricular activities for imparting Environment Educations)–पर्यावरण-शिक्षा में केवल ज्ञान एवं बोध के उद्देश्यों को प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि पर्यावरण की शिक्षा में व्यावहारिक (क्रियात्मक) पक्ष का अधिक महत्व होता है। पर्यावरण शिक्षा के क्रियात्मक पक्ष को सबल बनाने के लिये पाठ्य सहगामी गतिविधियों का सुचारु रूप से संचालन करना बहुत आवश्यक है। इसलिये विद्यालयों में पर्यावरण से सम्बन्धित पाठ्य सहगामी गतिविधियों में भाग लेने के लिये छात्र-छात्राओं को अवसर दिये जाने चाहिए। इन गतिविधियों के द्वारा पर्यावरण-शिक्षा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। इन पाठ्य सहगामी गतिविधियों का आयोजन शिक्षकों एवं प्राचार्य के द्वारा संस्था

के अन्दर या संस्था के बाहर किया जा सकता है। छात्र-छात्राओं की इस प्रकार की गतिविधियों में बहुत रूचि होती है और शिक्षक के प्रति श्रद्धा होती है। इस लिये इन गतिविधियों का संचालन बहुत सहजता से किया जा सकता है। इसके लिये यह बात आवश्यक है कि इन गतिविधियों का संचालन करने की शिक्षक में क्षमता होनी चाहिए। इस प्रकार की गतिविधियों को दो श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है जो निम्न हैं–

1. राष्ट्रीय सेवा योजना (National service Scheme)
2. समाज उपयोगी उत्पादन कार्य (Socially useful productive Work)

उपरोक्त दोनो वर्गों के अन्तर्गत निम्न गतिविधियों का अयोजन किया जा सकता है–

1. विद्यालय के वातावरण को स्वच्छ साफ-सुथरा बनाना।
2. सार्वजनिक स्थानों की सफाई करना जैसे पार्क आदि।
3. पौधे लगाना और बागीचों का विकास करना।
4. गांव में राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर का आयोजन करके सड़क का निर्माण करना और गांव में खाद कूड़ों के लिये गड्डे बनाना।
5. सांस्कृतिक कार्यों का आयोजन करना।
6. जनसंख्या के प्रति चेतना का विकास करना।
7. पर्यावरण से सम्बन्धित सहगामी सामग्री का निर्माण करना जैसे चित्र, चार्ट और पोस्टर आदि का बनाना।
8. छात्र-छात्राओं को पर्यावरण से सम्बन्धित कहानी, लेख और कविता लिखने के लिये प्रेरित करना।
9. छात्र-छात्राओं को अपने स्थानीय पर्यावरण के सुधार और विकास हेतु प्रयोगात्मक क्रियाओं को करने के लिये प्रोत्साहित करना।
10. छात्र-छात्राओं को प्रौढ़ शिक्षा के अन्तर्गत प्रौढ़ों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता का विकास करने के लिये प्रेरित करना।

भारत के सन्दर्भ में पर्यावरण की नाजुक स्थिति को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम में निम्न पक्षों पर बल दिया गया है–

(1) जनसंख्या (Population)–जनसंख्या वृद्धि का इतिहास, जनसंख्या विस्फोट से सम्बन्धित बढ़ती समस्याएं।

(2) धरती या भूमि (Earth and Land)–भूमि (Land) का सही ढंग से उपयोग और इसकी सुरक्षा पर पूर्णरूप से ध्यान दिया जाना।

(3) संसाधनों का उपयोग (Utilization of Resources)–देश के भौतिक (प्राकृतिक) संसाधनों की उपयोगिता, सुरक्षा पुन: चक्र उपयोगिता, शक्ति की उपयोगिता और सुरक्षा।

(4) भोजन और खुराक (Food and Nutrition)–भोजन के उत्पादन की व्यवस्था और इसके प्रकार, भोजन की पूर्ति (Supply) और गुणवत्ता, भोजन के लाभ भोजन में मिलावट और उसका रख-रखाव, सन्तुलित भोजन और कम भोजन मिलने से सम्बन्धित बीमारियां और उनकी रोकथाम।

(5) सुरक्षा (Conservation)–जंगल, पानी और वायु की सुरक्षा वन्य जीवन की सुरक्षा करना, प्राकृतिक साधनों की सुरक्षा और प्राकृतिक सौन्दर्य को बनाये रखना आदि।

(6) प्रदूषण (Pollution)–वायु, पानी और भूमि का प्रदूषण, शोर (ध्वनि) प्रदूषण, कीटनाशक दर्वाइयों के कारण प्रदूषण और अन्य रसायनों के प्रयोग के द्वारा फैला प्रदूषण।

(7) स्वास्थ्य (Health and Hygiene)–स्वास्थ्य से सम्बन्धित अनेक बीमारियां और समस्याएं। छूतछात की बीमारियां।

(8) प्रकृति और मानव (Nature and Man)–मावन का प्रकृति के साथ सम्बन्ध, जीव मण्डल एवं अन्य तत्वों के साथ सम्बन्ध। पर्यावरण की गुणवत्ता और धरती पर मनुष्य का भविष्य।

पर्यावरण बालक के लिये शिक्षक का भी कार्य करता है क्योंकि पर्यावरण ही अवलोकन और खोज के लिये प्रेरित करता है। इस लिये पर्यावरण अपने आप में पर्यावरण-शिक्षा के लिये सबसे बड़ी प्रयोगशाला है। पर्यावरण के गहन अध्ययन से बहुत सी कीमती सामग्री के प्रयोग करने से बचा जा सकता है। यह बालक को उसके दैनिक जीवन के अनुभवों से जोड़ता है जिससे बालक को सीखने में सहायता मिलती है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. पर्यावरण-शिक्षा पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिये।
   [Discuss the principle of the construction of the curriculum of environmental education.]
2. पर्यावरण-शिक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षा के विभिन्न स्तर पर किस प्रकार का होना चाहिए?
   [What type of curriculum of Environmental Education should be prescribed at different stages of education?]
3. पर्यावरण-शिक्षा देने हेतु पाठ्य सहगामी गतिविधियों की भूमिका की चर्चा कीजिये।
   [Discuss the role of co-curricular activites for imparting Environment Education.] ❑

Unit–IV

भारत और विदेशों में पर्यावरण से सम्बन्धित योजनाएं

[Projects in Environmental Education in India and Abroad]

भारत और विदेशों में पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित योजनायें

[PROJECTS IN ENVIRONMENT EDUCATION IN INDIA AND ABROAD]

आज पर्यावरण की समस्या के निवारण के लिये भारत में और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र से सम्बन्धित अनेक योजनाओं को कार्यान्वित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया जा रहा है क्योंकि प्रदूषण की समस्या किसी देश विशेष की समस्या नहीं है। बल्कि यह पूरे विश्व के लिये चुनौती है। इस चुनौती का सामना सभी देशों को मिलकर करना आज के समय की पुकार है। इस विश्वव्यापी समस्या के समाधान हेतु भारत में राष्ट्रीय स्तर पर और विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक योजनाएं कार्यान्वित हैं।

हमारे देश में मानव और जीव मण्डल कार्यक्रम को वितीय सहायता पर्यावरण विभाग और जीवन व वन विभाग द्वारा दी जाती है। एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना 1972 में मानव और जीव मण्डल कार्यक्रम के लिये की गई थी। यह समिति इसके सभी कार्यक्रमों का पर्यवेक्षण (Supervision) करती है। इस समिति के सदस्यों की अवधि दो वर्ष की होती है। इस समिति के सदस्यों का चयन विश्वविद्यालय तथा वैज्ञानिक संस्थानों से किया जाता है। इस समिति के मुख्य कार्य परामर्श देने और कार्यों का पर्यवेक्षण करने तक सीमित हैं। यह समिति मानव और जीव मण्डल के कार्यक्रमों को गति प्रदान करती है। मानव और जीव मण्डल के कार्यक्रम समस्या केन्द्रित होते हैं। इसमें विशेषज्ञों का समन्वित प्रयास होता है। इसमें 'प्रणाली-आयाम' (System Apporoach) को अपनाया जाता है। जिससे सबसे श्रेष्ठ समाधान विशेष परिस्थिति में दिया जा सके। मानव और जीव मण्डल के नियोजकों, नीति निर्धारकों प्रबन्धकों एवं वैज्ञानिक के लिये यह निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होता है। जिससे समस्या का पर्याप्त रूप से समाधान सम्भव हो सके।

मानव और जीव मण्डल की योजनाओं के क्षेत्र (Project Area of Man and the Biosphere Programme)

इस योजना के तहत शोध के अनेक क्षेत्रों को व्यापक दृष्टि से विभक्त किया गया है। जो निम्न हैं-

1. मनुष्य की क्रियाओं का भूमि उपयोग घास के मैदान आदि पर प्रभाव का अध्ययन करना।

2. मानव की गतिविधियों की परिस्थितिकी पर प्रभाव की वृद्धि, जिसमें परिस्थितिकी तन्त्र को भी ध्यान में रखा गया है।

3. झीलों नदियों और तटीय क्षेत्रों के स्रोतों के उपयोग से मनुष्य की क्रियाओं का परिस्थितिकी पर प्रभाव का अध्ययन।

4. भूमध्य सागरीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों में भूमि के उपयोग एवं प्रबन्धन का परिस्थितिकी पर प्रभाव का अध्ययन।

5. पहाड़ी परिस्थितिकी-तन्त्र पर मानवीय क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करना।

6. प्राकृतिक क्षेत्रों के स्रोतों के संरक्षण के उपायों की प्रभावशीलता का अध्ययन करना।

7. जलीय परिस्थितिकी तन्त्र पर रासायनिक खादों तथा कीटनाशक पदार्थों की परिस्थितिकी पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन करना।

8. मनुष्य की क्रियाओं का मरुस्थली और अर्ध मरुस्थली क्षेत्र पर सिंचाई के प्रभाव का अध्ययन करना।

9. द्वीप परिस्थितिकी-तन्त्र पर मनुष्य की क्रियाओं के प्रभाव का अध्ययन करना।

10. जनसंख्या और पर्यावरण के रूपान्तरण, अनुकूलन और प्रजनन स्वरूप की अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन करना।

11. पर्यावरण की गुणवत्ता का जीव मण्डल पर प्रभाव का अध्ययन करना।

12. पर्यावरण प्रदूषण और जीवमण्डल पर प्रभाव का अध्ययन करना।

13. मुख्य अभियान्त्रिकी के कार्यों का मानव और उसके पर्यावरण पर प्रभाव का अध्ययन करना।

14. उर्जा की उपयोगिता की दृष्टि से नगरीय प्रणाली की परिस्थितिकी के पहलुओं का अध्ययन करना।

पर्यावरण के दुष्परिणामों को देखते हुए आज आधुनिक भारत में बहुत बड़ी संख्या में शोध योजनायें विभिन्न पक्षों पर आयोजित की जा रही हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय में जैनेटिक टैक्सोलोजी (Genetic Taxalogy) की इकाई की स्थापना की गई है। प्रदूषकों का मानवीय सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रभाव और विभिन्न कारकों में सुधार एवं पोषण आदि के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

एक अन्य योजना के अन्तर्गत सल्फर डाइ-आक्साइड के वनस्पति, नगर और औद्योगिक क्षेत्र के प्रभाव का अध्ययन भी किया जा रहा है। इस कार्यक्रम में बनारस, दिल्ली, लखनऊ नागपुर, कलकत्ता, उज्जैन के विश्वविद्यालय सक्रियता से भाग लेकर अपना योगदान दे रहे हैं। भारत एक बड़ा क्षेत्र है इसलिये विषमतायें भी अधिक हैं और इन

विषमताओं को देखते हुए सुविधा को ध्यान में रखकर निम्न क्षेत्रों (भागों) में विभक्त किया गया है–

(1) उत्तरी उच्च पर्वतीय क्षेत्र–वन, सड़क, बांध और खानें।

(2) प्रायद्वीप का पर्वतीय क्षेत्र–वन, खानें और योजनायें।

(3) सिन्ध गंगा का मैदानी क्षेत्र–जनसंख्या का घनत्व, सिंचाई कृषि का उत्पादन।

(4) विन्ध्याचल और दक्षिण का पठारी क्षेत्र–वन, खानें और घास के मैदान।

(5) पश्चिम भारत का अर्ध-मरुस्थलीय क्षेत्र–घास, खानें, सिंचाई।

(6) तटीय क्षेत्र–शहरीकरण, औद्योगिक विकास और खानें।

(7) महासागरीय द्वीप–पर्यटक क्षेत्र, सदाबहार वन।

मानव और जीव मण्डल योजना के कार्यक्रम इन्हीं क्षेत्रों में आयोजित किये जाते हैं। जिनमें परिस्थितिकी तन्त्र पर मानवीय दबाब और प्राकृतिक स्रोतों के उपयोग के नियन्त्रण पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है।

राष्ट्रीय पर्यावरण प्रबन्धन (National Environment Management)–स्वस्थ पर्यावरण हेतु भारत में सरकारी और गैर सरकारी अनेक संस्थायें पर्यावरण अध्ययन एवं शोधकार्य में लगी हुई हैं। यह भी देखने में आ रहा है कि अनेक स्वयं सेवी संस्थाएं इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही हैं। अधिकतर सरकारी संस्थाएं पर्यावरण का अध्ययन एवं प्रशासनिक नियन्त्रण के कार्य में संलग्न हैं। पर्यावरण मन्त्रालय का पर्यावरण विभाग इसी प्रकार की क्रियाओं में सक्रिय भूमिका निभा रहा है–

राष्ट्रीय पर्यावरण प्रबन्धन का कार्य निम्न तीन स्तर पर आयोजित किया जाता है–

(1) पर्यावरण संरक्षण अधिनियमों को लागू करना।

(2) सरकारी संस्थाएं और अभिक्रम (Programme)

उपरोक्त संस्थाओं और अभिक्रमों (Programmes) का ब्यौरा इस प्रकार है–

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (Environment Protection law)–राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण और वन्य जीव धारियों की सुरक्षा के लिये अनेक अधिनियमों को बनाया गया है। विश्व मे भारत ही पहला राष्ट्र है जिसने वन्य जीवन सुरक्षा एक्ट बनाया है। वन्य पक्षियों और अन्य जानवरों की सुरक्षा के लिये एक्ट 1922 में बनाया गया था और सन् 1927 में उसे लागू किया गया। भारतीय वन्य जीवन बोर्ड की स्थापना 1952 में की गई थी। इसके साथ-साथ राज्य स्तर पर भी इस प्रकार के बोर्डों की स्थापना की गई। इनके अन्तर्गत वन्य पक्षियों और जानवरों का शिकार करने, उनको पकड़ने व निर्यात करने, उनके मांस को घरों में खाने के लिये प्रयोग करने पर पूरा नियन्त्रण किया गया और विशेष

कार्यकर्ताओं द्वारा इस का उल्लंघन करने वालों पर नज़र रखी गई और यहां पर कि जीवधारियों को डराने पर रोक लगा दी गई। जनसंख्या के आधार पर राज्यों में इसका प्रबन्धन किया गया।

भारतीय वन्य जीवों को सुरक्षित जीवधारी [Protected Species of Indian Wild Life]

वन्य जीवधारियों के नाम निम्न हैं जिनका सुरक्षा का प्रावधान इस एक्ट के अन्तर्गत किया गया है–हाथी, शेर, चीता, भेड़िया, हिरण, बारह सिंगां, सुनहरी बिल्ली, लम्बी गर्दन वाला सारस, घड़ियाल, अजगर, सांप, सफेद आंखों वाली बतख, छिपकली, सभी वन्य जीव-धारियों और पक्षियों को शामिल किया गया है।

राष्ट्रीय उद्यान और अभय वनों की स्थापना (Establishment of Sancturies and National Parks)–हमारे देश में लगभग 20 अभय वनों (Sanctuaries) और राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना की गई है। अभय वन वह स्थान होता है जहां पर जंगली-जीव धारियों को मारने और पकड़ने पर प्रति बन्ध होता है और विशेष परिस्थितियों में अधिकारियों से इजाज़त लेनी पड़ती है। इन अभय वनों में जीव-धारियों की अधिकतम सुरक्षा का प्रबन्ध होता है। राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना का उद्देश्य विशेष जीव-धारियों अर्थात् दुर्लभ जीवों को सुरक्षित रखना है जिससे उनकी नसल बनी रहे। यहां पर कुछ प्रसिद्ध उद्यानों और अभयवनों का संक्षिप्त विवरण निम्न है–

1. काजीरंगा वन्य जीव अभयवन (Kaziranga wild life Sanctuary)–आसाम के जोहर्ट क्षेत्र में शिव सागर जिले में सन् 1926 में स्थापित किया गया था। यह ब्रह्मपुत्र नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। जिसका क्षेत्र 430 वर्ग किलोमीटर है। इसमें हाथी, चीता, शेर, जंगली, भैंसा, हिरण, सम्भर भालू, रीछ, भेड़िया, पक्षियों आदि के अतिरिक्त 700 प्रकार के जीव जन्तु पाये जाते हैं।

2. मानस वन्य जीव अभय वन और चीता संरक्षण (Manas wild life and Tiger Protection)–यह आसाम के कमरूप जिले में स्थित है। इसका क्षेत्र 540 वर्ग किलोमीटर है। जिसकी उंचाई 80 मीटर है। इसके मध्य से मान नदी जाती है। इसमें जंगली जीवों में चीता, जंगली कुत्ता, सम्भर, जंगली भैंस और सुनहरी लंगूर पाये जाते हैं।

3. जलदापरा वन्य जीव अभय वन (Jaldapara wild life Sanctuary)–पश्चिम बंगाल के जलपाई गुरी जिले में 65 किलोमीटर लम्बा घास का मैदान है जिसमें वन्य जीवों में हाथी, चीता, हिरण, भेड़िया और विभिन्न प्रकार के पक्षी तथा रेंगने वाले जीव पाये जाते हैं।

4. पालामऊ राष्ट्रीय उद्यान (Palamau National Park)–यह बिहार के डाल्टनगंज जिले में स्थित है। इसका क्षेत्र 345 वर्ग किलोमीटर है और यह घना जंगल है। इसमें चीता, भेड़िया, भालू, हाथी, चिकारा, छोटा हिरण, चौसिंगा, निगलई आदि जानवर पाये जाते हैं।

5. हजारी बाग राष्ट्रीय उद्यान (Hazaribagh National Park)–इस उद्यान की स्थापना 1954 में की गई थी जिसका कुल क्षेत्र 184 वर्ग किलोमीटर है। यह भी घना जंगल है और इसमें सम्भर, चीता, भेड़िया, भालू, हिरण और गौर जानवर मिलते हैं।

6. चिल्का झील (Chilka Lake)–उड़ीसा प्रदेश में भुवनेश्वर से 100 किलोमीटर दूर सबसे बड़ी झील है। जिसके क्षेत्र 1000 वर्ग किलोमीटर है। इसमें विविध प्रकार के दुर्लभ जीवधारी और पक्षी पाये जाते हैं। इसमें प्रमुख बतख, सारस, क्रेन्स, सुनहरी प्लोवर, सैण्ड पाइपर, स्टोन क्रोलिक्स मिलते हैं।

7. कार्बोट राष्ट्रीय उद्यान (Corbett national Park)–यह भारत का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध वन्य जीवों का अभय वन है। इसको 1935 में बनवाया गया था और यह स्वतन्त्र भारत का प्रथम राष्ट्रीय उद्यान है। यह उत्तर प्रदेश के नैनीताल तथा गड़वाल जिलों के मध्य स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 525 वर्ग किलोमीटर है। यह राम गंगा नदी के पश्चिम से दक्षिण मोड़ पर स्थित है। इसमें विविध प्रकार के दुर्लभ जीवधारी रखे गये हैं। उनमें प्रमुख जीव-धारी-चीता पैन्थर, भालू, हाथी, नीला सांड, भौंकने वाला हिरण, एन्टीलोप, पक्षियों में बुलबुल आदि मिलते हैं।

8. कौलमीरू पक्षी अभयवन (Kolameru bird Sanctuary)–यह छोटी चिड़ियों के लिये प्रसिद्ध है यह आन्ध्र प्रदेश में स्थित है।

9. गेण्ड हिरण उद्यान (Gained Deer Park)–यह मद्रास शहर के निकट स्थित है। यह चीतल और काली बक (बगला) के लिये प्रसिद्ध है।

10. मुण्डाथुराय अभय वन (Mundathurai Sanctuary)–इसकी स्थापना तमिलनाडू प्रदेश में 1962 में हुई इसका कुल क्षेत्र 52 वर्ग किलोमीटर है। इसमें बहार वृक्ष है और इससे होकर तमरानदी बहती है। इसमें विचित्र प्रकार के चीते, पैन्थर, सम्भर और चीतल जानवर पाये जाते हैं।

11. पेरीयर वन्यजीव अभय वन (Periyar wild life Sanctuary)–यह 1940 में केरल राज्य मे स्थापित किया गया था। इसका कुल क्षेत्र 777 वर्ग किलोमीटर है। यह नकली नदी के चारों ओर पेरियर बांध योजना के चारों और फैला हुआ है। इसकी प्राकृतिक सुन्दरता बहुत मन मोहने वाली है। इसमें जंगली हाथी, सम्भर, भौंकने वाले हिरण, जंगली कुत्ते, लंगूर, भालू और पानी की चिड़िया अधिक पाई जाती हैं।

12. मुण्डामली वन्य अभय वन (Mundamali wild life Sanctuary)–दक्षिणी पश्चिमी नीलगिरि पर्वत पर तमिलनाडू राज्य में 1940 में स्थापना की गई थी। यह अधिक समृद्धशाली जंगल है। जिसमें अनेक प्रकार के दुर्लभ जीव पाये जाते हैं, जैसे–जंगली हाथी, सम्भर, चीतल, हिरण, लंगूर, बन्दर, जंगली बिल्ली, उड़ने वाली छिपकली रंगने वाले जीव, अजगर और सांप और अनेक प्रकार की चिड़िया पाई जाती हैं।

13. रन्दीपुर वन्य जीव अभय वन (Randipur wild life Sanctuary)–इस अभय वन की स्थापना कर्नाटक राज्य में 1941 में की गई थी। मैसूर से 80 किलोमीटर दक्षिण में ओक माण्ड के रास्ते पर स्थित है। इसका क्षेत्र 874 वर्ग कि.मी. और 1154 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। यह घना जंगल है और वर्षा अधिक होती है। यहां पर हाथी, लैपार्ड, भालू, जंगली कुत्ते, चीतल, पैन्थर, भौंकने वाली हिरण और लंगूर मिलते हैं।

14. कोटियागो वन्य जीव अभय वन (Cotigao wild life Sanctuary)–यह दक्षिण गोवा में 105 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। यह आद्र सदाबहार जंगल है। इसमें विविध प्रकार के जीव जन्तु मिलते हैं। गौर, सम्भर, भेड़िया, चित्तल, हिरण, भौंकने वाले हिरण, पैन्थर और अनेक प्रकार के पक्षी और चिड़ियां मिलती हैं।

15. सेसन गिर (Sesan Gir)–यह एशिया में शेरों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यह गुजरात राज्य में अहमदाबाद से 16 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसका कुल क्षेत्र 1295 वर्ग किलोमीटर है। यह अर्ध–मरुस्थली क्षेत्र है जहां झाड़ियां और नुकीले पेड़ अधिक हैं। इसमें नील गाय, शेर, धब्बे वाला हिरण, चार सींगो वाला हिरण, चिन्कारा, लंगूर, घड़ियाल, कबूतर, चिड़िया आदि मिलते हैं।

16. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान (Kanha National Park)–इसकी स्थापना मध्य प्रदेश में 1955 में वजर घाटी में हुई थी, इसका कुल क्षेत्र 940 वर्ग किलोमीटर है और इसमें पहाड़ी क्षेत्र भी शामिल हैं। यह जबलपुर के 175 किलोमीटर की दूरी पर है। इसमें साल के वृक्ष अधिक हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु–चीता, चीतल, पैन्थर, सम्भर, बत्तख, और बारह सिंगा मिलते हैं।

17. टनडोबा राष्ट्रीय उद्यान (Tandoba National Park)–यह महाराष्ट्र राज्य के चन्द्रपुर जिले में स्थित है इसका कुल क्षेत्र 116 वर्ग किलोमीटर है। यहां विभिन्न प्रकार के जीव पाये जाते हैं। यहां पर मुख्य रूप से चीता, सम्भर, भालू, चीतल, चिंकारा, भौंकने वाला हिरण, सांड, चार सींगों वाला हिरण, लंगूर और घड़ियाल पाये जाते हैं।

18. भरतपुर का चिड़िया अभय वन (Bharatpur Bird Sanctuary)–यह राजस्थान के भरतपुर शहर के पास 29 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में है। इसमें सभी प्रकार की चिड़िया–पानी की चिड़िया, पानी के किनारे रहने वाली चिड़िया और पलायन करने वाली

जो सर्दियों में दिखाई देती है और गर्मियों में यहां से चली जाती है। यहां पर 328 से अधिक प्रकार की चिड़िया रहती हैं। अनेक पलायन करने वाली चिड़िया हमेशा दिखाई देती है, इनमें बत्तख, सारस, फ्रेन्स सिवेरियन, प्रमुख हैं। इस अभय वन के शुष्क स्थल में रहने वाला हिरण, सम्भर, नीला सांड, पायथोन पाया जाता है।

19. शिखरी देवी वन्य जीव अभय वन (Shikari Devi wild life Sanctuary)–यह अभय वन हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिले में स्थित है, इसका कुल क्षेत्र 213 वर्गमीटर है इसमें प्रमुख जीवधारी लोमड़ी, काला भालू, लैपार्ड, भौंकने वाला हिरण, पार्टरिज आदि मिलते हैं।

20. डचीगम वन्य जीव अभय वन (Dachigam wild life Sanctuary)–यह अभय वन कश्मीर राज्य में श्री नगर से 26 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इसको 1951 में बनाया गया था और इसका कुल क्षेत्र 90 वर्ग कि.मी. की ऊंचाई पर है और निचला 1846 मीटर की ऊंचाई पर है। इसमें कश्मीरी स्टेग और हैन्गल का संरक्षण किया गया है। इसके अतिरिक्त यहां पर काले भालू, लैपोर्ड, ब्राउन भालू, बबून आदि जीन-धारियों का निवास है।

21. शिवपुरी अभय वन (Shivpuri Sanctuary)–यह अभय वन मध्य प्रदेश में स्थित है। इसमें केवल चीते ही रहते हैं।

22. अन्नामिलाई अभय वन (Anamalai Sanctuary)–इसकी स्थापना 1972 में तामिलनाडू प्रदेश में कोयमबटूर जिले के दक्षिण भाग में की गई है। इसका विशाल क्षेत्र 960 वर्ग किलोमीटर है। इसमें विविध प्रकार के विचित्र जीव-धारियों को रखा गया है। प्रमुख जीवधारी हाथी, गौर, सम्भर, धब्बे वाला हिरण, भौंकने वाला हिरण, शेर, चीता, लंगूर, भालू और पनगोलिन रहते हैं।

भारत में उपरोक्त प्रकार के अभय वन और राष्ट्रीय उद्यान विभिन्न प्रान्तों में 200 से अधिक ही हैं। जिनमें वन्य जीव धारियों, पक्षियों की संरक्षण की व्याख्या कराई गई है। इन अभय वनों को प्राकृतिक जीवन के रूप में अधिकतम संरक्षण और उनके रहने एवं जीवित रहने का सुव्यवस्थित प्रबन्ध किया गया है।

वन्य जीव और वनों का पर्यावरण विभाग [Department of Environment, Forest and Wild Life]

हमारे देश में पर्यावरण विभाग की स्थापना (1980) में की गई, जिसका प्रमुख कार्य प्रशासनिक ढांचे या स्वरूप का विकास करना है और पर्यावरण के कार्यक्रमों का सरकार द्वारा नियोजन करवाना है और साथ ही साथ उनमें समन्वय स्थापित करना है। सितम्बर 1985 में पर्यावरण मन्त्रालय ने पर्यावरण विभाग, वन और वन्य जीव में एकीकरण

किया है जिससे केन्द्रीय सरकार द्वारा पर्यावरण और वनों के कार्यक्रमों का नियोजन, समन्वय और प्रशासनिक ढांचे को विकसित किया जा सके। पर्यावरण मन्त्रालय का प्रमुख कार्य प्राकृतिक जीव धारियों का सर्वेक्षण करना, पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना और प्रदूषण को कंट्रोल करना है। पर्यावरण विघटन को रोकना, वनों के कटाव को रोकना और वनों का विकास करना। इन सबके अतिरिक्त कार्यक्रमों के प्रभाव एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन करना है। पर्यावरण कार्यों के संचालन हेतु व्यक्तियों को सही ढंग से प्रशिक्षित भी किया जाता है। इसका सम्बन्ध पर्यावरण के मुख्य दो कार्यों से है एक तो पर्यावरण सम्बन्धी सूचनाओं एवं अन्य जानकारियों को जन साधारण तक पहुंचाना और दूसरा कार्य जन चेतना का विकास करना भी है। पर्यावरण दूसरा कार्य जन चेतना का विकास करना भी है। पर्यावरण मन्त्रालय के मुख्य कार्य निम्न हैं–

1. पर्यावरण और परिस्थितिकी का अध्ययन करना।
2. देश की वनस्पति और वनस्पति बगीचों का सर्वेक्षण करना।
3. भारत के जीव विज्ञान द्वारा सर्वेक्षण करना।
4. राष्ट्रीय अजायबघर द्वारा प्राकृतिक इतिहास का वर्णन करना।
5. जल प्रदूषण एक्ट (1974, 1977) को लागू करना।
6. वायु प्रदूषण एक्ट (1981) को लागू करना।
7. पर्यावरण संरक्षण एक्ट (1986) को लागू करना।
8. जीव मण्डल आरक्षण कार्यक्रम को लागू करना।
9. वन नीति और वन अधिनियम को लागू करना।
10. भारतीय वन सेवाओं का संचालन करना।
11. वन्य जीवों का संरक्षण करना।
12. पद्मना नाइडू हिमालियन जूलोजीकल उद्यान का संचालन एवं व्यवस्था करना।
13. राष्ट्रीय भूमि उपयोग और अपशिष्ट भूमि विकास परिषद की स्थापना करना।
14. केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण का संचालन करना।
15. उच्च शिक्षा के लिये मौलिक शोध कार्य और वानिकी क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना।

उपरोक्त कार्यों को व्यवस्थित रूप से संचालन हेतु पर्यावरण मन्त्रालय ने देश को खण्डों (भागों) में विभक्त किया है। जिसके अन्तर्गत अभिक्रमों (Programmes) के कार्यों का उत्तर दायित्व सौंपा गया है जैसे–

(1) गंगा योजना निदेशालय।

(2) राष्ट्रीय अपशिष्ट भूमि विकास बोर्ड।

उपरोक्त की तरह पर्यावरण विभाग ने देश को 18 भागों में विभाजित किया है।

गंगा कार्य योजना (Ganga Action Plan) केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण की स्थापना श्री राजीव गांधी के समय में (1985) में की गई थी। यह गंगा नदी के कार्यक्रमों हेतु नियोजन और कार्यों को करने में निर्देशन देता है। गंगा योजना (प्रकल्प) निदेशालय का कार्य समन्वय करना है क्योंकि गंगा नदी उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल से जुड़ी हुई है। इसलिये इन प्रान्तों के गंगा कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करना केन्द्र सरकार का उत्तरदियत्व बनता है।

राष्ट्रीय भूमि अपशिष्ट विकास बोर्ड (National waste land development Board)–इस बोर्ड की स्थापना 1985 में निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु की गई थी–

(1) अपशिष्ट भूमि पर हरे पौधों का लगाना जिससे उनकी वृद्धि हो।

(2) श्रेष्ठ भूमि का संरक्षण करना जिससे भूमि अपशिष्ट न हो सके।

(3) एक राष्ट्रीय नीति बनाई जाये जिसके अन्तर्गत देश की अपशिष्ट भूमि का विकास किया जाये और विकास हेतु योजनाओं और कार्यक्रमों का प्रबन्धन भी किया जाये।

पर्यावरण विभाग के 18 उप-विभागों में से तीन उप-विभागों का कार्य है इनके प्रभाव की जांच एवं मूल्यांकन करना है। इसलिये इनको 'प्रभाव आकलन खंड' (उपविभाग) भी कहा जा सकता है।

अन्य राष्ट्रीय संस्थान (Other national Organisation)–उपरोक्त प्रयासों के अतिरिक्त अनेक स्वयं सेवी गैर सरकारी और सरकारी संस्थाएं पर्यावरण समस्याओं के समाधान हेतु कार्यरत हैं। स्वयं सेवी संस्थाएं इस क्षेत्र में अत्यन्त सराहनीय कार्य कर रही हैं। कुछ महत्वपूर्ण सस्थाएं और उनके अभिक्रम निम्न हैं–

(1) ऊर्जा और परामर्श बोर्ड।

(2) बम्बई प्राकृतिक इतिहास सोसाईटी।

(3) केन्द्रीय वानिकी आयोग।

(4) राष्ट्रीय दुग्धशाला विकास बोर्ड।

(5) राष्ट्रीय प्राकृतिक स्रोत प्रबन्धन प्रणाली।

(6) प्रदेशीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड।

(7) टाटा ऊर्जा शोध संस्थान।

(8) राष्ट्रीय पर्यावरण औद्योगिकी शोध संस्थान

इन सभी के अतिरिक्त अनेक शोध संस्थान की इस क्षेत्र में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।

पर्यावरण प्रभाव आंकलन (मूल्यांकन)
[Environmental impact-Assessment]

पर्यावरण प्रभाव आंकलन योजनाओं का महत्वपूर्ण पहलू है। क्योंकि इस पहलू में नियोजन, योजना और कार्यक्रमों का आंकलन व मूल्यांकन किया जाता है ताकि इस बात का पता चल सके कि पर्यावरण गुणवत्ता पर कहीं विपरीत प्रभाव तो नहीं पड़ रहा है। मनुष्य की क्रियाओं और प्राकृतिक स्त्रोतों के उपभोग का पर्यावरण की गुणवता पर होने वाले प्रभाव को पर्यावरण प्रभाव कहते हैं। मानवीय क्रियाओं का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के मूल्यांकन को पर्यावरण प्रभाव आंकलन कहा जाता है।

आगे आने वाले समय में पर्यावरण में किस प्रकार के परिवर्तन हो सकते हैं इसका अनुमान लगाया जा सकता है। किसी मानवीय परियोजना का पर्यावरण पर जो प्रभाव होगा उसका भी अनुमान लगाया जाता है। टिहरी बांध परियोजना के भावी पर्यावरण प्रभाव के भय के अनुमान से आन्दोलन किये जा रहे हैं। मध्य प्रदेश में नर्मदा योजना के भावी कुप्रभावों के कारण विरोध किया जा रहा है। पर्यावरण प्रबन्ध का कार्य मानवी क्रियाओं के भावी कुप्रभावों का पता लगाया जाये। किसी योजना को प्रारम्भ करने से पहले उसके पर्यावरण पर होने वाले प्रभावों का अनुमान लगा लेना चाहिए।

पर्यावरण प्रभाव आंकलन की प्रक्रिया
[Procedure of environmental Impact Assessment]

पर्यावरण प्रभाव के आंकलन का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण के कुप्रभाव से होने वाली हानियों से बचाव एवं पर्यावरण की सुरक्षा है । जिससे मानव का भी कल्याण हो सके तथा मानव का स्वस्थ विकास हो सके। इसका कार्य परिस्थितिकी के सन्तुलन और परिस्थितिकी तन्त्र की स्थिरता का परीक्षण किया जाये कि योजनाओं एवं प्रकल्पों को लागू करने से परिस्थितिकी और परिस्थितिकी की तन्त्र पर कैसा प्रभाव होगा उसके क्या परिणाम होंगे? पर्यावरण प्रभाव आंकलन में निम्नलिखित सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

1. पर्यावरण की वर्तमान प्रकृति का वर्णन करना।
2. योजनाओं की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों का प्रदर्शित करना।
3. योजनाओं या कायक्रमों के प्रभाव का वर्णन करना।
4. लघु–कालीन तथा दीर्घ कालीन दोनों प्रकार के प्रभावों को अनुमान लगाना।
5. वैकल्पिक प्रकल्प से तुलना करना तथा उत्तम प्रकल्प हेतु सुझाव देना।
6. भविष्य की दृष्टि से वर्तमान को प्रक्षेपित करना तथा
7. मानवी कुप्रभावों क्रियाओं को कम करने हेतु पृष्ठ पोषण तथा सुधारात्मक उपायों को देना है।

पर्यावरण प्रभाव के आंकलन में अनेक विधियों तथा प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। वैज्ञानिक शोध कार्यों ने भी पर्यावरण के सुधार हेतु सुझाव दिये हैं क्योंकि विभिन्न क्षेत्रों के लिये विभिन्न प्रकार के प्रकल्पों तथा कार्यक्रमों का उपयोग किया जाता है।

पर्यावरण प्रदूषण तथा विघटन का नियन्त्रण [Control of Environment Pollution and Degradation]

पर्यावरण की गुणवता पर जिन कारणों एवं प्रक्रियाओं से कुप्रभाव पड़ता है उन सब बातों को पर्यावरण प्रबन्धन के आंकलन में लिया जाता है। इन बातों के आंकलन के बाद ही पर्यावरण की गुणवता बनाये रखने हेतु सुझाव दिये जाते हैं। विश्व, क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण में प्रदूषण और विघटन हुआ है। जिसका कारण मानव क्रियाओं द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण का प्रदूषण बढ़ना है।

विश्व स्तर पर पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हो गई है। दिन प्रतिदिन पर्यावरण की गुणवत्ता में कमी आती जा रही है। इसे रोकने के लिये अनेक उपाय किये जा रहे हैं। इससे बचने के लिये कई योजनाएं बनाई जा रही हैं। मनुष्यों द्वारा ही पर्यावरण की समस्याएं उत्पन्न की गई हैं। कुछ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों को आयोजित किया गया है जिसका लक्ष्य मानव पर्यावरण की अन्त: क्रिया तथा पर्यावरण की समस्याओं का अध्ययन करना और इन समस्याओं का अध्ययन करना और इन समस्याओं के समाधान के लिये सुधारात्मक उपायों को देना है। कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों की सूची इस प्रकार है–

(1) अन्तर्राष्ट्रीय जैविक कार्यक्रम (IBP)
(2) अन्तर्राष्ट्रीय जैविक कार्यक्रम हेतु विशिष्ट समिति।
(3) अन्तर्राष्ट्रीय जलीय कार्यक्रम।
(4) मनुष्य तथा जीव मण्डल कार्यक्रम (MAB)
(5) पर्यावरण समस्याओं हेतु वैज्ञानिक समिति।
(6) संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP)
(7) मरुभूमि के लिये समन्वित प्रकल्प।
(8) समुद्रीय शोध की वैज्ञानिक समिति।
(9) जल के शोध की वैज्ञानिक समिति।
(10) समन्वित पर्वतीय विकास का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र तथा
(11) प्रकोप के प्रभाव को कम करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय समिति।

ऊपरलिखित संस्थाओं एवं योजनाओं के अतिरिक्त भी अनेक ऐसी संस्थाएं तथा योजनाएं हैं जो मनुष्य एवं पर्यावरण के सम्बन्धों का अध्ययन कर रहे हैं और मनुष्य की

क्रियाओं से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण में जो प्रभाव पड़ रहा है उसे सुधा करने के लिये सुझाव देते हैं।

कुछ प्रमुख संस्थाएं निम्नलिखित हैं–

1. परमाणु ऊर्जा आयोग।
2. भारत का वनस्पति सर्वेक्षण।
3. केन्द्रीय मरुक्षेत्र शोध संस्थान।
4. पर्यावरण गुणवत्ता परिषद।
5. कनाडियन अन्तर्राष्ट्रीय विकास अभिक्रम।
6. विज्ञान तथा तकनीकी विभाग।
7. पर्यावरण सूचना प्रणाली।
8. केन्द्रीय पर्यावरण प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड।
9. पर्यावरण प्रभाव आंकलन अथवा मूल्यांकन।
10. पर्यावरण संरक्षण अभिक्रम।
11. पर्यावरण संरक्षण परिषद।
12. विश्व स्तरीय पर्यावरण पर्यवेक्षण प्रणाली।
13. भोजन एवं कृषि संस्थान (FAO)
14. मानवीय व्यावहार की आंकलन प्रणाली या तन्त्र।
15. अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम।
16. अन्तर्राष्ट्रीय वनस्पतिकीय कार्यक्रम।
17. अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संघ की परिषद।
18. राष्ट्रीय पर्यावरण नीति तथा एक्ट।
19. राष्ट्रीय जलीय भूमि विकास बोर्ड।
20. राष्ट्रीय पर्यावरण नियोजन समिति।
21. पर्यावरण समस्याओं को वैज्ञानिक समिति।
22. पर्यावरण तथा विकास का विश्व आयोग।
23. पर्यावरण नियोजन तथा समन्वय की राष्ट्रीय समिति।
24. संयुक्त राष्ट्रों का शैक्षिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संस्थान (UNESCO)
25. विश्व संरक्षण आव्यूह तथा
26. विश्व वन्य प्राणी कोष आदि प्रमुख संस्थान तथा अभिक्रम हैं।

भारत में पर्यावरण प्रबन्धन
[Environmental Management in India]

पर्यावरण संरक्षण के लिये सरकारी गैर सरकारी एवं स्वयं सेवी संस्थायें लगी हुई हैं। वे अनेक कार्यक्रम तथा योजनाओं का आयोजन कर रही है। पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रमों से पर्यावरण संरक्षण के कार्यक्रमों से पर्यावरण संरक्षण इसलिए नहीं हो पा रहा है क्योंकि शहरीकरण तथा औद्योगीकरण तीव्र गति से चला आ रहा है, जनसंख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है जिनके कारण पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। इसलिये प्रशासनिक तथा कानूनी कार्यवाही का सहारा लिया जा रहा है।

पर्यावरण प्रबन्ध के अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण के लिये कानून बनाना और उन्हें कानून करने का उत्तरादायित्व भी है। भारतीय पर्यावरण प्रबन्ध को पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी कानूनों को लागू करना है।

स्टॉकहोम को सम्मेलन के पर्यावरण संरक्षण में प्रस्तावों को गति देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने हेतु भारत सरकार ने प्रभावशाली कार्यवाही की है। पर्यावरण प्रदूषण को समाप्त करने के लिये, पर्यावरण को संतुलित रखने हेतु अधिनियम बना कर प्रशंसनीय प्रयास किये गये हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिये जो एक्ट बनाये गये वे निम्नलिखित हैं–

1. द वाटर प्रिवेंशन एंड कंट्रोल ऑफ पोल्यूशन एक्ट (1974)
2. द एयर प्रिवेंशन एंड कंट्रोल ऑफ पोल्यूशन एक्ट (1981)
3. भारतीय दण्ड सहिता की धारा 268, 269, 272, 277, 278, 280, 284, 298, 426 आदि।
4. द मोटर वेहिकल एक्ट (1938)
5. द माइंस एंड मिनरल्स (रेगुलेशन एंड डेवलपेंट) एक्ट (1947)
6. द दामोदर वैली कार्पोरेशन (प्रिवेंशन-पोल्यूशन ऑफ वाटर) रेगुलेशन ऐक्ट (1948)
7. द फैक्टरी एक्ट (पोल्यूशन एंड पेस्टिसाइडस) (1948)
8. द इंडस्ट्रीज डेवलमेंट एंड रेगुलेशन एक्ट (1951)
9. द महाराष्ट्र प्रिवेंशन ऑफ वाटर-पोल्यूशन एक्ट (1953)
10. द उड़ीसा रीवर-पोल्यूशन एंड प्रिवेंशन एक्ट (1953)
11. द आसाम एग्रीकल्चर, पेस्टस एंड डिज़ीज एक्ट (1954)
12. द प्रिवेंशन ऑफ फूट एडलट्रेशन एक्ट (1954)
13. द यू. पी. एग्रीकल्चर पेस्ट एंड डिज़ीज एक्ट, (1954)
14. द रीवर बोर्ड एक्ट, (1956)

15. द एनसिएट मानूमेंटस एंड आरकियो लॉजिकल सिटिज एंड रिमेंस एक्ट, (1958)
16. द गुजरात स्मोक न्यूसेंस एक्ट, (1963)
17. द राजस्थान नॉयज कंट्रोल एक्ट (1961)
18. द बीड़ी एंड सिंगार कंट्रोल एक्ट (1961)
19. द एटॉमिकी एनजी एक्ट (रेडिएशन) प्रोटेक्शन रुल्स, (1971)
20. द इंसेक्टीसाइड्स एक्ट (1968)
21. द देहली रेस्ट्रिक्षन ऑफ लैंड यूजेज एक्ट, (1964)
22. द महाराष्ट्र वाटर पोल्यूशन प्रिवेंशन एक्ट (1969)
23. द वाइल्ड लाइफ (प्रोटेक्शन) एक्ट (1972)
24. लक्ष्य प्रदेश गांधी बस्ती क्षेत्र (सुधार तथा निर्मूलन) अधिनयम, (1976)
25. नगरपालिका अधिनियम, 1959 की धारा, 220, 222।
26. भारतीय मछली अधिनियम, (1987)
27. भारतीय बन्दरगाह अधिनियम, (1901)
28. द बंगाल स्मोक न्यूसेंस एक्ट, (1905)
29. द बॉम्बे स्मोक न्यूसेंस एक्ट, (1912)
30.द एक्सप्लोसिक्स एक्ट, (1908)
31. द इंग्लैण्ड स्टीम वेस्टेज एक्ट (1917)
32. द मैसूर डिस्ट्रक्टिव इनसेक्ट्स एंड पेस्ट्स एक्ट, (1917)
33. द पॉइजन एक्ट, (1919)
34. द इंडिया बॉयलर एक्ट, (1923)
35. द ए.पी. एग्रीकल्चर, पेस्ट एंड डिजीज एक्ट, (1919) तथा
36. द इंडियन फॉरेस्ट एक्ट, (1927)।

भारत मे पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिये जो प्रयास किये गये हैं निम्न हैं– जैसे सन् (1865 ई.) फारेसट एक्ट, (1889 ई.) का अधिनियम, (1927.ई०) भारतीय वन अधिनियम, सन् (1952) राष्ट्रीय वन नीति, (1972 ई.) राष्ट्रीय पर्यावरण आयोजन एवं समन्वय समिति, (1954 ई.) जल प्रदूषण अधिनियम, पर्यावरण में जल-प्रदूषण अधिनियम, (1986), वायु प्रदूषण विकरण एवं संसाधन विधेयक (1986) आदि। सरकार ने 'पर्यावरण प्रबन्धन' को राष्ट्रीय विकास के निर्देशन के रूप में स्वीकार कर लिया है। 1937 में एक राष्ट्रीय पर्यावरण परिषद की स्थापना की गई है। पर्यावरण प्रदूषण को दूर करने के लिये अनेक कार्यक्रम शुरु किये गये जैसे गंगा सफाई अभियान, यमुना सप्लाई अभियान, राष्ट्रीय अभयारण्य एवं राष्ट्रीय उद्यान,

पर्यावरण प्रबन्ध में प्राथमिकता [Priority Action Environmental Management]

भारत वर्ष में काफी विकास एवं प्रगति हो रही है। विकासशील देशों में भारत का प्रमुख स्थान है। देश मे अनेक पर्यावरण सम्बन्धी समस्याएं हैं पर निम्नलिखित समस्याओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए–

1. पर्यावरण शिक्षा तथा जानकारी।
2. भूमि उपयोग समन्वित नियोजन।
3. जैविक विषमता का संरक्षण।
4. जनसंख्या की स्थिरता।
5. स्वस्थ उपजाऊ भूमि तथा घास का मैदान।
6. जल तथा वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण।
7. पर्यावरण अधिनियम का तात्कालीन बनाना।
8. मानवीय आवास का विकास।
9. अ–प्रदूषित ऊर्जा प्रणाली का विकास करना।
10. राष्ट्रीय सुरक्षा के नवीन आयाम का विकास करना।

कई ऐसी समस्याएं हैं जो पर्यावरण के लिये हानिकारक हैं। जिनसे परिस्थितिकी सन्तुलन के लिये खतरा पैदा हो गया है। परिस्थितिकी तंत्र में स्थिरता को खतरा बन गया है। जब तक प्राकृतिक स्त्रोतों जैसे गैस, कोयला, तेल तथा अन्य पदार्थों एवं ऊर्जा शक्ति का समुचित प्रबन्ध नहीं होगा तब तक परिस्थितिकी अस्थिरता अधिक हो सकती है और पर्यावरण की गुणवत्ता भी नहीं रह सकेगी।

पर्यावरण प्रबन्ध में शिक्षा की भूमिका [Role of Education in Environmental Management]

पर्यावरण की अधिकतर समस्याएं मानव क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती हैं। पर्यावरण प्रबन्धन में मानवीय क्रियाओं के प्रभाव के आंकलन को महत्व दिया जाता है। पर्यावरण प्रबन्ध में जिन कार्यक्रमों एवं कानून व्यवस्था का उल्लेख किया गया है उनसे पर्यावरण संरक्षण में अस्थायी रूप में सफलता मिलती है पर स्थायी रूप से सफलता शिक्षा के द्वारा ही मिल सकती है।

पर्यावरण की गुणवता को बनाये रखना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। अधिक से अधिक पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का कारण मनुष्य के द्वारा किये गए कार्य हैं। इसलिये शिक्षा द्वारा युवकों, बालकों तथा वृद्धों को ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे वे पर्यावरण की समस्याओं एवं उनके कारणों को समझ सके और उनके समाधान के लिये निर्णय ले सकें।

मानवीय सचेतना, अभिवृद्धियों तथा मूल्यों के विकास से समस्याओं में समाधान किया जा सकता है। पर्यावरण शिक्षा से पर्यावरण प्रबन्ध में सहायता प्राप्त हो सकती है। इसके लिये निम्नलिखित ढंग से शिक्षा दी जाये–

1. पर्यावरण के सम्बन्ध में मनुष्यों को अनेक प्रकार के अनुभव कराये जाते हैं।

2. सम्पूर्ण पर्यावरण के बारे में जानकारी प्रदान की जाती है।

3. व्यावहारिक कौशलों के विकास के द्वारा पर्यावरण की समस्याओं का समाधान किया जाता है।

4. पर्यावरण संरक्षण के लिये मनुष्यों में सही अभिवृतियों एवं मूल्यों का विकास किया जाता है।

5. समस्याओं के समाधान के लिये व्यक्तियों को सक्रिय भागीदारी के अवसर दिये जाते हैं तथा

6. शिक्षा के कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाता है जिससे पर्यावरण सम्बन्धी उपायों की प्रभावशीलता का आंकलन करते हैं।

पर्यावरण शिक्षा के पाठ्यक्रमों को प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक आयोजित किया जाता है। इस कार्य में राष्ट्रीय अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT) की भूमिका महत्वपूर्ण है। विश्व विद्यालय स्तर पर 'विश्व विद्यालय अनुदान आयोग' पर्यावरण शिक्षा का आयोजन कर रहा है।

पर्यावरण का सम्बन्ध सामाजिक तथा वैज्ञानिक विषयों से है, इसलिए विद्यालयों तथा विश्व विद्यालयों में विभिन्न विषयों द्वारा पर्यावरण की शिक्षा दी जाती है। व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा भी पर्यावरण प्रशिक्षण के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। पर्यावरण शिक्षा देने के लिये अध्यापक-शिक्षा संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि शिक्षकों को पर्यावरण संरक्षण प्रशिक्षण दिया जाता है। पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान, कौशल, अभिवृतियों तथा मूल्यों का विकास अध्यापक-शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होता है।

पर्यावरण शिक्षा के प्रशिक्षण केन्द्र [Environmental Education and Training Centres]

पर्यावरण की गुणवता को बनाये रखने के लिये पर्यावरण प्रशिक्षण देने के औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र हैं। इन्हें दो वर्गों में बांट सकते हैं–सरकारी संस्थान तथा गैर-सरकारी संस्थान हैं। कुछ सरकारी प्रशिक्षण केन्द्र निम्नलिखित हैं–

1. पर्यावरण-शिक्षा केन्द्र अहमदाबाद (Centre of Environment Education)–इस केन्द्र पर पर्यावरण शिक्षा के लिए दृश्य-श्रव्य सामग्री तथा चलती फिरती प्रदर्शनी की व्यवस्था विशेषज्ञों द्वारा की जाती है।

2. वरिष्ठ प्रशासकों का प्रशिक्षण केन्द्र (Centre of training senior Administrators)–इन केन्द्रों पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा आई.ए. एस., आई.पी.एस., आई.ए.एफ. तथा आई.ई.एस. के अभ्यर्थियों को उनके क्षेत्रों का प्रशिक्षण तथा जानकारी दी जाती हैं। इन केन्द्रों पर तकनीकी कानूनी विशेषज्ञों तथा व्यावसायिक विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. दक्षता के लिये केन्द्र (Centres for Excellance)–इन केन्द्रों पर पर्यावरण सम्बन्धी पाठ्यवस्तु शिक्षण विधियों तथा प्रविधियों का विकास किया जाता है।

4. परिस्थितिकी विकास केन्द्र (Eco-development Centre)–शिक्षा विभाग ने एक ऐसे केन्द्र की स्थापना की जिसका मुख्य लक्ष्य पर्यावरण की मूल समस्याओं को पहचानना था। जिससे परिस्थितिकी असन्तुलन होता है।

5. पर्यावरण सूचना प्रणाली (Environmental Infoamtion System)–शिक्षा विभाग ने 1982 में इस योजना की स्थापना की। इन्हें देश में विशिष्ट एवं विशेषज्ञ केन्द्र रूप में स्थापित किया गया। इनमें क्षेत्रीय एवं स्थानीय समस्याओं को लिया जाता था।

पर्यावरण शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम यूनेस्कों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित किये जा रहे हैं। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका महत्वपूर्ण है।

औपचारिक शिक्षा में राष्ट्रीय सेवा योजना, एन.सी.सी. के शिविरों में भी पर्यावरण सम्बन्धी कार्यों को महत्व दिया जाता है।

अनौपचारिक शिक्षा में भी पर्यावरण सम्बन्धी स्थानीय समस्याओं की जानकारी प्रौढ़ शिक्षा, सतत्-शिक्षा तथा निरौपचारिक शिक्षा द्वारा युवकों तथा वृद्धों को दी जाती है। संचार माध्यमों तथा दूरवर्ती, शिक्षा के पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रमों को शामिल किया गया है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. राष्ट्रीय स्तर के पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए और उनको अन्तर्राष्ट्रीय योगदान का विवेचन कीजिए।
2. पर्यावरण-प्रबन्धन के प्राथमिक क्षेत्रों को बताईये और उनसे सम्बन्धित पर्यावरण की समस्याओं एवं उपचार का विवेचन कीजिये।
3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
   (क) मनुष्य और जीव मण्डल कार्यक्रम (MAB)
   (ख) पर्यावरण संरक्षण कानून
   (ग) पर्यावरण शिक्षा की प्रबन्ध में भूमिका।

❑

Unit–V

पर्यावरण और विश्व पर्यावरण मुद्दे
[Environment and Its Global Issues]

1. पर्यावरण के घटक (Components of Environment)
2. स्वस्थ पर्यावरण को धारणा और इस दिशा में प्रयास
   (Concept of healthy Environment and Efforts in this Direction)
3. विश्व पर्यावरण मुद्दे
   [Global Environment Issues]

(1) वातावरण (पर्यावरण) की सुरक्षा:–सरकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रतिबद्धता।
(Conservation of Environment: Govt's Environment commitment in National and International Field)

(2) ओज़ोन परत की समाप्ति
(Depletion of Ozone Layer)

(3) ग्रीन हाऊस प्रभाव (हरित भवन प्रभाव) या विश्व तापीकरण
(Green House effect or Global Warming)

1. पर्यावरण के घटक (अंग)
[COMPONENTS OF ENVIRONMENT]

पर्यावरण का हमारे दैनिक जीवन में अत्याधिक महत्व है। पर्यावरण शब्द एक विशाल क्षेत्र की दृष्टि से प्रयुक्त होता है परन्तु बोल चाल की दृष्टि से इसे सीमिति क्षेत्र के अन्तर्गत ही लेते हैं। हमारे दैनिक जीवन में हमारा जिस बात से सम्बन्ध है वह 'बाइयोसफेयर' है, यह एक ऐसी पतली परत है जो कि मिट्टी, पानी और वायु से बनी है और इस धरती ग्रहों को चारों ओर से घेरती है। जिसमें जीवित ढंग भी हैं। जिनके लिये यह सहारा भी देती है। जिसे एक ऐसी दिशा में ढालती है। जो इसकी सुरक्षा क्षमता को घटाती या बढ़ाती है। इसलिये यह धरती का क्षेत्र लगभग ज़मीन की सतह से 100 फुट नीचे और 200 फुट ऊपर है। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। जिस के ऊपर धरती ग्रह की जीवन-सुरक्षा क्षमता पर निर्भर करती है।

पर्यावरण वह क्षेत्र है जिसमें जीवित और आजीवित चीज़ें विद्यमान हैं। पर्यावरण में रहने वाले जीवित जीव अजीवित चीज़ों और दूसरी चीज़ों को प्रभावित करते हैं। इसलिये जीवित और अजीवित के बीच होने वाली प्रक्रिया जोकि विशेष स्थान पर होती है। वही जीवन की आवश्यक क्रियाओं को करती है। वे जीव पृथ्वी के उपरी अजीवित अंगों का सहारा लेते हैं।

मानव इस पृथ्वी पर अकेले नहीं रह सकता। एक जीवधारी दूसरे जीव धारी के सहारे या प्रतिक्रिया के बिना जीवित नहीं रहता है। जीवित प्राणी पौधों पर निर्भर करते हैं, और पौधे जीवित प्राणियों पर निर्भर हैं।

पर्यावरण के घटक
[Components of Environment]

पर्यावरण के घटक को निम्नलिखित दो वगों में बांट सकते हैं-

1. प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)
2. मनुष्य का बनाया हुआ पर्यावरण (Man Made Environment)

1. प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment)-प्राकृतिक पर्यावरण वह पर्यावरण है जो मनुष्य से पहले प्राकृतिक रूप से अस्तित्व में आया। पहले पृथ्वी का ऐसा वातावरण था जिस पर किसी भी प्रकार का जीवन जीना असंम्भव और अनुचित था। अरबों

वर्ष पहले पृथ्वी गैसों, रसायनों का ढेर था जिसका तापमान अधिक होने के कारण किसी भी प्रकार का जीव उस पर जीवित नहीं रह सकता था। पहले पर्यावरण में गर्मी, सर्दी दोनों ही इतने ज्यादा थे कि दोनों प्रकार का तापमान चरमसीमा पर था। जिसमें पर्यावरण का सन्तुलन नहीं रहता था। सबसे पहले जीवाणु दिन के समय पानी में पैदा हुए। ये एक सैल वाले थे फिर इनसे बहुसुखी सैल वाले जीव पैदा हुए। बहुत से अंगों ने मिलकर एक प्राकृतिक पर्यावरण बनाया। जिसने जीवन को कायम रखने में सहायता की। पर्यावरण के अंगों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं-

(1) निर्जीव अंग (Aboitic Components)

(2) सजीव अंग (Boitic Components)

(1) निर्जीव अंग (Aboitic Components)–ये वे अंग होते हैं जो स्वयं जीवित नहीं होते पर जीवित अंगों को जीने में मदद करते हैं। ये पर्यावरण के मौलिक अंग हैं। जब ये अंग असन्तुलित हो जाते हैं तो जीवित अंग के लिए हानिकारक होते हैं। इनमें निम्नलिखित प्रकार है-

(1) अकार्बिनिक तत्व (Inorganic Substances)–इनमें नाइट्रोजन, कैल्शियम, फास्फोरस, हाइड्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड और आक्सीजन। ये पौधों के द्वारा सूर्य के प्रकाश की सहायता से प्राप्त किये जाते हैं और भोजन में बदल जाते हैं।

(2) कार्बिनिक तत्व (Organic Substances)–इनमें, कार्बोहाइडरेटस, प्रोटीन, चर्बी जो कि भोजन के साधन के कार्बिनिक वस्तुओं के रूप में लिये जाते हैं। ये फिर सड़ने वाले तत्वों द्वारा गला देने के बाद पर्यावरण को वापिस दिये जाते हैं।

(3) भौतिक तत्व (Physical Factors)–भौतिक तत्वों का जीवित अंगों पर पूरा प्रभाव पड़ता है। जीवित अंगों में जलवायु, सम्बन्धी अवस्थाएं जैसे कि तापमान, वर्षा, वायु, गर्मी, मिट्टी और प्रकाश ऊर्जा है। ये सब पौधों द्वारा अपना भोजन तैयार करने के लिये प्रयोग में लाये जाते हैं। कुछ निर्जीव अंग और भी होते हैं वे निम्नलिखित हैं-

लिथोसफेयर (Lithosphere)–पृथ्वी की सबसे बाहरी परत को मिट्टी या भूमि कहा जाता है।

हाइडरोसफेयर (Hydrosphere)–पृथ्वी का वह भाग जिसमें पानी के स्रोत जैसे कि सागर, तालाब और झीलें।

वातावरण (Atmosphere)–यह पृथ्वी के चारों तरफ का वह वातावरण है जो विभिन्न प्रकार की गैसों का बना हुआ है। यह ब्रह्माण्ड की हानिकारक किरणों से जीवों की रक्षा करता है यह वातावरण पृथ्वी पर अनुकूल और अच्छी जलवायु उत्पन्न करता है।

(2) सजीव अंग (Boitic Components)–पृथ्वी के उस भाग को वायोस्फीयर कहा जाता है जिस पर जीवन सम्भव है। आधुनिक खोजों से पता चलता है कि पृथ्वी पर,

और पृथ्वी की उन परतों के कुछ किलोमीटर तक ही जीवन सम्भव है। पृथ्वी तल के नीचे या पृथ्वी के वातावरणीय परतों के ऊपर जीवन सम्भव नहीं होता है।

बायोस्फीकर में प्रत्येक जीवित अंग एक-दूसरे पर आश्रित हैं जिसका अस्तित्व बायोस्फीयर में विद्यमान है। इनमें निम्नालिखित सजीव अंगों के समूह बनते हैं-

(1) स्वनिर्मित, स्वपोषक, उत्पादक, या पौधे, स्वयं पोषित, उत्पादक (Auto self, autorophs or Producers plants, troph-nourish)-जो अंग अपना पोषण स्वयं करते हैं उन्हें स्वयं उत्पादक या उत्पादक पौधे कहते हैं। इस प्रकार के पौधे पृथ्वी के सारे तल के ऊपर पाये जाते हैं। केवल ये ही ऐसे हैं जो फोटोसिनथेसिज की क्रिया से सूर्य, प्रकाश, पानी और कार्बनडाइआक्साईड की मौजूदगी में अपना भोजन पैदा करते हैं। ये शक्कर, कार्बोहाइड्रेटस के लिये गुंझलदार वस्तुओं या भोजन से भी अपना भोजन पैदा करते हैं।

(2) हेटरोटरोफरस या खपतकार या प्राणी हेटरियो-भिन्न-टरोफस-पोषण (Hetrotrophs or consumers or animals: Hetro-different-trophs-nourish)-जो अंग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भोजन के साधनों के लिये हरे पौधों पर निर्भर करते हैं। उन अंगों को फागोटरोफस कहा जाता है। इनमें मनुष्य और जानवर दोनों आते हैं। इनको दो प्रकार के वर्गों में बांटते हैं। एक शाकाहारी (Herbivores) मांसाहारी (Carnivores)। ये जीवाणु अपने भोजन के लिये पौधों तथा मांसाहारी जानवरों पर निर्भर करते हैं।

(3) साड़ने वाले या सेपरोट्रोफस (Decomposers or Saprotrophs)-ये ऐसे सूक्ष्म जीवाणु हैं जो पौधों और जानवरों की भरी हुई सामग्री के जटिल तत्त्वों को गलाते हैं और पुन: उन तत्वों को पर्यावरण में मिला देते हैं। इनमें खुम्बी और बैक्टिरिया प्रमुख हैं।

2. मनुष्य निर्मित पर्यावरण (Man-made Environment)-सभी प्राणियों में मनुष्य ही इस धरती पर सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति को अपने अनुसार ढालने का प्रयास करने लगा। मनुष्य ने यह नहीं सोचा कि वह पर्यावरण में जो परिवर्तन कर रहा है उसका परिणाम कैसा होगा? ज्यों-ज्यों मनुष्य विकास करता गया त्यों-त्यों वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में उसके कदम बढ़ने लगे और उससे पर्यावरण प्रदूषण भी बढ़ने लगा। प्राचीन काल में मनुष्य प्रकृति को अपना साथी समझता था। प्रकृति से मेल मिलाप करता था पर आज मनुष्य ने प्रकृति से अपना नाता तोड़ दिया है वह शहरीकरण, औद्योगीकरण और व्यापारीकरण की ओर बढ़ रहा है। गांवों की स्थिति शहर से भी बिगड़ी हुई है क्योंकि गांवों में जगह-जगह गन्दगी फैली हुई है, कूड़े के ढेर पड़े हैं, गन्दे पानी के निकलने की कोई व्यवस्था नहीं है। गांव में किसान अधिक उत्पादन करने के लिये रासायनिक खादों का प्रयोग करते हैं जिससे पर्यावरण की गुणवता कम होती है। पहले जो प्राकृतिक फसलें उत्पन्न होती थीं अब वे नहीं रहीं। फसलों के उत्पादन मे बनावटीपन आ गया है।

स्वस्थ पर्यावरण की समस्याएं
[Tradittions of Healthy Environment]

मानव के रहन-सहन का ढंग उस क्षेत्र के प्राकृतिक पर्यावरण को प्रभावित करता है राष्ट्र की उन्नति एवं विकास उसकी भौगोलिक एवं पर्यावरणीय अवस्थाओं पर निर्भर कर है। पीपल, केला, बट वृक्ष आदि पेड़ों को धार्मिक दृष्टि से पूजा जाता था। मनुष्य पेड़ों रक्षा किया करता था। परन्तु आज लगातार मनुष्य प्रकृति से खिलवाड़ कर रहा है। पेड़ों क काट रहा है। इसी प्रकार मनुष्य पानी को जल देवता मानकर पूजा करते हैं। पानी पर्यावर की रक्षा करता है। परन्तु आज उसी पानी को मनुष्य प्रदूषित कर रहा है। जैसे-जैसे मनुष विकास करने लगा वह नई-नई खोजें, नए-नए अनुसंधान करने लगा, इन खोजों, अनुसंधान से पर्यावरण का स्तर गिरने लगा। धीरे-धीरे मनुष्य नये नये औजार, हथियार, बनाने लग और फिर उसने परमाणु शक्ति, अणु, बम्ब आदि का विकास किया जिनसे पर्यावरण क हानि पहुंची है।

विकास (Development)–मानव जैसे-जैसे सभ्य होता गया उसके वैसे वैसे विभिन्न क्षेत्रों में विकास किया जैसे कृषि में, जानवरों को पालने में शहरीकरण में, औद्योगिकीकरण में, वाणिज्य आदि में। इन सब विकासों से पर्यावरण प्रभावित हो रहा है कयोंकि इन सब के लिये भूमि की आवश्यकता पड़ने लगी और भूमि की कमी को पूरा करने मनुष्य वनों को काटने लगा इसके दुष्परिणामों के बारे में सोचे बिना वह यह काम करने लगा।

कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिये मनुष्य खेती में रासायनिक खादों का, कीड़े मारने वाली दवाईयों का, काई नष्ट करने वाली दवाईयों का प्रयोग करने लगा। उसने इन सब के होने वाले बुरे प्रभावों को सोचे बिना कृषि की बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरा करने के लिए मनुष्य निरन्तर जंगलों की कटाई कर रहा है।

जानवरों के पालन-पोषण करने के लिए भूमि की आवश्यकता पड़ती है उन जानवरों के लिये चरागाहों की आवश्यकता पड़ने लगी इसलिए वनों का काटा गया : शहरीकरण के कारण, शहरों की संख्या बढ़ने लगी, शहर बड़े होने लगे, लोगों की भोजन, वस्त्र, मकान की आवश्यकता बढ़ने लगी इन सब आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जंगल को काटना पड़ा। औद्योगीकरण के कारण दिन-प्रतिदिन उद्योगों का विकास होता जा रहा है इन उद्योगों ने पर्यावरण के निर्जीव एवं सजीव अंगों तथा पर्यावरण के लिये खतरा उत्पन्न कर दिया है तकनीकी के विकास के साथ अधिक से अधिक आर्थिक महत्व के क्षेत्र बाहर आ रहे हैं जो न केवल जंगलों को अपितु मानव प्राणियों को भी विनाश की ओर ले जायेंगे।

जनसंख्या का दबाव (Population Stress)–पूरे विश्व में जनसंख्या की वृद्धि होती जा रही है। जो पृथ्वी की परिस्थितिकी सन्तुलन को बिगाड़ रही है। जनसंख्या के बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकतायें भी बढ़ती हैं। उन आश्यकताओं को पू

करने के वह बहुत सी हानिकारक तकनीकें लागू करता है जो पर्यावरण की गुणवत्ता को कम करते हैं। प्राकृतिक साधन सीमित होते हैं। उनसे मनुष्य की आवश्यकतायें पूर्ण नहीं हो पाती हैं। पर्यावरण को बचाना आवश्यक है। इसलिये कुछ कड़े नियमों को लागू किया जाना चाहिए। जो साधन बने हैं उनका इतना अधिक प्रयोग न किया जाये कि वे पृथ्वी से पूरी तरह समाप्त हो जाए।

वर्तमान पृष्ठ भूमि (Present Scenario)–मनुष्य ने स्वयं अपने पर्यावरण को इतना खराब कर लिया है कि आज इस बात की आवश्कता है कि वर्तमान साधनों को नियंत्रित किया जाए। पर्यावरण की गुणवत्ता को सुधारना आवश्यक है। अब तक मनुष्य ने जितने भी साधनों का विकास किया है उनके बिना जीवन जीना मनुष्य के लिए कठिन है लेकिन उन विकास की योजनाओं से प्राप्त साधनों पर किसी भी कीमत में कुप्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। पृथ्वी के स्वस्थ वातावरण को दूषित नहीं करना चाहिए। मनुष्य ने जो भी साधन विकसित किये हैं। उनका उपयोग सृजनात्मक एवं उपयोगी होना चाहिए। विध्वंसात्मक नहीं। हमें विकास ऐसे ढंग से करना चाहिए जिसका हमारी आने वाली पीढ़ी पर बुरा प्रभाव न पड़े। इसके लिए उचित योजना, साधनों का सुचारू प्रबन्ध और पर्यावरणीय प्रभाव का मूल्यांकन, किसी भी विकासशील कार्य को स्थापित करने से पहले होना चाहिए। इस प्रकार के मूल्यांकन परिस्थितिकी सन्तुलन बनाये रखने में सहायक होते हैं। प्राकृतिक साधनों को सुरक्षित रखना चाहिए।

शिक्षा का पक्ष (Education Aspect)–पर्यावरण की स्थिति की प्रत्येक व्यक्ति को जानकारी होनी चाहिए। इसके लिए उसे परम्परागत और अपरम्परागत शिक्षा देनी चाहिए। पर्यावरण प्रदूषण को कम करने का यह सबसे उत्तम उपाय है। गैर सरकारी संस्थाएं लोगों को शिक्षित कर उन्हें पर्यावरण की जानकारी देने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। राष्ट्रीय पर्यावरण की गिरावट पर काबू पाने के लिए वैधानिक उपाय भी अपनाने चाहिए।

वर्तमान युग में पर्यावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाये रखना अत्यन्त अवश्यक है तभी जीवित प्राणियों और उनकी भावी पीढ़ियों की सुरक्षा हो सकेगी। शिक्षा के द्वारा ही यह कार्य सम्भव हो सकता है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

पर्यावरण से क्या तात्पर्य है? पर्यावरण के कौन-कौन से घटक हैं? व्याख्या कीजिए।

(What do you mean by environment? What are the compoment of environment? Explain?)

❑

2. स्वस्थ वातावरण की (पर्यावरण) की धारणा और इस दिशा में प्रयास [Concept Of Healthy Environment & Efforts In This Direction]

स्वस्थ वातावरण की धारण
[Concept of Healthy Envitonement]

स्वस्थ पर्यावरण (वातावरण) से तात्पर्य है कि पर्यावरण का प्रदूषण रहित होना। वातावरण में जब किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता है तो उस वातावरण (पर्यावरण) को स्वस्थ वातावरण कहा जा सकता है। प्रकृति ने मनुष्य को सन्तुलित रूप में उसके विकास के लिये बहुत कुछ दिया है। जैसे पानी, हवा, वनस्पति आदि, अगर ये सब कुछ न हो तो मनुष्य का जीना इस धरती पर दूभर ही नहीं बल्कि जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्राकृतिक वातावरण (पर्यावरण) को सन्तुलित वातावरण की संज्ञा दी जाती है। प्रकृति के पर्यावरण का जब सन्तुलन बिगड़ने लगता है तो वातावरण अस्वस्थ हो जाता है। इस अस्वस्थ वातावरण का प्रभाव मानव जीवन पर पड़ता है। मनुष्य भी तभी तक स्वस्थ रह सकता है जब तक वातावरण में स्वच्छता होगी। मनुष्य को अच्छा और स्वस्थ जीवन जीने के लिए केवल प्रकृति के स्वस्थ वातावरण की आवश्यकता नहीं होती बल्कि उसके लिये सामाजिक वातावरण भी स्वस्थ होना चाहिए अर्थात् किसी प्रकार की सामाजिक दृष्टि से चिन्ता, भय, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, कुण्ठा, तनाव, शोषण जैसे अवगुण नहीं होने चाहिए।

मनुष्य दो प्रकार के वातावरण में रहता है–प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण। इन दोनों प्रकार के वातावरण का प्रदूषण, रहित होना ही स्वस्थ वातावरण है। अगर इन दोनों में से किसी में प्रदूषण का पुट मिलता है तो इसे स्वस्थ वातावरण नहीं कहा जा सकता। मानव जीवन के लिये स्वस्थ सामाजिक वातावरण भी उतना ही आवश्यक है जितना स्वस्थ प्राकृतिक वातावरण। इन दोनों का समन्वित संरक्षण ही स्वस्थ वातावरण है। मनुष्य स्वभाव के लिये अनिवार्य है। इसलिये सामाजिक परिवेश बालक के लिये अनिवार्य आवश्यक है क्योंकि समाज से बाहर व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसलिये मानव : स्वास्थ्य के लिये समाज परिवेश का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। बालक

को सामाजिक सम्बन्धों की शिक्षा समाज से ही मिलती है। समाज और उसके स्वाभाविक अंग बालक का समाजीकरण करते हैं। इस प्रकार वह समाज में समायोजित करने की शिक्षा कला सीख लेता है। स्वस्थ समाजिक वातावरण का क्षेत्र प्रेम, सहयोग, आदर, सेवा-भाव, अतिथि सत्कार, सहनशीलता, भाई चारे, सहानुभूति की भावनाओं से ओत-प्रोत होता है। जिस समाज में सामाजिक, मानवीय और नैतिक मूल्यों की गिरावट आ जाती है। तो उस समाज के वातावरण को स्वस्थ नहीं कहा जा सकता।

सारांश में यह कहना उचित होगा कि स्वस्थ वातावरण का आधार प्रकृति के सन्तुलन और समाज के सम्बन्धों के सन्तुलन की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इसलिये स्वस्थ वातावरण के लिये प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक वातावरण का प्रदूषण रहित होना आवश्यक है और इसके साथ-साथ इन दोनों में समन्वय का होना भी अति अनिवार्य है।

स्वस्थ वातावरण की दिशा में प्रयास [Efforts for Healthy Environment]

स्वस्थ वातावरण की दिशा में शिक्षा ही एक मात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा बालकों एवं व्यक्तियों को स्वस्थ वातावरण के प्रति जागरूक किया जा सकता है। शिक्षा का प्रसार और प्रचार शिक्षक द्वारा ही किया जा सकता है। इस दृष्टि से शिक्षक की भूमिका का सार्थक, सशक्त, प्रगतिशील और प्रभाव पूर्ण होना अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है और समाज से सम्बन्धित जिस किसी प्रकार की कोई भी प्रक्रिया हो उसमें शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। वह राष्ट्र के भविष्य का निर्माता है। वह अपने छात्र-छात्राओं के लिये जीता जागता आदर्श होता है जिसका अनुसरण उसके विद्यार्थी करते हैं। समाज को सही दिशा प्रदान करने का दायित्व भी शिक्षक पर होता है। वह सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण के लिये सशक्त ढंग से प्रयास कर सकता है। वह अपने छात्र-छात्राओं के साथ ही जन साधारण को भी नये मूल्यों के प्रति सचेत एवं जागरुक कर सकता है। वह स्वस्थ वातावरण के प्रति छात्र-छात्राओं में स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करने में सक्षम होता है इस कार्य को करने के लिये अन्य संस्थाओं की सेवायें भी उपलब्ध करवा सकता है। स्वस्थ वातावरण की दिशा में शिक्षक तभी सफल प्रयास कर सकता है जब उसका स्वयं का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं उदारवादी हो। अगर उसका व्यक्तित्व ऐसी सोच का है तो वह अवश्य ही अपने छात्र-छात्राओं और समाज के अन्य लोगों को प्रभावित कर सकेगा। शिक्षक प्रदूषण को दूर करने हेतु वह जनसंख्या वृद्धि, व्यर्थ खर्च, गलत ढंग से वस्तुओं का प्रयोग करने उपरान्त उनका फैंकना, अर्थहीन लक्ष्यों के लिये तकनीकी प्रयोग रासायनिक खाद व कीट नाशक दर्वाइयों के अनुचित ढंग से प्रयोग आदि के बारे में छात्र-छात्राओं को विस्तृत जानकारी दे सकता है।

इनके अतिरिक्त शिक्षक प्रदूषण सम्बन्धी जानकारी देने के लिये पाठ्यक्रम और पाठ्य सहगामी क्रियाओं का सहारा ले सकता है। पाठ्यक्रम के विषय पढ़ाते समय पर्यावरण (वातावरण) प्रदूषण सम्बन्धी समस्या पर विचार कर सकता है और प्रदूषण के भयानक दुष्परिणामों पर प्रकाश डाल सकता है। प्रयोजन विधि (Project-method) का प्रयोग करके समस्या से सम्बन्धित उपयोगी जानकारी प्रदान कर सकता है।

वह इकोलोजी (Ecology) परिस्थितिकी विषय पढ़ाते समय छात्र-छात्राओं को इस तथ्य से अवगत करा सकता है कि प्रकृति पर्यावरण में किस प्रकार सन्तुलन बनाये रखती है। लेकिन मानव जब अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़ने का प्रयास करता है तो प्रदूषण की समस्या होती है। पर्यावरण में अस्वस्थता का चक्र घूमने लगता है। शिक्षक उनको इस बात से परिचित कराने में भी सफल प्रयास कर सकता है कि स्वस्थ पर्यावरण (वातावरण) के लिये छोटे से छोटे जीवों और पशु-पक्षियों की भूमिका होती है और इस भूमिका में उन सब का पारस्परिक सम्बन्ध होता है।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन

पाठ्य सहगामी गतिविधियां इस दिशा में अधिक सहायक एवं लाभदायक सिद्ध हो सकती है। इनमें छात्र अपनी रूचि के अनुसार भाग ले सकते हैं। इनका आयोजन विद्यालय में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर किया जाये। इनके अन्तर्गत शिक्षक प्रदर्शनी लगा सकता है और विद्याथी सामग्री एकत्रित कर सकते हैं। विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर भाषण-प्रतियोगिता, निबन्ध लेखन प्रतियोगता और कविता-पाठ का आयोजन किया जा सकता है। संस्था द्वारा पर्यावरण विशेषज्ञों को आमन्त्रित किया जा सकता है और स्वस्थ वातावरण के पहलुओं से सम्बन्धित जानकारी दी जा सकती है।

शिक्षण संस्थाओं में सैमीनार और वर्कशाप का आयोजन किया जा सकता है। शिक्षक शैक्षिक भ्रमण का आयोजन कर सकते हैं और छात्र-छात्राओं को पार्यवरण से सम्बन्धित ऐसे स्थानों पर ले जा सकते हैं जहां उन्हें प्रदूषण के दुष्ट परिणामों से भली-भांति परिचित करा सकते हैं। उनको प्राकृतिक स्थानों पर ले जाकर उनके अन्दर प्रकृति के प्रति प्रेम जागृत कर सकते हैं। स्वस्थ वातावरण बनाये रखने हेतु शिक्षक विद्यालय मे वृक्षारोपण की क्रियाएं करवा सकता है। वह संस्था मे कलब का संगठन करके बाढ़, अकाल एवं महामारी जैसी आपातकाल स्थिति में लोगों की सहायता करने में योगदान दे सकता है।

शिक्षक विद्यालय के प्रधानाचार्य से विचार-विमर्श करके उनकी अनुमति से साहित्य मंगवा करके छात्र-छात्राओं कै ज्ञान में वृद्धि कर सकता है। शिक्षक अन्य संस्थाओं जैसे समुदाय, परिवार, राज्य, अन्य समूह और कलब आदि से सहयोग प्राप्त कर सकता है। वह उन्हें पर्यावरण प्रदूषकों की जानकारी प्रदान करके उनको दूर करने की विधियों का ज्ञान दे

सकता है। ये प्रक्रियाएं सैद्धान्तिक न होकर व्यावहारिक होनी चाहिए ताकि जीवन में इनका सदुपयोग किया जा सके।

शिक्षक को चाहिए कि वह इन उपरोक्त बातों के अतिरिक्त छात्र-छात्राओं को उनके सामाजिक परिवेश से सम्बन्धित स्वस्थ वातावरण के बारे में मानवीय सम्बन्धों को ध्यान में रखकर विस्तार से जानकारी दें।

आज हम देखते हैं कि पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव व्याप्त है। जिन शाश्वत मूल्यों पर परिवार आधारित था वे अब नहीं रहे हैं। परिवार में प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, सेवा-भाव समानता की भावना समाप्त होती जा रही है। आपसी सम्बन्धों में कटुता और तनाव के कारण दरार पड़ती जा रही है। आज पारिवारिक वातावरण एवं सामाजिक वातावरण भी प्राकृतिक वातावरण की तरह दिन-प्रतिदिन दूषित हो रहा है।

आर्थिक प्रदूषण भी सामाजिक प्रदूषण का ही अंग है जिसका प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर पड़ रहा है। हम सम्बन्धों को महत्व न देकर वस्तुवादी हो गये हैं। मनुष्य पैसे के पीछे भाग रहा है। इन्हीं कारणों के चलते आज सामाजिक परिवेश में बाज़ार मे वस्तुओं का कृत्रिम अभाव है, तस्करी, लूट-मार, दहेज आदि सामाजिक एवं आर्थिक बुराइयां चारों ओर फैली हुई हैं। रहन-सहन खान-पान का स्तर तो बढ़ता जा रहा है लेकिन जीवन का स्तर नीचे गिरता जा रहा है अर्थात् जीवन के मूल्यों का पतन हो रहा है। यही कारण है कि आज स्वयं मानव मानवीय शोषण का बुरी तरह से शिकार हो रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। समाज की अस्वस्थता का कारण आज आर्थिक प्रलोभन सबसे बड़ा कारण बना हुआ है।

आज शाश्वत और नैतिक मूल्यों में गिरावट आ गई है। राष्ट्र चरित्र केवल कथनी तक ही सीमित रह गया है। मनुष्य के दोहरे मापदण्ड हो गये हैं। उसकी कथनी करनी एक जैसी नहीं रही है। यही कारण है कि भौतिक दृष्टि से हम सम्पन्न होते हुए भी नैतिक दृष्टि से बहुत विपन्न हैं। जिस समाज में नैतिक मूल्यों को उपेक्षित किया जाता है वह समाज समाप्त हो जाता है।

आज के भौतिक युग में मनुष्य मानसिक प्रदूषण का शिकार है क्योंकि वह तनाव ग्रस्त होकर जी रहा है। इसका कारण है स्वार्थ प्रियता और भौतिक सुखों की आवश्यकता से अधिक लालसा एवं लोलुपता अस्वस्थ मस्तिष्क अपराधों को जन्म देता है इसलिये शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ मानसिक रूप से स्वस्थ होना भी बहुत आवश्यक है।

धार्मिक दृष्टि से भी सामाजिक परिवेश में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। धर्म के नाम पर अनेक समाज विरोधी कार्य किये जा रहे हैं। जबकि धर्म तोड़ता नहीं जोड़ता है। सच्चा धर्म मानवता की सेवा करने के लिये प्रेरित करता है। परन्तु आज इस सबके विपरीत भाई-भाई का गला काट रहा है। धर्म के ठेकेदार अपने स्वार्थों की पूर्ति हेतु भोले-भाले लोगों को भ्रमित करके अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

उपरोक्त बुर्राइयों के अतिरिक्त आज वर्ग भेद, छुआ-छूत जाति वाद जैसी बुराइयां सामाजिक पर्यावरण को बुरी तरह से दूषित कर रही है। इसलिये आज समय की यह पुकार है कि प्राकृतिक वातावरण को स्वस्थ बनाने के साथ-साथ सामाजिक वातावरण को स्वस्थ बनाने हेतु अवश्यक कदम उठाये जायें। सामाजिक वातावरण को स्वस्थ एवं शुद्ध बनाने हेतु निम्न कदम उठाने की आवश्यकता है-

(1) शाश्वत मूल्यों, मानव मूल्यों और नैतिक मूल्यों के प्रति लोगों की आस्था बनाई जाये।

(2) राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिये लोगों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाया जाये।

(3) आर्थिक समानता और न्याय की भावना पर बल दिया जाये।

(4) भ्रष्ट्राचार जो अनेक सामाजिक बुराइयों की जड़ है, इसे समाप्त किया जाये।

(5) धर्म के संकुचित अर्थ को न लेकर धर्म की विस्तृत रूप की व्याख्या की जाये।

(6) समाज की बुराइयां जो समाज को दीमक की तरह खा रही हैं। उनका अन्त किया जाये।

(7) राजनेता जनसाधारण के समक्ष अपना आदर्श रूप प्रस्तुत करें।

(8) राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास किया जाये।

(9) राष्ट्र हित को सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ हित माना जाये।

(10) पारिवारिक सम्बन्धों को मधुर बनाया जाए।

(11) शिक्षा चेतना को जगाने के लिये सर्वोतम साधन है। इसलिये शिक्षा का अधिक से अधिक प्रचार एवं प्रसार किया जाना चाहिए जिससे सामाजिक पर्यावरण स्वस्थ बने।

उपरोक्त ठोस कदमों के उठाने से प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को स्वस्थ बनाने हेतु लोगों में उदारवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है। प्रदूषण पर नियन्त्रण भी किया जा सकता है और पर्याप्त सीमा तक इसका निराकरण भी किया जा सकता है बशर्ते कि समाज का हर व्यक्ति अपना पुनीत कर्त्तव्य समझे कि पर्यावरण की सुरक्षा एवं उसको स्वस्थ बनाये रखना उसका धर्म है। अगर ऐसा होता है तो हम मानवता को भंयकर प्रदूषण के खतरों से उभार सकने में समर्थ और सशक्त हो सकते हैं और भावी पीढ़ी के लिये स्वस्थ वातावरण बपौती के रूप में छोड़ सकते हैं।

3. मुद्दे के कारण
[GLOBAL ENVIRONMENT ISSUES]

(1) वातावरण की सुरक्षा : सरकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वातावरण प्रतिवद्धता
[CONSVERVATION OF ENVIRONMENT: GOVT'S ENVIRONMENT COMMITMENT IN NATIONAL AND INTERNATIONAL FIELD]

आधुनिक युग में विज्ञान शिक्षा एवं तकनीकी के प्रचार और प्रसार हेतु मनुष्य में चेतना का विकास हुआ और इस चेतना के परिणाम स्वरूप ही मनुष्य ने वातावरण से सम्वन्धित अनेक गल्तियां की हैं। इन्हीं गल्तियों के कारण ही मनुष्य, समाज और इस पृथ्वी पर रहने वाले जीवधारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। प्रकृति से छेड़-छाड़ करने पर ही इस धरती पर वसने वाले जीव और प्राकृतिक वातावरण का विनाश होने लगा है और जीवन की गुणवत्ता पहले से वहुत कम हो गई है और जीवन का आधार खिसकने लगा है। इन सव वातों को देखते हुए खतरे की घण्टी वजने लगी तो मनुष्य सचेत हुआ और व्यक्तिगत स्तर पर खतरे से वचने के लिए उसने प्रयत्न करने शुरु कर दिये हैं। अव ये प्रयत्न केवल मात्र व्यक्तिगत स्तर पर न होकर वल्कि संस्थागत प्रयत्न भी सामूहिक रूप से हो रहे हैं। सरकार की वातावरण सुरक्षा के प्रति वचनवद्धता है। इन सवके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन हो रहे हैं। इन सव वातों का तात्पर्य वातावरण को प्रदूषण से वचाना है।

वातावरण की सुरक्षा (Conservation of Environment)–आज भारत में जनसंख्या तीव्र गति से वढ़ ही नहीं रही है। वल्कि विस्फोट हो रहा है। इसके परिणाम स्वरूप जीवन स्रोत दिन प्रति दिन लुप्त होते जा रहे हैं। धरती पर आवास की समस्या खड़ी हो गई है। विश्व में 2000 ई. तक इस धरती पर 630 करोड़ जनसंख्या का अनुमान लगाया गया है और इसमें से आधी जनसंख्या ने नगरों में रहना प्रारम्भ कर दिया है। यह सव कुछ देखते हुए सहज रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि धरती के प्राकृतिक स्रोतों का क्या वनेगा। प्राकृतिक स्रोतों का शोषण स्वार्थी लोग कर रहें हैं या उन लोगों द्वारा हो रहा है जो गरीवी की रेखा से नीचे हैं वे अपनी मौलिक एवं भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस संस्थानों का विनाश करने पर लगे हुए हैं। ऐसे लोगों की संख्या सबसे अधिक

3. मुद्दे के कारण
[GLOBAL ENVIRONMENT ISSUES]

(1) वातावरण की सुरक्षा : सरकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वातावरण प्रतिबद्धता
[CONSVERVATION OF ENVIRONMENT: GOVT'S ENVIRONMENT COMMITMENT IN NATIONAL AND INTERNATIONAL FIELD]

आधुनिक युग में विज्ञान शिक्षा एवं तकनीकी के प्रचार और प्रसार हेतु मनुष्य में चेतना का विकास हुआ और इस चेतना के परिणाम स्वरूप ही मनुष्य ने वातावरण से सम्बन्धित अनेक गल्तियां की हैं। इन्हीं गल्तियों के कारण ही मनुष्य, समाज और इस पृथ्वी पर रहने वाले जीवधारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। प्रकृति से छेड़-छाड़ करने पर ही इस धरती पर बसने वाले जीव और प्राकृतिक वातावरण का विनाश होने लगा है और जीवन की गुणवत्ता पहले से बहुत कम हो गई है और जीवन का आधार खिसकने लगा है। इन सब बातों को देखते हुए खतरे की घण्टी बजने लगी तो मनुष्य सचेत हुआ और व्यक्तिगत स्तर पर खतरे से बचने के लिए उसने प्रयत्न करने शुरु कर दिये हैं। अब ये प्रयत्न केवल मात्र व्यक्तिगत स्तर पर न होकर बल्कि संस्थागत प्रयत्न भी सामूहिक रूप से हो रहे हैं। सरकार की वातावरण सुरक्षा के प्रति वचनबद्धता है। इन सबके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन हो रहे हैं। इन सब बातों का तात्पर्य वातावरण को प्रदूषण से बचाना है।

वातावरण की सुरक्षा (Conservation of Environment)–आज भारत में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ ही नहीं रही है। बल्कि विस्फोट हो रहा है। इसके परिणाम स्वरूप जीवन स्त्रोत दिन प्रति दिन लुप्त होते जा रहे हैं। धरती पर आवास की समस्या खड़ी हो गई है। विश्व में 2000 ई. तक इस धरती पर 630 करोड़ जनसंख्या का अनुमान लगाया गया है और इसमें से आधी जनसंख्या ने नगरों में रहना प्रारम्भ कर दिया है। यह सब कुछ देखते हुए सहज रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि धरती के प्राकृतिक स्त्रोतों का क्या बनेगा। प्राकृतिक स्त्रोतों का शोषण स्वार्थी लोग कर रहें हैं या उन लोगों द्वारा हो रहा है जो गरीबी की रेखा से नीचे हैं वे अपनी मौलिक एवं भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस संस्थानों का विनाश करने पर लगे हुए हैं। ऐसे लोगों की संख्या सबसे अधिक

है। इनके अतिरिक्त समृद्धशाली लोग जो संख्या में कम है परन्तु हवस बहुत बड़ी है। वे हवस को पूरी करने के लिये और ज्यादा भोगने की इच्छा से वातावरण से खिलवाड़ कर रहे हैं। यह स्थिति बहुत आश्चर्य जनक और हास्यस्पद भी है क्योंकि जिस पर मनुष्य का सुख शांति और जीवन निर्भर करता है, वह उसी का बेरहमी से विनाश कर रहा है।

विकास मानव सभ्यता का ध्येय रहा है। इस धरती पर जन्म लेने वाला हर मानव विकास की ओर अग्रसर होना चाहता है। इसीलिए उसने धरती पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को उपयोग भी करना है। परन्तु यदि इन प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग बहुत तेजी से और बहुत अधिक होगा तो भविष्य में इनका समाप्त होने का खतरा बना रहेगा। यह भी सम्भव नहीं हो सकता कि इनका प्रयोग ही नहीं किया जाये। इसके लिये सन्तुलन बनाये रखना आवश्यक है और यह सन्तुलन तभी बना रह सकता है जब इन संस्थानों का उपयोग इस ढंग से किया जाये कि इन संस्थानों के विकास और उपयोग में तालमेल बना रहा और प्रकृति का सन्तुलन भी न बिगड़ने पाये।

आज बढ़ते प्रदूषण को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि वातावरण की सुरक्षा की जाये। यहां वातावरण सुरक्षा से तात्पर्य वातावरण प्रबन्ध से है। प्रकृति ने हमें प्राकृतिक स्रोतों के रूप में जो अनुपम खजाना दिया है उसका सद्पयोग इस ढंग से हो कि जिससे हमें किसी प्रकार की हानि न हो और वो खजाना जल्दी कम न हो। वातावरण प्रबन्ध का सबसे अनिवार्य कार्य लोगों में वातावरण के प्रति चेतना लाना है ताकि वे प्राकृतिक संसाधनों के महत्व के प्रति जागरूक हों। इसके लिये यह आवश्यक है कि वे इस बात को समझे कि रहन-सहन खान-पान के स्तर को बनाये रखने के लिये इस ग्रह पर जनसंख्या बहुत सीमित ढंग से बढ़े ताकि मनुष्य की आवश्यकताओं और प्राकृतिक संसाधनों में समन्वय बना रहे।

वातावरण सुरक्षा की आश्यकता
[Need of Conservation of Environment]

प्रकृति के स्रोतों का पहले से ही आवश्यकता से अधिक उपयोग और शोषण हो चुका है अगर भविष्य में प्रकृति स्रोतों का शोषण नहीं रोका गया तो वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य का इस धरती पर सांस लेना भी दूभर हो जायेगा। इस लिये स्रोतों को शोषण से बचाने हेतु पर्यावरण सुरक्षा एक बहुत बड़ी आवश्यकता हो गई है।

आज का भौतिकवादी मानव सभ्यता के विकास के नाम पर इतनी अधिक और बड़ी त्रुटियां कर चुका है जिनको सुधारने में अनेकों वर्ष लग जायेंगे। मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति और स्वार्थ प्रियता के कारण इतने वृक्ष काट दिये हैं जिनको पुनः लगाने और फलने फूलने देने में बहुत से वर्ष बीत जायेंगे तब जाकर वे वृक्ष बन पायेंगे।

बीते युग अर्थात् भूत में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आपसी सूझ-बूझ एवं सहयोग की कमी के चलते वातावरण सुरक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन कि

भी स्थानीय स्तर पर इस दिशा में बहुत कम प्रयास किये गये जो पूर्ण रूप से अपर्याप्त रहे हैं। इसलिये आधुनिक युग में सांझे प्रयासों की आवश्यकता समय की मांग है अर्थात् समय की पुकार है।

वातावरण सुरक्षा के उद्देश्य [Objectives of Conservation of Environment]

(1) इस धरती पर अनुपम देन (प्राकृतिक स्रोत) अधिक समय तक बने रहें और सभी प्रकार की नस्लें जीवित एवं स्वस्थ रहें।

(2) धरती पर जो विलक्षणता और सौन्दर्य दिखाई देता है वो ज्यों का त्यों बना रहे और विभिन्न नसलों का विकास होता रहे।

(3) मनुष्य की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे जैसे खाने का प्रबन्ध, जीने का प्रबन्ध और खनिज पदार्थों का पुन : उत्पादन होता रहे। इनके अतिरिक्त इस धरती पर जीवन दायक प्रबन्ध जैसे हवा मिट्टी, पानी वनस्पति का सन्तुलन लगातार बना रहे।

सुरक्षा नीति (Conservation policy (Strategies)–विश्व स्तर पर मुख्य रूप से दो प्रकार की नीतियों को हीं अपनाया जा सकता है जो निम्न हैं–

(1) विशेष हित सुरक्षा नीति (Special interest conservation policy strategies)–इस नीति के अन्तर्गत ऐसे स्रोतों की विशेष रूप से सुरक्षा की जाती है जो सीमित मात्रा में और जिनके समाप्त होने का भय बना हुआ है।

(2) सम्पूर्ण इको प्रबन्ध सुरक्षा नीति (Total Eco system conservation policy (Strategies)–इसके अन्तर्गत समूची धरती के इको प्रबन्ध की सुरक्षा के सम्बन्ध में नीति बनाई जाती है। इस नीति के अन्तर्गत सभी जीव नस्लों, पैदा नस्लों को सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया जाता है। विकसित देशों में ऐसी नीति के सम्बन्ध में चर्चा हो रही है।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वातावरण सुरक्षा की प्रतिबद्धता [Commitment at National and international for Environment Conservation]

इस वचनबद्धता (प्रतिबद्धता) के अन्तर्गत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएं एवं संगठन आगे आये हैं। इन्होंने सरकार की प्रति बद्धता को प्रस्तुत किया है और निम्नलिखित प्रयास किये गये हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवीय वातावरण से सम्बन्धित सम्मेलन (United national conferance on human Environment)–सन् 1972 में 5 जून से 16 जून

तक स्टाक होम में संयुक्त राष्ट्र संघ का मानवीय वातावरण से सम्बन्धित एक सम्मेलन हुआ। तभी से 5 जून को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वातावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस सम्मेलन में जो सुझाव प्रस्तुत किये गये उनका विवरण इस प्रकार है–

(1) प्रत्येक मनुष्य को अच्छी गुणवत्ता वाले वातावरण में रहने का अधिकार है और इसे बचाने एवं सुधारने का उत्तदायित्व प्रत्येक मनुष्य का है।

(2) वातावरण लोगों के अच्छे रहन–सहन और आर्थिक विकास को प्रभावित करता है।

(3) भू–वैज्ञानिक सन्तुलन में अनैच्छिक हस्ताक्षेप, स्त्रोतों का शोषण एवं पानी और वायु का प्रदूषण वातावरण को नुकसान पहुंचाता है।

(4) समाज को सुरक्षित उपायों और बुद्धिमत्ता से जंगली जीवन की विरासत और उनके आवास से सम्बन्धित उचित प्रबन्ध करने चाहिये।

(5) प्राकृतिक इको प्रबन्ध के प्रतिनिधि नमूने सुरक्षित रखें जाने चाहिये।

(6) धरती के प्राकृतिक स्त्रोतों की पुन: निर्माण एवं उत्पादन हेतु उसकी क्षमता बनाये रखना चाहिये।

(7) पुनर्निर्माण अयोग्य स्त्रोतों को इस प्रकार उपयोग में लाया जाये कि वे पर्याप्त रूप से हों और समूची मानव जाति के लिये उपलब्ध हों।

(8) समुद्रों को प्रदूषकों का कूड़ा स्थान कदापि भी नहीं बनाना चाहिये। इससे समुद्री जीवन और मानव स्वास्थ्य को हानि पुहंचती है।

(9) वातावरण गुणवत्ता बनाये रखने और स्त्रोतों का प्रबन्ध करने के लिये राष्ट्रीय संस्थानों का उत्थान करना चाहिये।

(10) विज्ञान और तकनीकी को वातावरण जोखिमों की पहचान हेतु और समस्याओं के समाधान के लिये प्रयोग किया जाना चाहिए।

(11) हर (प्रत्येक) प्रान्त का यह कर्तव्य बनता है वह यह सुनिश्चित करे कि उसके प्रान्त में किये जा रहे कार्य दूसरे प्रान्तों के वातावरण को किस प्रकार की कोई हानि न पहुंचाये।

(12) देश के सभी छोटे–बड़े नागरिकों को सभी संस्थाओं से वातावरण प्रदूषण से अवगत कराया जाये और इसकी रोकथाम हेतु वातावरण सुरक्षा एवं सुधार हेतु शिक्षित किया जाये।

भारतीय संविधान की धारा 42 में 1976 में संशोधन किया गया। इसके अन्तर्गत वन, वनजीव और वातावरण से सम्बन्धित कई मुद्दों पर विचार किया गया। नीति निर्देशक सिद्धान्त बनाये गये और मौलिक कर्त्तव्यों को निर्धारित किया गया। धारा 48 ए (A) के

अन्तर्गत राजनैतिक निर्देशक सिद्धान्त बनाये गये और इसमें ये निर्देश दिये गये कि प्रत्येक प्रान्त (राज्य) अपने क्षेत्र के प्राकृतिक वातावरण की सुरक्षा और सुधार हेतु प्रयत्न करेगा जिससे वन और वन जीवन की पर्याप्त रूप से सुरक्षा हो सके।

धारा (Article) 51 ए (A) जी (G) के मौलिक कर्त्तव्यों के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिये प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा और उनका रख-रखाव जिनमें जंगल झीलें, दरिया, वनजीव, जीवों के लिये दया भाव शामिल हैं।

वातावरण और वन-विभाग (Department of Environment and forests)–सन 1972 में विभिन्न विभागों और मन्त्रालयों के विशेषज्ञों की सहायता से वातावरण उद्योगति (Degradation) की समस्या और इसका समाधान ढूंढने हेतु वातावरण की सुरक्षा के लिये वर्तमान में कानून बनाने और प्रबन्धन ढांचे में परिवर्तन करने के लिए एक समिति का निर्माण किया गया। बाद में चल कर यह विभाग वातावरण और वन मंत्रालय में परिवर्तित हो गया।

फैकटरी अधिनियम (संशोधन 1987)
[Factory Act 1948 (Amendment 1987]

भारतीय संविधान सैक्शन 12 के अन्तर्गत उद्योगपतियों को यह निर्देश दिये गये हैं कि वे फालतू बचत (Extra Saving) के निपटाने के लिये सार्थक एवं सशक्त प्रबन्ध करें और अपने प्रबन्धों का प्रान्त सरकार के निर्धारित अधिकारियों से मंजूर करवाएं।

(1) इस अधिनियम के अन्तर्गत संशोधित रूप के भाग में खतरनाक पदार्थों के उपयोग और उनकी संभाल के लिये दिशा निर्देश दिये गये हैं।

(2) इसमें आपातकाल स्थिति के स्तर और मापदण्ड बताये गए हैं।

(3) इस एक्ट में खतरनाक उद्योग को यह सुनिश्चित करने के भी निर्देश दिये गये है कि ऐसे उद्योग आवास स्थान से पर्याप्त रूप से दूर हों।

(4) इसमें निकासी पदार्थों की सीमा बहुत सीमित हो जिससे प्रदूषण न हो सके।

(5) इस एक्ट में यह भी प्रावधान किया गया कि श्रमिकों की निरन्तर जांच हो।

उपरोक्त अधिनियम के प्रभाव निम्न हुए–

(1) प्रबन्ध की मशीन और आदमी की मान्यता में परिवर्तन हुआ।

(2) मशीनरी की देखभाल सुरक्षा और संकट कालीन मापदण्डों से दुर्घटनाओं में कमी आई।

(3) उद्योगों की फालतू बचत से प्रदूषण में भी कमी आई।

वास्तविक रूप से यह भी देखने में आया है कि-

(1) प्रबन्धक समितियों के भ्रष्ट अधिकारियों की सहायता से नियमों का सही ढं से पालन नहीं किया गया।

(2) श्रमिकों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित पूर्ण चिकित्सा शायद ही कभी हुई हो औ उनके काम से सम्बन्धित स्वास्थ्य त्रुटियों के बारे में कभी अवगत ही नहीं कराया गया

वन सुरक्षा अधिनियम 1980 संशोधन 1988 [Forest Conservation Act 1980 Amendment-1988]

1894 में एक वन नीति बनाई गई जिसको 1952 में, फिर से 1988 में संशोधि किया गया। भारतीय वन दिवस, 1927 को लागू हुआ जिसे 1930, 1933 और 1948 संशोधित किया गया। यह संशोधन ही आगे चलकर सुरक्षा अधिनियम में परिवर्तन हुआ

इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न निर्देशों का पालन के लिये आदेश दिये गये-

(1) वन धरती को गैर-वन मनोरथ में जिसमें रबड़ वृक्षों की खेती, बांस, दवाई युक्त पौधे, मसाले, चाय, कॉफी आ जाते हैं जिन्हें केन्द्र सरकार की मंजूरी के बिना नहं बदला जा सकता।

(2) 20 हैक्टेयर से कम वनभूमि प्रान्त सरकार की मंजूरी से गैर-वन मनोरथ के लिये प्रयोग करने के लिये वातावरण एवं वन मंत्रालय की मंजूरी है, वह इस मनोरथ के लिये सलाहकार समिति गठित करेगा।

(3) यदि वन मनोरथ स्थानान्तर के लिये मंजूरी मिलती है तो बराबर का क्षेत्र व क्षेत्र के लिये रखना होगा अथवा इससे दुगुना क्षेत्र कम वन वाला रखना होगा।

(4) फसल बदलू चक्र और अवैध कब्जों पर निगरानी रखनी चाहिये।

(5) रोक मापदण्डों के साथ-साथ कबीलों के अधिकारों और परम्पराओं को उभारा जाना चाहिये।

(6) सारी वन योजनाओं में वन सुरक्षा पर बल दिया जाना चाहिये और बड़ अनुशासनीय पहुंच अपनाई जानी चाहिए।

(7) पहले वन नियम 1927 के अनुसार प्रान्तीय सरकार किसी वन या फालतू भूमि को आरक्षित वन घोषित करती है। जहां पर वृक्ष काटने और पशु चराना मना हो। पर चराना, वन काटना, कृषि करना किसी भी उस भूमि पर निषेध किया जा सकता है जह क्षति होने का खतरा हो।

(8) पहाड़ों के नाजुक क्षेत्रों व ढलानों के क्षति वाले स्थानों और भूमि क्षति को जल्द से जल्द वन लगाकर रोका जाना चहिये। ऐसे क्षेत्र के आस पास 1000 मीटर का घेर वन काटने के लिये मनाही होना चाहिए।

(9) कोई भी स्वयं लगाया हुआ वन क्षेत्र पुनः वन लगाने की इच्छा से नहीं काटा जाना चाहिए।

(10) वन वृक्षों की पूर्ण कटाई पहाड़ों में दस हैक्टेअर और मदानों में 20 हैक्टेयर से अधिक नहीं होनी चहिए और इसके साथ लगते ही वृक्ष लगाये जाने चाहिए।

(11) क्षेत्र में पशु चराई का अध्ययन किया जाना चाहिए और सुरक्षित मापदण्ड अपनाए जाने चाहिए।

(12) नियमों का उल्लंघन करने वालों को दण्डित करना चाहिये।

वन जीवन सुरक्षा अधिनियम 1972 संशोधन 1991
[Wild life Protection Act-1972 Amendment 1971]

वन जीवन प्रकृति जीवन अन्तर्गत आता है जिसे मनुष्य ने निर्मित नहीं किया है। इसमें वन और वन जीवों को सम्मिलित किया जाता है। भू-वैज्ञानिक संतुलन के लिये भूमि क्षति रोकने आर्थिक विकास, नस्ल सुधार, चारे, दर्वाइयों हेतु वन जीवन आवश्यक है। वन जीवन की सुरक्षा हेतु प्रारम्भ से ही बहुत प्रयत्न किये गये जिनका विवरण निम्न हैं-

(1) 1873 में मद्रास वन में हाथी संभाल अधिनियम।

(2) सर्व भारतीय हाथी संभाल अधिनयम 1879।

(3) वन पक्षी और पशु सुरक्षा अधिनियम 1912।

(4) बंगाल का गैण्डा सम्भाल अधिनियम 1932।

(5) आसाम गैस सम्भाल अधिनियम 1954 के अधीन 1954 में केन्द्रीय वन जीव बोर्ड स्थापित किया गया। 1972 में अधिनियम पास हुआ और 1995 में इसमें संशोधन किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रधानमन्त्री के अधिकार में भारतीय वन जीव बोर्ड स्थापित किया गया।

उपरोक्त अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न जीवन भौगोलिक क्षेत्र समाप्त हो रही नस्लों को बचाने के लिये प्रयास किये गये। यह राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य और जीव क्षेत्र- तीन प्रकार के क्षेत्र हैं। राष्ट्रीय उद्यान वो सुरक्षित क्षेत्र हैं जहां कृषि, चराई और कटाई की मनाही है। भारत में 75 राष्ट्रीय उद्यान हैं। अभयवन (Sanctuary) वो झीलें वाले और झीलों रहित क्षेत्र हैं, जहां जानवरों का शिकार करना गैर-कानूनी होता है। भारत में लगभग 421 तीर्थ स्थान हैं जो जीव क्षेत्र सुरक्षा बहु उद्देशीय सुरक्षा क्षेत्र होते हैं। इनमें वन जीवन, कबीले के लोग, घरेलू पौधे एक साथ रहते हैं।

भारत में एक केन्द्रीय चिड़िया घर अधिकारिणी समिति स्थापित हो गई है जिसने पूरे देश में 250 चिड़िया घरों का प्रबन्ध एवं तालमेल करने का प्रयास किया है। देश भर में

निदेशक वन जीव सुरक्षा की स्थापना की गई है। इसके अधीन दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता चेन्नई में उपनिदेशक स्थापित किये गये हैं।

वन जीवन सुरक्षा अधिनियम के प्रमुख नियम इस प्रकार है–

1. वन जीव सुरक्षा अधिनियम शिकार का निषेध करता है।

2. इसके अन्तर्गत चमड़ी, हड़िडयां और अन्य वन्य जीव उत्पादों पर प्रतिबन्ध लगाया गया है।

3. राष्ट्रीय उद्यानों और जीव क्षेत्रों के कोर जोन में मानवीय कार्यों का निषेध है।

4. वन्य जीवों को मानव की सुरक्षा के लिये उतनी देर तक गोली मारने की सख्त मनाही है जब तक नियुक्त अधिकारियों द्वारा उसको मनुष्य के लिये खतरनाक करार देकर उसकी मंजूरी न दी गई हो।

5. वैज्ञानिक भू-वैज्ञानिक और दवाई युक्त दुर्लभ पौधों को उखाड़ना, उठाना और बेचना मना किया गया है।

6. किसी अभय वन के 10 किलोमीटर घेरे में हथियारों का लाईसेंस जारी नहीं किया जायेगा।

7. वन जीव अपराधों के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले सभी हथियार, साधन और उपकरण सरकारी सम्पति होंगे।

इन उपरोक्त नियमों का परिणाम यह हुआ–

स्वतन्त्रता (Liberation)–(1) वन्य जीव का सख्ताई से पालन करने का परिणाम यह हुआ जो जानवर संकटमय स्थिति में थे उनकी ज़नसंख्या में वृद्धि हुई।

2. भू-वैज्ञानिक सन्तुलन बहुत से साधनों पर सही हुआ है क्योंकि मानवी क्रियाओं को कानून के अधीन सीमित कर दिया गया।

3. मन बहलाने वाले अर्थात् मनोरंजन करने वाले स्थानों और पर्यटक स्थान खोल दिये गये हैं।

सीमाएं (Limitations)–इसकी कुछ कमियां या सीमाएं भी हैं जो निम्न हैं-

(1) एक क्षेत्र में दो नस्लों की सुरक्षा पर अधिक बल दिया गया है।

(2) वन जीव को सुरक्षित स्थान देने हेतु बहुत से मानवीय प्राणियों को उजड़ना पड़ा है।

(3) खतरा पैदा करने वाले पौधों की तरफ कम ध्यान दिया जाता है।

(4) परम्परागत दवाईयों के पर्दे के पीछे पौधों की नस्लों का शोषण जारी है क्योंकि दवाईयों सम्बन्धी महत्व वाले अर्थात् औषधीय पौधों को उगाया नहीं जाता है।

(5) किसी भी जानवर को भयानक या मानवों को मार कर खाने वाला जानवर घोषित करने पर वन्य अफसरों को पर्याप्त समय लगता है। इस समय की अवधि में

जानवर के आतंक से घरेलू जानकर भयभीत रहते हैं और कुछ भयंकर जानवर का शिकार भी हो जाते हैं। ऐसे जानवरों के विरुद्ध कानूनी कारवाई की प्रक्रिया बहुत लम्बी है।

पानी बचाव और प्रदूषण नियन्त्रित अधिनियम 1974 संशोधन 1988 (Water prevention and pollution control Act 1974 Amended 1988)–जब से औद्योगिकरण और नगरीकरण का प्रचलन बढ़ा है तब से पानी भी गति के साथ प्रदूषित होना लगा है। यह परिवर्तन का रुझान बहुत खतरनाक साबित हो रहा है। इस ओर भी प्रान्तीय सरकारों द्वारा प्रयास किये गये हैं जो निम्न हैं–

(1) उड़ीसा दरिया प्रदूषण बचाव अधिनियम 1953

(2) दरियाई बोर्ड अधिनियम 1956

(3) महाराष्ट्र पानी प्रदूषण बचाव अधिनियम।

(4) मर्चेण्ट जहाज रानी अधिनियम 1970

संविधान की धारा 252 (1) के आधीन पानी अधिनियम लागू किया गया। इसके अधीन–

(1) पानी मे प्रदूषकों की मिलावट।

(2) पानी की बनावट रासायनिक या जीव वैज्ञानिक गुणों में परिवर्तन।

(3) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सीवरेज, औद्योगिक विकास या कोई पानी की अन्य किसी भी प्रकार की मिलावट।

(4) किसी भी प्रकार का विकास जो पानी को सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिये नुकसान देह बनाता है, की ओर ध्यान दिलाया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय और प्रान्तीय स्तर पर बोर्ड स्थापित की बात को कार्यान्वित करने के लिये कहा गया है।

केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (Central pollution control board) इस बोर्ड की नियुक्तियां करने में केन्द्रीय सरकार सक्षम होती है। इसका पूरे समय के लिये चेयरमैन (Chairman) वातावरण सुरक्षा विशेषज्ञ का अनुपालक होता है। इसमें पांच केन्द्र सरकार के अधिकारी होते हैं और पांच ही राज्य सरकार के अधिकारी होते हैं। इसमें तीन सदस्य कृषि व्यापार, मछली पालन और उद्योग से सम्बन्धित दो प्रतिनिधि केन्द्र के अधीन चलती कम्पनियों का कार्पोरेशन में होते हैं और एक पूरे समय के लिये सदस्य सचिव होता है जो वातावरण सुरक्षा उपायों का विशेषज्ञ होता है। 1988 के संशोधन के अनुसार इनका नाम केन्द्रीय नियन्त्रण बोर्ड रखा गया। इस बोर्ड के निम्न कार्य हैं–

(1) यह बोर्ड केन्द्र सरकार को पानी प्रदूषण से सम्बन्धित मामलों के बारे में राय देता है।

(2) राज्य स्तरीय बोर्डों और उद्योग को तकनीकी नेतृत्व और सहायता देता है।

(3) पानी प्रदूषण के बारे में अध्ययन और खोज करवाता है।

(4) पानी प्रदूषण के क्षेत्र में प्रशिक्षण आयोजित करता है।

(5) यह बोर्ड लोगों को पानी के प्रदूषण से बचाने, रोकने, इसका प्रभाव व और कारण ढूंढने के लिये जन संचार मामलों को जुटाता है।

(6) पानी की गुणवत्ता निर्धारित करता है।

(7) नमूनों की जांच के लिए प्रयोगशालाएं बनाता है।

(8) केन्द्रीय शासित प्रदेशों में प्रदूषण की समीक्षा करता है और राज्य स्तरीय बो के कार्य देख और परख कर तालमेल बिठाता है।

राज्य स्तरीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड (State level pollution contr Board)–इस बोर्ड में सारी नियुक्तियां राज्य सरकार के द्वारा होती है। इसमें पूरे स अथवा अंशकालिक प्रबन्धकीय क्षेत्र में अनुभव प्राप्त चेयरमैन होता है। इसमें अधिक अधिक पांच सरकारी अधिकारी होते हैं और पांच स्थानीय अधिकारी होते है। तीन दफतरी कृषि, मछली पालन उद्योग के विशेष सदस्य होते हैं। सदस्य सचिव के अतिरि बोर्ड सदस्यों का तीन वर्ष का कार्यकाल होता है। जो पुन: प्रारम्भ किया जा सकता है स 1988 के संशोधन के पश्चात् इसका नाम राज्य प्रदूषण रोकथाम बोर्ड रखा गया।

इस बोर्ड के कार्य निम्न हैं–

(1) पानी प्रदूषण के मामले तथा ऐसा उद्योग जो पानी प्रदूषित करता है इसके बा में सुझाव देना।

(2) पानी को प्रदूषित होने से बचाने के लिए, रोकने के लिये या कम करने के लि योजनाएं बनाना।

(3) पानी को प्रदूषित होने से रोकने के लिये जानकारी एकत्रित करना।

(4) पानी प्रदूषण को रोकने और सुरक्षा में लगे व्यक्तियों को प्रशिक्षण देना।

(5) पानी की वार्षिक गुणवत्ता और विकास स्तर को निर्धारित करना।

(6) कम खर्च और विश्वास योग्य संशोधन को लागू करने और सीवरेज व औद्योगिक विकास का स्तर निर्धारित करना।

(7) सीवरेज और निकासी मादे के निकास या प्रयोग के तरीके ढूंढने तथा उनको लागू करना।

राज्य स्तरीय बोर्ड के अधिकार
[Powers of State Board]

(1) प्रत्येक औद्योगिक इकाई को अपने विकास मादे को कुएं या नहर/खाई में डालने के लिये बोर्ड से सुझाव अवश्य लेना चाहिए और बोर्ड अपनी शर्तें लगा सकता है।

(2) बोर्ड उद्योग से पानी के निकास और समूचे ढांचे के बारे में कोई भी जानकारी मांग सकता है।

(3) बोर्ड किसी भी नगर, खाई या कुएं में से औद्योगिक निकास के नमूने भर सकता है।

(4) बोर्ड किसी क्षेत्र में प्रवेश करके उनका प्लांट, रिकार्ड, रजिस्टर, आदि की जांच कर सकता है।

(5) किसी संकट काल या दुर्घटना में बोर्ड औपचारिक निर्णय ले सकता है।

(6) सामान्य रूप से किसी भी गलती का पता लगने पर बोर्ड कानून के समक्ष आवेदन पत्र देता है।

(7) संशोधित अधिनियम अनुसार किसी कार्यालय, अधिकारी या व्यक्ति को काम बन्द करने के लिये, संशोधन करने के लिये या निषेध करने के लिये दिशा-निर्देश दे सकता है।

(8) गलती करने वालों (दोषी) को दण्ड दिलवाना बोर्ड की मौलिक जिम्मेवारी है परन्तु एक सामान्य नागरिक भी बोर्ड को 60 दिन का नोटकि देकर कानून के समक्ष आवेदन कर सकता है।

हवा बचाव और प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड अधिनियम 1981 संशोधन 1987 (Air prevention and control of pollution Act-1981, Amended 1987)- बंगाल स्मोक न्यूएसैंस एक्ट 1905, बॉम्बे स्मोक न्यूएसैंस एक्ट 1912 और गुजरात स्मोक न्यूएसैंस एक्ट 1963 के कारण यह अधिनियम लागू हुआ। संविधान की धारा 253 के अन्तर्गत हवा प्रदूषण रोकने और बढ़ाने के लिये एक एक्ट लागू हुआ। वहां के लिये भी केन्द्रीय और राज्य स्तरीय बोर्ड के अधिकार प्रयोग करता है अथवा स्तरीय बोर्ड को अधिकार देता है। बोर्ड के तीन महीनों में कम से कम एक बैठक होती है। चेयरमैन अपनी इच्छा से भी बैठक बुला सकता है। इन बोर्डों का गठन पानी प्रदूषण के बारे में इन बोर्डों की तरह ही होता है।

इन केन्द्रीय बोर्ड के कार्य निम्न हैं-

(1) केन्द्रीय और राज्य सरकार को हवा गुणवत्ता एवं हवा प्रदूषण से जुड़े मामलों के बारे में सलाह देना।

(2) राज्य बोर्ड और उद्योग को तकनीकी सहायता प्रदान करना।

(3) वायु प्रदूषण को बचाने, कम करने और रोकने के लिये योजना बनाना।

(4) वायु प्रदूषण के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के लिये प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना।

(5) जन साधारण में चेतना लाने के लिये जनसंचार माध्यमों की सेवा लेना।

(6) वायु गुणवत्ता के स्तर निर्धारित करना।

(7) नमूनों के सर्वेक्षण के लिये प्रयोगशालाएं स्थापित करना।

(8) वायु प्रदूषण से सम्बन्धित तकनीकी और आंकड़ों का विवरण एकत्रित

राज्य स्तरीय बोर्ड के कार्य इस प्रकार है–

(1) राज्य सरकार को किसी स्थान और स्थानों को वायु प्रदूषण क्षेत्र घोषि की सिफारिश करना।

(2) हवा प्रदूषण को रोकने, कम करने या बचाने के लिये योजना बनाना।

(3) हवा प्रदूषण के कारण, बचाव और रोकने सम्बन्धी जानकारी प्राप्त क

(4) इस क्षेत्र में काम कर रहे लोगों को केन्द्रीय बोर्ड से प्रशिक्षण दिलवान

(5) केन्द्रीय बोर्ड से विचार-विमर्श करके हवा प्रदूषण के स्तर निर्धारित क

(6) वायु बचाव क्षेत्र में समय-समय पर जांच करना और प्रदूषण कम क कदम उठाना।

शक्तियां (Powers)–उपरोक्त दिये गये कार्यों के साथ-साथ राज्य स्तरीय के पास बहुत से अधिकार हैं। यह राज्य सरकार को दिशा निर्देश दे सकता है। औद्य इकाईयां को विकास हेतु प्रोत्साहन देता है और ईंधन के बारे में हस्तक्षेप कर सक औद्योगिक इकाईयों को शर्तें मानने के लिये मज़बूर कर सकता है। किसी इकाई में करके जांच पड़ताल कर सकता है। हवा के नमूनों को भर सकता है।

मोटर कार अधिनियम 1938, संशोधन 1988 [Motarcar vehicle Act-1938, Amended 1988]

1. मोटरकार आवश्यक रूप से (VRDE)– अहमद नगर, (CMTII) पूणे (A या दुबई से पास हुई होनी चाहिए।

2. भारतीय स्टैण्ड ब्यूरो द्वारा निर्धारित सभी पुर्जे मोटरकार में लगे हो।

3. मोटरकार मे पूरे सुरक्षा स्तर हों।

4. मोटरकार में टियूनमा तथा कैटालिटक कनवर्टर लगे हों।

5. हर मोटरकार तीन से छः महीनों के मध्य प्रदूषण परीक्षण करवाकर प्रमाण-पत्र लेगा।

6. मोटरकार को तैयार करने वाला यह सुनिश्चित करे कि मोटर कार प्रदूषण है।

7. नये धुआं निकासी स्तर अप्रैल 1995 और अप्रैल 2000 से लागू समझे ज

8. भविष्य में बनने वाले इंजन लैड युक्त पैट्रोल वाले हों।

9. हर एक वाहन को पंजीकृत करने से पहले दो वर्ष के लिये और फिर प्रतिवर्ष मान्यता प्रमाण मत्र लेना जरूरी है।

10. ट्रांसपोर्ट वाहन 10 वर्ष और अन्य वाहन 16 वर्ष तक ही चल सकते हैं।

11. वाहन का चालक कम से कम मैट्रिक पढ़ा हो।

12. खतरनाक वस्तुएं ढ़ोने वाले वाहनों पर लेबल लगे हुए हों।

13. दुर्घटना की सूरत में चालक मौलिक बातें जानता हो।

14. मोटरकार अधिनियम उत्पादकों पर कुछ शर्तें थोपता है। जिससे वे नमूने में सुधार करें।

15. मोटर कार मालिक को वाहन ठीक अवस्था में रखने के लिये कहा जाता है। विशेषकर शहरी इलाकों में वाहन हवा में प्रदूषण नहीं लायेगा जबकि मोटर से निकलने वाला धुआं कुल मिलाकर प्रदूषण का 60 या 70 प्रतिशत बनता है।

सीमाएं (Limitations)–

1. प्रदूषण नियन्त्रण के अधीन प्रमाण पत्र लेने की आवश्कताओं के बावजूद बहुत कम वाहन इनका पालन करते हैं।

2. छोटे शहरों में प्रदूषण की मात्रा को मापने की सुविधा प्राप्त नहीं है।

3. पुराने वाहनों को जल्द से त्यागा नहीं जाता है।

4. अलग पुर्जों का व्यापार–नकली चीज़ों जो कि असली के पूर्जों के साथ मिलती-जुलती होती है, खूब बेची जाती है।

वातावरण बचाओ अधिनियम 1986 (Environment Protection Act 1986)–यह अधिनियम वातावरण और वातावरण के सुधार से सम्बन्धित है। इस अधिनियम के अन्तर्गत पानी, हवा, भूमि और इन से सम्बन्धित सभी मामले आते हैं, जो धरती पर बसने वाले जीवों के प्रसंग में महत्व रखते हैं। इस अधिनियम में प्रदूषण को ऐसे परिभाषित किया गया है कि वातावरण में गैस, तरल अथवा ठोस का मिश्रण बढ़ रहा है।

इस अधिनियम को लागू करने के लिये कोई अलग से दफतर नहीं है। केन्द्र सरकार किसी भी अधिकारी को नियुक्त कर देती है। इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार के कुछ अधिकार राज्य सरकार को दिये हुए हैं। इसके कार्य निम्न हैं–

1. पर्यावरण प्रदूषण को बचाने, रोकने और कम करने के लिये योजना बनाना और फिर उसे लागू करना।

2. इसके अन्तर्गत विभिन्न अधिकारियों के मध्य तालमेल पैदा करना है।

3. खोज और जांच करवाना।

4. जानकारी एकत्रित करना।

सल्फर डाईआक्साइड, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन डाइ-आकसाइड आयोडीन, अमोनिया और कार्बन मोनोआक्साईड।

आक्सीजन और कार्बन डाईआक्साइड पौधों और जीवाणुओं एवं जानवरों की आन्तरिक जीवन क्रियाओं के लिये विवादस्पद गैसों के अन्तर्गत आती हैं। ओज़ोन आक्सीजन के भिन्न-भिन्न कणों से बनती है। जब एक आक्सीजन अणु दो आक्सीजन अणुओं में टूटता है और ऐसा परमाणु किसी आक्सीजन अणु में मिल जाता है तब ओज़ोन बनती है।

पृथ्वी के जीव धारियों और पेड़-पौधों के लिये सौर ऊर्जा के बचाव के लिए ओज़ोन रक्षा कवच का कार्य करती है। वैज्ञानिकों ने अपनी शोधों के आधार पर यह मालूम किया है कि धीरे-धीरे ओज़ोन में कमी होती जा रही है। अगर 2% ओज़ोन के कम होने से एक डिग्री तापमान की वृद्धि हो जाती है। वर्तमान में ओज़ोन की कमी के कारण संकट ने जन्म ले लिया है क्योंकि ओज़ोन ही जीवधारियों की जीवन सुरक्षा के लिये रामबाण का कार्य करती है या हम यूं भी कह सकते हैं कि सौ दवाओं की एक दवा और वो भी अचूक दवा। आक्सीजन गैस ही ओज़ोन में बदलती है और वायुमण्डल में इसकी मोटी परत बन जाती है। यह पृथ्वी के वायु मण्डल में चारों ओर फैली हुई है जो सूर्य के प्रकाश एवं उज के लिए छलनी का कार्य करती है। ओज़ोन गैस की परत सूर्य की किरणों का शोषण क पृथ्वी पर मानव जीव, अन्य जीवधारियों एवं वनस्पति की सुरक्षा करती है।

वैज्ञानिकों ने अपनी खोज के आधार पर ओज़ोन गैस के कम होने के निम्न कारण बतायें हैं जो मुख्य हैं-

(1) ध्रुवीय चक्रवात।

(2) ज्वाला मुखी विस्फोट से फैली क्लोरीन गैस।

(3) परमाणु बमों के विस्फोट के परिणाम स्वरूप वातावरण में फैली गैस।

(4) वायुमण्डल में नाइट्रोजन आक्साईड की आक्साईड की अधिकता।

(5) परमाणु केन्द्रों से रेडियो धर्मी विकीरण।

(6) मनुष्य द्वारा फलोरो कार्बन (सी.एफ.सी.) यौगिक का निर्माण।

मनुष्य द्वारा निर्मित यौगिक पदार्थ का विघटन नही होता है और जब यह पद समताप मण्डल में पहुंचता है तो यह ओज़ोन पर अपनी क्रिया करके उसे कम करता क्लोरीन गैस और उसके परमाणु भी ओजोन परत पर कुप्रभाव (विपरीत) डालते हैं मोनोआक्साईड में परिवर्तित हो जाते हैं। कलोरीन गैस का एक परमाणु ओज़ोन गैस एक लाख अणुओं को नष्ट करने में समर्थ होता है। इससे ओज़ोन गैस की परत में सु होता है। वैज्ञानिकों ने सन् 1984 में दक्षिण ध्रुव के ऊपर ओज़ोन गैस की परत में कि.मीटर व्यास का सुराख (छिद्र) का पता लगा चुके हैं और वर्तमान में यह आस्ट्रेलि

की ओर अग्रसर है जिसके परिणाम स्वरूप त्वचा कैंसर के रोग बढ़ते जा रहे हैं और वायुमण्डल के तापमान में वृद्धि होती जा रही है। ध्रुवीय चक्रवात से ओज़ोन गैस की परत प्रभावित होती है। दक्षिणी ध्रुव के चक्रवात से ओज़ोन गैस की परत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है दक्षिण ध्रुव के चक्रवात देर तक रहने के कारण ओज़ोन में सुराख बनाते हैं।

इस दृष्टि से देखा जाये तो हमारा भारत देश भाग्यशाली है और भारत के ऊपर ओज़ोन गैस की परत पूरी तरह से सुरक्षित है। इसका कारण है कि भारत के भू-भाग के ऊपर ओज़ोन गैस की परत की मोटाई उन देशों की अपेक्षा तीन गुणा अधिक मोटाई है जिन देशों में सुराख मिलने लगे हैं। भारत में ओज़ोन स्तर 240 से 350 डाब्सन यूनिट के मध्य (बीच) रहता है जबकि यह विश्व के अन्य देशों के ऊपर ओज़ोन स्तर 110 से 115 डाब्सन के बीच रहता है। एक डाब्सन इकाई 70 मि०मी० पारा दबाव गैस के बराबर होती है। सी०एफ०सी० के उत्पादन के परिणाम स्वरूप विश्व की चिन्ता और बढ़ गई है क्योंकि ओज़ोन परत पर इसका गहन प्रभाव पड़ने लगता है। इस समस्या के चलते विश्व में जागृति आई है और इसके समाधान हेतु युद्ध स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं। इस बात की आशा भी प्रकट की जा रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के चलते भविष्य में सी.एस.सी. का उपयोग 60 तक कम हो जाएगा।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

ओज़ोन परत की समाप्ति पर टिप्पणी लिखिए।
(Write short note on depletion of ozone layer.)

❑

(3) ग्रीन हाऊस प्रभाव (हरित भवन प्रभाव) या विश्व तापीकरण

[GREEN HOUSE EFFECT OR GLOBAL WARMING]

इस शब्द प्रयोग सबसे पहले जे. फेरियर के द्वारा 1927 में किया गया था। इसे कार्बन डाईक्साइड और पर्यावरण प्रभाव के नाम से भी जानते हैं। ग्रीन हाउस प्रभाव से तात्पर्य है कि कार्बन डाईआक्सइड की वायु मण्डल में वृद्धि होने पर पृथ्वी के तापमान में भी वृद्धि होती है क्योंकि इसके प्रभाव से गैस सौर्य उर्जा एवं किरण है शोषित होती है। ऐसा होने से पृथ्वी का तापमान बढ़ता है जिसके कारण हरित भवन (Green House) प्रभावित होते हैं।

ग्रीन हाउस प्रभाव से सम्बन्धित एक इस प्रकार की विचार धारा यह भी है कि यह धरती के लिये लाभपद्र है परन्तु यह धारणा सही नहीं है। इससे संसार के बड़े क्षेत्रों में वायु मण्डलीय परिवर्तन होंगे और कुछ क्षेत्रों की वार्षिक वर्षा दर में 30% की कमी होगी इसके परिणाम स्वरूप कृषि, खुराक आपूर्ति मिट्टी की नमी पीने के पानी की आपूर्ति प्रभावित होगी। ब्रिटेन की जल संस्था का विश्वास है कि ब्रिटेन के जल भण्डारों में 40% कमी आ जायेगी। जिससे आगे चलकर पानी को बहुत कमी हो जायेगी। परन्तु कुछ क्षेत्रों में इसके विपरीत तापमान से वार्षिक वर्षा 60% बढ़ जायेगी जिसके परिणामस्वरूप तूफान कृषि में क्षति, बाढ़ और जन स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ जायेंगी।

ग्रीन भवन प्रभाव हेतु जब महासागरों के तापमान में वृद्धि होगी तो आर्कटिक की बर्फ पिघलेगी और इससे फिर.विश्व के सागरों में पानी की वृद्धि हो जायेगी। इससे धरती के तापमान में भी वृद्धि होती है इसके प्रभाव से भविष्य में दुनिया के शरणार्थियों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि होगी क्योंकि लोग भूख, सूखा बाढ़, कृषि क्षति जैसी समस्याओं से पीड़ित हो जायेंगे और शरणार्थियों बनने के अतिरिक्त उनके पास कोई और विकल्प नहीं होगा। इनको जलवायु शरणार्थी के नाम से पुकारा जायेगा। संयुक्त राष्ट्र ने पहले से ही इस समस्या पर गम्भीरता से विचार करना प्रारम्भ कर दिया है।

आज तक भी अर्थात् वर्तमान स्थिति का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि ग्रीन हाउस (Green House) प्रभाव से बहुत क्षति हुई है। उदाहरणतया 1989 की रिपोर्ट के अनुसार क्षति विवरण निम्न है–

(1) अमेरिका देश के कृषि विभाग का कहना है कि देश में बहुत सारे ग्रामीण क्षेत्र सूखे की चपेट में हैं।

(2) लगभग आधी फसलें तबाह के कगार पर हैं।

(3) लगभग 2000 किश्ती चलाने वाले दरिया के किनारे बेकारी का सामना कर रहे हैं।

(4) कम्प्यूटर द्वारा दिये गए आंकड़ों से पता चलता है कि 1988 के पहले पांच महीनों का तापमान गत 130 वर्षों से सबसे अधिक देखा गया। स्टीवर्ड बोयले और जोहन अरडिल ने अपनी पुस्तक दी ग्रीन हाऊस इफैक्ट (The Green House Effect) 1989 में बताया है कि 1988 में क्या परिणाम रहे जो निम्न हैं–

(1) बंगला देश का तीन चौथाई भाग बाढ़ पीड़ित रहा जिसके परिणाम स्वरूप एक चौथाई आबादी बेघर हो गई। 3000 लोगों की मृत्यु मानसून बाढ़ों से हुई और 5000 लोग साईकलोन की तबाही से मरे।

(2) चीन के अनहुई राज्य में 70,000 कुएं सूखे के बराबर हैं और 1400 लोग बाढ़ और साईकलोन से मरे।

इसी प्रकार दुनियां के और भी ऐसे देश हैं जो ग्रीन हाऊस प्रभाव से प्रभावित हुए हैं।

हरित भवन प्रभाव का समाधान (The solution of green house Effect)– इस समस्या समाधान हेतु विश्व स्तर पर अनेक प्रयास किये जा रहे हैं लेकिन अभी तक इस समस्या का समाधान नहीं किया जा सका है। इसका कारण है अत्यधिक प्रदूषण स्रोतों का होना जैसे–कोयला, लकड़ी, यातायात, बिजली, तेल, जंगलों की कटाई आदि सभी प्रदूषण के कारण हैं। यह समस्या इतनी घातक और विश्व व्यापी है कि कोई भी एक देश विश्व तापकरण अथवा ग्रीन हाऊस प्रभाव की समस्या का हल नहीं कर सकता। हां विश्व के सभी देश सामूहिक रूप से प्रयास करें तो इसका कुछ समाधान हो सकता है। इसके लिये सर्वप्रथम आवश्कता इस बात की है कि विश्व कार्बन विकास को नियन्त्रित किया जाये। ग्रीन हाऊस प्रभाव वास्तविक रूप से औद्योगिकरण और विकसित देशों की देन है। ग्रीन हाऊस प्रभाव का समाधान हमारे रहन–सहन के सुख–सुविधाओं में निहित हैं। और इसके लिये पश्चिमी देशों को रहन–सहन के लिये पुन विचार करना बहुत आवश्यक है।

इस समस्या का समाधान पूरी तरह नहीं किया जा सकता क्योंकि यह बहुत महंगा है और इसलिए हमें अपने सुखों की सुविधाओं का भी त्याग करना पड़ेगा। लेकिन हम सभी मिलकर इतना तो कर ही सकते हैं कि उन पदार्थों के उत्पादन के नियन्त्रित किया जाये जो विश्व तापीकरण की वृद्धि करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

ग्रीन हाऊस प्रभाव पर टिप्पणी लिखिए।
(Write short note on green house effect global warming.) ❑

Unit–VI

पर्यावरण प्रदूषण

[Environmental Pollution]

1. भूमि प्रदूषण
   (Soil Pollution)
2. जल प्रदूषण
   (Water Pollution)
3. वायु प्रदूषण
   (Air Pollution)
4. ध्वनि प्रदूषण
   (Noise Pollution)

पर्यावरण प्रदूषण
[ENVIRONMENT POLLUTION]

मनुष्य ने जब से प्रकृति पर विजय पाने का प्रयास किया है तभी से मनुष्य और उसके पर्यावरण सम्बन्धों में दरार पड़ने लगी और प्राकृतिक स्त्रोतों (संसाधनों) के अत्यधिक उपयोग से परिस्थिति की सन्तुलन भी बिगड़ गया और इसके परिणामस्वरूप जैविक अजैविक पक्षों में असन्तुलन पैदा हो गया। मनुष्य ने अपने कार्यों से ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी हैं। जिससे उसका स्वयं का जीवन तथा अन्य जीवों का जीवन जीना कठिन हो गया है। आज व्यक्ति व जीवों के लिये वायु में सांस लेना कठिन है गया है, पानी पीने योग्य नहीं रह गया तथा भूमि कृषि के योग्य नहीं रह गई है।

आज भारत की स्थिति औद्योगिक दृष्टि से विश्व के दश राष्ट्रों में से एक है। भारत के मुख्य उद्योग-धातु से सम्बन्धित रासायानिक पदार्थों, रासायनिक खादों, पैट्रोलियम तथा खाद्यान आदि हैं। इन उद्योगों ने हमें पेस्टीसाइड, डिटर्जेन्ट, प्लास्टिकस, घोलक ईंधन, पेन्ट रंग तथा खाद्यान्न आदि दिये हैं। परमाणु ऊर्जा के विकास से रेडियो धर्मी की जीव मण्डल में वृद्धि हुई है। इसके अलावा कारखानों एवं फैक्ट्रियों से अनेक प्रकार के पदार्थ निकले हैं जैंसे धुआं, गन्दा पानी आदि जिन्होंने वायुमण्डल को प्रदूषित किया है।

पिछले तीस वर्षों से भारत में विकास अत्यन्त तीव्र गति से हुआ है और विकास के साथ-साथ वातावरण में भूमि, जल, वायु एवं ध्वनि प्रदूषण भी हुआ है। आज समस्त विश्व के राष्ट्र प्रदूषण की समस्या के कारण परेशान है इसलिए प्रदूषण की समस्या को रोकना एक महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि यदि पर्यावरण विकार ग्रस्त हो जाये तो वह मानवता के पोषण एवं संरक्षण में वांछित भूमिका नहीं निभा सकता। ऐसा पर्यावरण मनुष्य के लिये विनाश और संकट का कारण बन जाता है। विकसित देशों में प्राकृतिक स्त्रोतों और संसाधनों के अधिक से अधिक उपयोग के लिए होड़ लगी हुई है जिससे पर्यावरण प्रदूषित हुआ है।

उन सभी कारकों एवं घटकों की गणना करना सम्भव नहीं जिनके कारण भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण प्रदूषित हुआ है। हमारे जीवन के प्रत्येक कार्यों से धीरे-धीरे प्रदूषण होता है। इनसे छुटकारा पाना कठिन हो गया है।

भौतिक पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य कारकों का नीचे वर्णन किया जाता है–

1. भूमि या मिट्टी प्रदूषण (Land or Soil Pollution)
2. जल प्रदूषण (Water Pollution)
3. वायु प्रदूषण (Air Pollution)
4. ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

1. भूमि या मिट्टी प्रदूषण [Land or Soil Pollution]

प्रदूषण मनुष्य के जीवन के लिए भूमि महत्वपूर्ण है भूमि ही मनुष्य को रहने के लिए आधार प्रदान करती है। भूमि से खेत, उद्यान, घास के मैदान तथा वन प्राप्त होते हैं। हमें भूमि से कई प्रकार की सुविधाएं मिलती हैं। आज मिट्टी का प्रदूषण हो रहा है। आंधियां, बाढ़ों, तथा कृषि के अनुचित साधनों (रासायनिक खाद, रासायनिक पदार्थों एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग) के कारण भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होती जा रही है। मिट्टी की गुणवत्ता में प्रतिदिन गिरावट आती जा रही है। मिट्टी वातावरण भूमि-संरक्षण से होते हैं इससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। मिट्टी में आर्द्रता तथा ह्यूमस पदार्थ कम हो रहे हैं जिससे तापमान में उतार-चढ़ाव अधिक रहता है।

भूमि प्रदूषण के कारण [Causes of Land Pollution]

भूमि या मिट्टी प्रदूषण के निम्नलिखित कारण हैं–

1. रसायन (Chemicals)–उद्योगों के कूड़े में बहुत से रसायन के तत्व होते हैं जो हवा के द्वारा मिट्टी में पहुंच जाते हैं और मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को कम करते हैं।

2. कीटनाशक (Insectecides)–कृषि में कीटनाशक दवाइयों एवं रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता है। ये कीटनाशक भूमि के अन्दर विद्यामान छोटे-छोटे जीवों को मार डालते हैं और भूमि के ढांचे को बदल देते हैं। इससे भूमि की उर्वरक शक्ति कम हो जाती है। ये कीट नाशक तत्व अन्नाज के माध्यम से मनुष्य के शरीर में पहुंच कर उसके स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

3. उर्वरक (Fertilzers)–उर्वरकों के प्रयोग से भूमि की गुणवत्ता कम हो जाती है।

4. वन काटना (Deforestation)–वनों के काटने से भूमि की ऊपरी सतह नदी तथा वर्षा के जल अथवा बाढ़ से बह जाती है। इसी कारण कृषि तथा उद्योगों को भंयकर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भूमि की उर्वरता कम होने से धरती रेतीली हो जाती है। भारत की 'घर' मरुस्थली में हर वर्ष लगभग 12,000 हैक्टेयर उपजाऊ भूमि मिल जाती है।

5. जलग्रस्त होना (Water Logging)–भूमि के निचले क्षेत्रों में पानी इकट्ठा हो जाता है और भूमि में लवणता पैदा हो जाती है। इससे भूमि प्रदूषित हो जाती है और कृषि के योग्य नहीं रहती।

6. भूमि के तल में पानी की कमी (Shortage of water in Land)–भूमि के तल में पानी की कमी होने से भूमि प्रदूषित हो जाती है और उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। आज भूमि के तल में पानी की कमी हो रही है।

7. विस्फोट एवं प्रयोग (Explosions and Experiments)–आणविक शक्ति, बम आदि के प्रयोग से प्रदूषण हो रहा है।

8. जल-प्रदूषण (Water pollution)–जल-प्रदूषण के कारण भूमि में लवणता उत्पन्न होती है जो कृषि के लिए हानिकारक है।

9. अत्यधिक आबादी (Over Pollution)–अत्यधिक आबादी से भी भूमि प्रदूषण होता है। कई कृषि के क्षेत्र, घास के मैदान एवं वनों को आवासीय क्षेत्रों में परिवर्तित किया जा रहा है। भवनों एवं कारखानों का निर्माण हो रहा है। भवेशी तथा अन्य जानवरों द्वारा चरने हेतु भूमि क्षेत्र में चारागाहों का विकास हो रहा है।

10. ठोस कूड़ा-करकट (Solid Wastes)–मनुष्य अपने घर का विविध प्रकार का कूड़ा-करकट फेंक कर धरती को प्रदूषित कर रहा है। इस ठोस कूड़े में सब्जियों एवं फलों के छिलके, कागज, रद्दी कपड़े, बची खुची खाने की चीजें, प्लास्टिक की चीजें टूटे डिब्बे, कांच का टूटा सामान आदि शामिल हैं। आर्गेनिक एवं ठोस वस्तुओं का क्षय होता है। जिससे वायु का प्रदूषण होता है और जिन वस्तुओं का क्षय नहीं होता उससे भूमि का प्रदूषण होता है। ऐसे ठोस कूड़े को ठिकाने लगाना एक समस्या है। यदि जलाएं तो वायु प्रदूषण होता है और नहीं जलाएं तो पर्यावरण गन्दा होता है।

भूमि प्रदूषण के प्रभाव
[Effects of Land Pollution]

भूमि-प्रदूषण का प्रभाव मानव जाति पशुओं तथा पौधों पर दुष्प्रभाव होता है। मिट्टी की गुणवत्ता कम होती है। भूमि प्रदूषण के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं-

(1) भू-क्षरण (Erosion of soil)

(2) भूमि की हानि

(3) उपजाऊ क्षमता में कमी।

(4) खेतों, बगीचों तथा घास के मैदानों में कमी।

(5) भूमि की शुष्कता के कारण वातावरण में असन्तुलन।

(6) कुओं के पानी का प्रदूषण।

(7) पीने के पानी तथा कृषि के लिए पानी की कमी।

भूमि अथवा मिट्टी प्रदूषण की रोकथाम [Prevention of Land or Soil Pollution]

मनुष्य, पशुओं तथा वनस्पतियों का जीवन भूमि पर निर्भर होता है इसलिए प्रदूषण पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। मनुष्यों तथा पशुओं को सभी आवश्यक भूमि से ही प्राप्त होती है। अत: भूमि की गुणवता को बनाये रखना आवश्यक है। प्रदूषण को रोकने के लिए यदि निम्नलिखित उपाय अपनाये जाये तो निम्नलिखित अपनाये जाये तो इस कार्य में सफलता मिल सकती है–

1. चेतनता (Awakening)–लोगों में भूमि के उचित प्रयोग के प्रति चेत उत्पन्न हो जाये।

2. वृक्षारोपण (Plantation)–वृक्षारोपण अधिक से अधिक किये जाएं।

3. कृषि की नई तकनीकें (New techniques of Agriclture)–कृषि में तकनीकों का प्रयोग किया जाये। किसानों को भूमि प्रदूषण की जानकारी दी जाये जिससे रासायनिक पदार्थों का उपयोग कृषि में सावधानी से करें। डी.डी.टी. का उपयोग सीमित मात्रा में किया जाये।

4. भू-रक्षण के लिये प्रयोगशालायें (Laboratories for soil Erosion)–भू क्षरण तथा भूमि में लवणता की समस्याओं के समाधान के लिये प्रयोगशालाओं की स्थापना की जाये तथा भू-क्षरण पर नियन्त्रण किया जाये।

5. अनुचित वन-कटाई नहीं (No undue Deforestaion)–वनों की कटाई रोक लगाई जाये।

6. बाढ़ नियन्त्रण बोर्ड (Flood Control Boards)–बाढ़ नियन्त्रण बोर्ड स्थापित किये जाने चाहिए।

7. पक्की नहरें (Cementing the Canals)–नहरें पक्की बनाई जाये।

8. बांध (Dams)–नदियों पर बांध बनाये जायें।

9. मानसिक तैयारी (Mental Preparedness)–लोगों को स्वस्त पर्यावरण के लिए मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए।

10. ठोस कूड़े का पुनर्शोधन (Recycligng of Solid Waste)–जगह-जगह भूमि पर पड़े ठोक कूड़े को एकत्र कर उसका पुनर्शोधन करना चाहिए। इससे न केवल खुली धरती के प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलेगी बल्कि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में भी सहायता मिलेगी। इसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(1) **कृषि सम्बन्धी कूड़े**–धान का छिलका, गेहूं का छिलका, गन्ने के छिलके, नारियल के छिलके, रद्दी कागज़ आदि का पुनर्शोधन कर के इनसे साफ़ कागज़ और गत्ता बनाया जा सकता है।

(2) पटसन के कूड़े का पुनर्शोधन कर मोटा गत्ता बनाया जा सकता है।

(3)नीम, महुआ, साल तथा अन्य वृक्षों से साबुन बनाया जा सकता है।

(4) पशुओं के गोबर से गोबर गैस प्लांट लगाया जा सकता है। जिस से खाना पकाने की गैस प्राप्त हो सकती है और इस से बढ़िया खाद भी प्राप्त की जा सकती है।

2. जल प्रदूषण [Water-Pollution]

जल के बिना जीवन सम्भव नहीं हो सकता। जीवन के लिए जल आवश्यक है। जल ही जीवन है। जितने भी जीवधारी (पौधे तथा प्राणी) हैं उन सब की उत्पति जल से ही हुई है और सब जल से ही जीवित है।

जल की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of Water)– जितने भी जीवधारी (प्राणी एवं पौधे) हैं उनकी संरचना में पानी का बड़ा महत्व है। मनुष्य की बनावट में 65 % पानी है। मनुष्य की सम्पूर्ण क्रियाओं में एवं उसकी जीवन की रक्षा के लिए पानी का महत्वपूर्ण योगदान है। जल ही हड्डियों के बीच के जोड़ों को चिकना बनाये रखता है। जिससे वे एक दूसरे से रगड़कर एक दूसरे को हानि न पहुंचावें। टिशू और पेशियों को आपस में चिपकने से रोकता है। शरीर के महत्वपूर्ण अवयव जैसे हृदय, मस्तिष्क, आदि को पानी से बने द्रव का एक कवच संरक्षण प्रदान करता है। इतना ही नहीं यह शरीर के विभिन्न हिस्सों के बीच सम्पर्क बनाए रखता है। यही पोषक तत्व, ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड का वाहक है और शरीर के मलिन पदार्थों को पसीना एवं मल मूत्र के जरिये से बाहर ले जाता है। इसीलिए पानी की कमी मनुष्य के लिये हानिकारक है और पानी के बिना मृत्यु तक भी हो सकती है।

मनुष्य ही नहीं पेड़ों और वनस्पतियों के लिये भी जल अत्यन्त जरूरी है। फल-फूल सब्जी और कोई भी प्रकृति में उत्पन्न होने वाली वस्तु जल के बिना सम्भव नहीं है। वृक्ष मे 40 तक पानी होता है। कुछ जलीय पौधों में तो 90% प्रतिशत तक जल की मात्रा होती है। जैसाफिस समुद्री जीव में 95 प्रतिशत, अण्डे में 75 प्रतिशत और ककड़ी तथा खीरा में 95 प्रतिशत जल की मात्रा होती है। स्वस्थ रहने के लिए जल अधिक पीना चाहिए।

जल के स्त्रोत [Sources of Water]

भूमि पर जल 75 प्रतिशत भाग में है। प्राकृतिक स्त्रोतों में जल का सबसे अधिक महत्व है। जल के प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) महासागर तथा समुद्री जल (Ocean and seas Water)–समुद्र का प
उपयोगी कम होता है क्योंकि वह खारा है।

(2) नदियों का जल (River Water)–समुद्र के जल की अपेक्षा नदी का
उपयोगी है।

(3) वर्षा का जल (Rain Water)

(4) झीलों तथा तालाबों का जल (Lake and tanks Water)

(5) झरनों का जल (Water fall)

(6) कुओं, नलों तथा नलकूपों का जल (Well, Hand Pump and Tube Wate

जल प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा
[Meaning and Definition of water Pollution]

जल में कई बाह्य तत्वों का मिलना जल-प्रदूषण कहलाता है अथवा जल में उसके भौतिक तत्व की तबदीली, जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो, 'जल प्रदषण' कहलाता है। जल में जब दूषित तत्व, विषैले रासायनिक पदार्थ, औद्योगिक या अन्य अपशिष्ट द्रव्य या मल मूत्र का मिश्रण हो जाता है तब जल को प्रदूषित कहा जाता है। प्रदूषित जल गंदे जल का पर्यायवाची है।

"जल में कोई विजातीय पदार्थ जो घुलनशील है और औद्योगिक बेकार पदार्थ पानी में मिलते हैं तब जल प्रदूषण होता है।" (The contamination of water with soluble sewage and industrial waste is called water pollution.)

विश्व स्वास्थ्य संस्थान के अनुसार (World Health Organizations–1966) के अनुसार, "प्राकृतिक तथा अन्य स्त्रोतों के जब विजातीय पानी में मिल जाते हैं और जीव-धारियों तथा वनस्पति के लिए हानिकारक हो जाते हैं क्योंकि ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है जिसके दुष्प्रभाव होते हैं और महामारियां फैलती हैं।" (Foreign materials either from natural and other sources and contaminated with water supplies and may be harmful to life, because of their toxicity, reduction of normal oxygen level of water, aesthetically unsuitable effects and spread of epidemices.)

"जब पानी के भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुण बदल जाते हैं जिसका मनुष्य तथा जल-मण्डल के जीवन पर हानिकारक प्रभाव हो, तब उसे जल-प्रदूषण कहते हैं।" (Water pollution may be defined as alteration in physical, chemical and biological properties of water which may cause harmful effects on human and aquatic life.)

पी० वीवियर (P.Vivier) (1958) के अनुसार, "प्राकृतिक तथा अन्य कारण से पानी की गुणवत्ता बदल जाये जिसके योजन, मानव जीवन, पशुओं के स्वास्थ्य, कृषि मछली-पालन तथा अन्य प्रयासों पर दुष्टप्रभाव को जल-प्रदूषण कहते हैं" (Water pollution is defined as a natural or induced change in the quality of water which renders it unsuitable or dangerous as regards food, human and animal health agriculture fishing or leisure pursuits.)

उपरलिखित परिभाषाओं से जल प्रदूषण के निम्नलिखित प्रभावों का पता चलता है–

(1) पानी की गुणवत्ता में कमी का होना।

(2) भौतिक, रसायनिक तथा जैविक पानी की गुणवत्ता में गिरावट का होना।

(3) पानी के प्रयोग का मनुष्य, वनस्पति एवं जीव जन्तुओं पर दुष्प्रभाव होना।

(4) ज्वालामुखी विस्फोट, भूखलन, भूक्षरण, प्राकृतिक संकट व प्रकोप, भूकम्प, भूचाल तथा बाढ़ आदि के आने से पानी की गुणवत्ता का कम होना।

(5) कृषि का विकास, औद्योगीकरण, रेडियो धर्मी, संयन्त्र, नगरीकरण, जल-विद्युत उत्पादक संयन्त्र, तेल शोधक कारखाने, जनसंख्या विस्फोट से जल प्रदूषित होता है और जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

जल-प्रदूषण के स्त्रोत
[Sources of Water Pollution]

रासायनिक दृष्टि से पानी भी निर्मल एवं स्वच्छ नहीं होता। इसमे कई प्रकार की मलिनताएं शामिल हो जाती है। कई मलिनताएं प्राकृतिक होती है और कई मनुष्य क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होती हैं।

जल-प्रदूषण के मुख्य दो स्त्रोत हैं– (1) प्राकृतिक स्त्रोत (2) मानव क्रिया से।

1. प्राकृतिक स्त्रोत या प्राकृतिक मलिनताएं (Natural Impurities)–ये निम्नलिखित हैं–

(1) घुली हुई गैसें (Dissolved Gases)–जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड (Hydrogen Sulphide) कार्बन डाईऑक्साइड (Carbon dioxide), अमोनिया (Ammonia), नाईट्रोजन (Nitrogen) आदि।

(2) घुली हुई धातु में (Dissolved minerals)–जैसे कैल्शियम (Calcium), मैगनेशियम (Magnesium) सोडियम (Sodium) आदि के लवण।

(3) अघुलनशील मलिनतायें (Suspended Impurities)–जैसे मिट्टी, गार, रेत, कीचड़ आदि।

(4) सूक्ष्म पौधे जीव (Microscopic plants and Animals)–उपर्युक्त

प्राकृतिक मलिनतायें वातावरण तथा भूमि से प्राप्त होती हैं। जलप्रदूषक, ज्वालामुखी, विस्फोट, भूखलन, पशुओं के सड़ने या गलने से जल प्रदूषण होता है।

2. मानव क्रियाओं से उत्पन्न मलिनतायें (Implurities Caused by Human Activity)–जल प्रदूषण के लिए मानवीय क्रियाएं गम्भीर रूप से उत्तरदायी हैं। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण जल-प्रदूषण में वृद्धि हुई है। जल-प्रदूषक कृषि का विकास, सांस्कृतिक स्त्रोत, धार्मिक, पर्वों पर असीमित मनुष्यों का एकत्रित होना जैसे कुम्भ का मेला आदि से प्रदूषक प्राप्त होते हैं। जिससे जल-प्रदूषण होता है। मानव क्रियाओं के प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) जैविक अपशिष्ट द्रव्य (Organic Water)–नगरपालिकाओं द्वारा एकत्रित कूड़ा-करकट, घरेलू मल-मूत्र, कागज़ के कारखानों, बूचड़खानों, पशुशालाओं, पैट्रोल शोधक कारखानों, शराब के कारखानों चमड़े के कारखानों आदि द्वारा बहाई गई गन्दगी से जल-प्रदूषित होता है। यह जैविक अपशिष्ट द्रव्य बह कर झीलों, तालाबों, नदियों आदि में मिल जाते हैं और पानी को मानवीय प्रयोग के अयोग्य बना देते हैं।

(2) रोग जीवाणु (Pathogenic organism)–घरेलू मल-मूत्र से जल में रोग-जीवाणु बह जाते हैं। नदियों के जल-बहाव से यह अन्य स्थान पर पहुंच जाते हैं इस प्रकार ये विभिन्न क्षेत्रों में रोग फैलाने का कारण बन जाते हैं। इन रोगाणुओं से पीलिया, मियादी बुखार, पेचिश, दस्त, हैज़ा, तपेदिक आदि संक्रामक रोग फैलाते हैं।

(3) औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी अपशिष्ट द्रव्य (Industrial and agricultural Wasts)–औद्योगिक क्षेत्र, मिलों कारखानों से बेकार गैस तथा पदार्थों का निकलना, जल प्रदूषण करता है। औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी अपशिष्ट द्रव्यों से उत्पन्न कई रासायनिक प्रदूषक सार्वजनिक जल पूर्ति स्त्रोतों में मिल जाते हैं और जल को प्रदूषित करते हैं। ये प्रदूषक तत्व निम्नलिखित हैं–

मलनिवारक धोलक (Detergent Selvent)–साईनाइडज़, भारी धातु, खनिज एवं कार्बनिक तेज़ाब, रंग नाइट्रोजन पदार्थ, रंग काट पदार्थ, कोयला, तेल, रंग कण, विषैले पदार्थ जैसे (विष, केडमियम, सिक्का, जस्ता, तांबा, मर्करी, जीवनाशक यौगिक), सल्फाइडज़ आदि।

खेतों में प्रयोग की जाने वाली खादें (यूरिया फास्फेट एवं नाईट्रेट), कीटनाशक (डी.डी.टी. वी.एस.सी.) कॉपर सल्फेट, एलड्रिन), फफूंदीनाशक, पौध नाशक, अन्य मलनिवारक आदि पानी के मुख्य प्रदूषक हैं। नाइट्रेटस जीवित प्राणियों की श्वास प्रणाली तथा नाड़ी संस्थान को हानि पहुंचाते हैं। नाईट्राइट-विष प्राणनाशक होता है। सभी औद्योगिक एवं कृषि सम्बन्धी प्रदूषण स्वास्थ के लिये हानिकारक होते हैं।

तेल भण्डारों से बहने वाला तेल तथा स्वचालित वाहनों को धोने से बहने वाला तेल नदियों में मिल जुल कर उन के पानी को प्रदूषित कर देता है। टैंकरों से निकलने वाला तेल समुद्री जीवन के लिये खतरा बना हुआ है। ईराक युद्ध में तेल समुद्र में मिल जाने के कारण बहुत से पशु मर गये थे।

औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ (Industrial Wastes) वनस्पति के लिये भी हानिकारक है क्योंकि वनस्पति मनुष्यों तथा पशुओं को भोजन एवं ऑक्सीजन प्रदान करती है इसलिए उसका प्रदूषण उन्हें प्रभावित करता है।

(4) रेडियो एक्टिव कूड़ा (Radoi-active Wastes)–आणविक संयन्त्रों से निकलने वाला रेडियो एक्टिव कूड़ा मनुष्य के लिए बहुत हानिकारक है। इसे धरती के नीचे टैंकों में इकट्ठा किया जाता है और इसके नष्ट होने में सैंकड़ों वर्ष लग जाते हैं। खानों से खनिज निकालते समय तथा युरेनियम के प्रॉसैसिंग से पैदा होने वाली रेडियो एक्टिव धूल नदियों तथा झीलों में मिल जाती है और उनका प्रदूषित जल खेतों, पशुओं तथा मनुष्यों के लिए बहुत हानिकारक होता है।

परमाणु-परीक्षण तथा विद्युत उत्पादक रसायन से बेकार पदार्थ निकलते हैं जिनसे जल-प्रदूषण होता है।

जल-प्रदूषण के प्रकार [Type of Water Pollution]

जल-प्रदूषण के स्रोत तथा भण्डारन आधार पर निम्नालिखित पांच वर्गों में बांटा जाता है–

1. पृथ्वी तल पर जल-प्रदूषण (Water pollution on Earth Surface)
2. पृथ्वी के अन्दर जल-प्रदूषण (Ground water Pollution)
3. झीलों आदि के लिए जल-प्रदूषण (Lakes water Pollution)
4. नदी जल प्रदूषण (River water Pollution)
5. समुद्र तथा महासागरों का जल प्रदूषण (Ocean water Pollution)

1. पृथ्वी तल पर जल-प्रदूषण (Water pollution on earth Surface)–वर्षा के द्वारा पृथ्वी को जल प्राप्त होता है। पानी समुद्र तथा नदी से वाष्प बनकर ऊपर वायुमण्डल में जाता है और वहां से आर्द्रता पाकर वर्षा का रूप धारण कर लेता है। इस जल में कई दोष नही होता। वर्षा के जल को एकत्र कर वर्ष भर पीने व घरेलू कार्य के लिये प्रयोग किया जा सकता है। भारत में पानी प्राप्त करने के साधन बहुत अधिक नहीं है इसलिए वर्षा के जल को श्रेष्ठ मानते हैं। वर्षा के जल से भूमिगत जल में वृद्धि होती है। इससे खेतों को कुओं, तालाबों को पानी मिलता है।

आजकल उद्योगों तथा कारखानों से विषैली गैसें निकलती हैं जो बरसते हुए पा मिल जाती हैं जिससे पानी प्रदूषित हो जाता है। विशेषकर सल्फर डाइऑक्साइड नाइट्रोजन के ऑक्साइड के साथ तो यह क्रमश: सल्फ्यूरिक तथा नाइट्रिक अम्ल बना जो फसलों और मकानों को हानि पहुंचाते हैं।

2. पृथ्वी के अन्दर जल प्रदूषण (Ground water Pollution)–खेती, सिं घरेलू कार्यों के लिए पृथ्वी के अन्दर के जल को प्रयोग में लाया जाता है। इसके महत्व साधन कुआं और नल हैं। पृथ्वी के अन्दर जल की मात्रा सीमित होती है जब बरसात क होती है तो कुओं के पानी का तल बहुत नीचे चला जाता है। यही बात नलों के साथ है पर नलकूपों द्वारा पानी सैंकड़ों फीट नीचे से भी लिया जा सकता है इसलिए आजक नलकूपों का प्रयोग होने लगा है। इन पर कम बरसात का प्रभाव नहीं पड़ता है। नगरों दिन प्रतिदिन कुओं की संख्या कम होती जा रही है और गांवों में नलों का प्रयोग अधि होता है। यदि कुआं खुला होता है तो उसका जल अशुद्ध एवं प्रदूषित हो जाता है।

नलकूपों के प्रयोग के लिए झीलों आदि के भण्डारन जल का उपयोग किया जा है। इस जल को तकनीकी द्वारा शुद्ध करके शहरों में वितरण किया जाता है। शहरों में पाइ लाइनों को बिछाकर इस जल को वितरित किया जाता है। यह पाइप गन्दे नालियों आदि भी ले जाने पड़ते हैं। इसलिए पानी प्रदूषित हो जाता है।

3. झीलों, तालाबों, झरनों आदि में जल प्रदूषण (Water pollution in Lakes)–यह पृथ्वी की सतह पर प्राकृतिक रूप से बने जल के भण्डार हैं। इनका पानी मीठा व पीने के लायक होता है, घरेलू कार्यों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है परन्तु आज यह जल भी शुद्ध नही रहा, प्रदूषित हो गया है। गांव के निचले स्थानों पर वर्षा का पानी एकत्र हो जाता है यह स्थानीय संगृहित पानी का भण्डार होता है इसे बोलचाल में पोखर कहते हैं इसके किनारों को पक्का करके लोग इसे तालाब का नाम दे देते हैं।

इस प्रकार के बने तालाबों का जल अशुद्ध एवं प्रदूषित होता है क्योंकि इनमें गांव के पशु घुस कर पानी पीते, नहाते हैं, गांव के लोग इसके किनारे बैठ कर कपड़े धोते हैं इस लिये जल शुद्ध व पीने के योग्य नहीं होता है।

वर्षा का पानी पहाड़ी चट्टानों के बीच इकट्ठा हो जाता है फिर धीरे-धीरे यह किसी स्थान से गिरने लगता है। ऐसा जल निर्मल व शुद्ध व पीने के योग्य होता है।

4. नदी जल-प्रदूषण (River water Pollution)–पहाड़ों पर जमी बर्फ पिघल कर जल बनकर नदियों में आ जाती है और वर्षा का जल नदियों में गिरता है। यह दोनों ही स्रोत शुद्ध जल के हैं, परन्तु नदी के मार्ग में शहरों की गन्दी या कारखानों का बेकार पदार्थ इसके पानी को अशुद्ध कर देते हैं। नदियों की बाढ़ से जल प्रदूषित होता है। गंगा-शुद्धिकरण योजना इसी का उदाहरण है। मथुरा के तेल शोधक कारखाने ने यमुना के जल

को प्रदूषित किया है। इसका प्रभाव ताजमहल की सुन्दरता पर भी पड़ रहा है। नदियों के प्रदूषित जल का प्रभाव मनुष्य तथा अनेक जीवों पर पड़ रहा है।

5. समुद्र तथा महासागरों का जल-प्रदूषण (Water pollution of Ocean)– समुद्र में जल की मात्रा सबसे अधिक है। इसने पृथ्वी के तीन-चौथाई भाग को घेर रखा है। समुद्र का जल खारा तथा अनेक लवणों से युक्त है।

समुद्र के जल में वर्षा के जल के साथ नदियों आदि का भी आकार मिल जाता है। जिससे नदियों की गन्दगी सागर के जल को प्रदूषित कर देती है। इसलिये यह जल न तो पीने के योग्य होता है और न ही उद्योग व खेती के काम आता है। इसमें क्लोरीन, सोडियम, मैगनीशियम, सल्फर, कैल्शियम, पोटेशियम, ब्रोमीन, स्ट्रोनशियम और बोरोन के घुलनशील लवण होते हैं। इनके अतिरिक्त कार्बन, सिलीकान, फ्लोरीन एल्युमिनियम तथा आयोडीन भी पाया जाता है। अघुलनशील तथा तैरने वाले पदार्थों की कुछ मात्रा स्थान विशेष के आधार पर हो सकती है क्योंकि उद्योगों और अनेक प्रकार के कारखानों से निकले हुए बेकार पदार्थ भी आते हैं। जिससे जल-प्रदूषित होता है। तेल टैंकरों में आग लगने से समुद्री संकट उत्पन्न होता है। इससे समुद्री जानवरों, मछलियों के मरने से वायु-प्रदूषण होता है जो स्थली जीव-मण्डलों को प्रभावित करता है।

जल प्रदूषण के स्त्रोतों पर आधारित वर्गीकरण निम्नलिखित है–

1. सीवेज जल-प्रदूषण (Sewage water pollution)

2. घरेलू बेकार की पदार्थों से जल-प्रदूषण (Water pollution from domestic Waste)

3. औद्योगिक क्षेत्र की बेकार पदार्थों से जल-प्रदूषण (Water pollution from industrial Waste)

4. ठोस पदार्थों के बेकार होने से जल-प्रदूषण (Water pollution from solid Waste)

जल-प्रदूषण के अन्य स्त्रोत
[Other Sources of Water Pollution]

(1) पृथ्वी के अन्दर पानी सैपटिक सैटैक, सीपेज गडढ़ों के होने से जल-प्रदूषण होता है।

(2) पारा-प्रदूषण-औद्योगिक अपशिष्ट में पारा-पदार्थ पानी के साथ आता है जिससे चेचक की बीमारी फैलती है।

(3) शीशा-प्रदूषण-औद्योगिक अपशिष्ट में मुख्य शीशा पदार्थ पानी में प्रवाहित होकर आता है जिससे जिगर तथा गुर्दे को हानि होती है तथा यह शारीरिक अंग बेकार हो जाते हैं।

(4) क्लोराइड-प्रदूषण-यह पदार्थ प्राकृतिक ढंग से ही पानी में आते हैं इसकी हड्डी की बीमारियां होती है। इसके अलावा नाइट्रोजन, जस्ता, आर्मोनिजम तथा सोडियम के पानी में मिलने से जल-प्रदूषण होता है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

जल प्रदूषण के हानिकारक प्रभाव [Harmful Effects of Water Pollution]

जल प्रदूषण से निम्नलिखित हानियां होती हैं-

1. हानिकारक स्वास्थ्य (Harmful Health)-जल-प्रदूषण से पीलिया, मियादी बुखार, पेचिस, दस्त, हैज़ा, टी.बी. आदि रोग हो जाते हैं। शरीर में कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है।

2. पशु (Animals)-जल-प्रदूषण का पशुओं पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है। उन्हें कई प्रकार के रोग हो जाते हैं। उनकी मौत भी हो जाती है। पक्षी दूषित जल-स्त्रोतों से दूर चले जाते हैं।

3. पौधे (Plants)-जहां पानी में प्रदूषण होता है वहां की मिट्टी में पौधे नहीं उगते।

4. वस्तु एवं धातुएं (Materials and Metals)-वस्तुओं और धातुओं का क्षय होने लगता है।

5. दुर्गन्ध (Putrefication)-जहां पानी प्रदूषित होता है वहां जल में से दुर्गन्ध आने लगती है।

6. भारी पानी-पानी भारी हो जाता है और ऐसा घरेलू तथा औद्योगिक प्रयोग के लिए अच्छा नहीं होता।

जल प्रदूषण का नियन्त्रण एवं संरक्षण [Prevention and Control of Water Pollution]

जल प्रदूषण रोकने के लिए कई प्रकार के उपाय एवं साधनों को अपनाया जा सकता है। कुछ साधनों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है-

1. चेतना (Awareness)-जल-प्रदूषण के हानिकारक परिणामों से सामान्य नागरिकों एवं विशेषकर स्कूल के बच्चों को सचेत करना चाहिए। प्रदूषित पानी का कम से कम प्रयोग करने की बात समझाई जाये।

2. शिक्षा (Education)-तालाबों, कुओं तथा नदियों के किनारों पर साबुन से कपड़े धोने, नहाने, तेल लगाकर नहाने पर रोक लगायी जाये तथा लोगों को शिक्षा दी जाए कि वे पानी को प्रदूषित न करें। पानी के पास गन्दगी या कूड़ा-करकट न फेंके।

3. उर्वरकों की मात्रा (Quantity of Fertilizers)–जितना उचित हो उतनी ही मात्रा में रसायनों का प्रयोग करें।

4. मल को साफ करना (Treating the Sewage)–शहरों तथा कस्बों का मल नदियों तथा झीलों में नहीं बहाना चाहिए। बल्कि उन्हें साफ करना चाहिए। इनमें से (BOD–Biochemical Oxygen Demand) फास्फोरस, नाईट्रोजन, ठोस पदार्थ तथा कीटाणु साफ करने चाहिएं। कारखाने के अवशिष्ट पदार्थों तथा मल को तकनीकी-प्रक्रिया द्वारा साफ किया जाता है। इस प्रक्रिया की तीन अवस्थायें निम्नलिखित हैं–

(1) पहली अवस्था (Primary Treatment)–इसमें भौतिक, प्रक्रियायें आती हैं। जैसे तलछट को नीचे बिठाना, तैराना, टुकड़े करना और छानना।

(2) दूसरी अवस्था (Secondary treatment)–इसमें दो प्रकार की विधियां अपनाई जाती हैं एक बूंद-बूंद छानने की विधि, दूसरी पंक्या मल को सक्रिय करने की विधि (Tricking filter method.)

(3) तीसरी अवस्था (Terteary process)–इसमें विकसित भौतिक, रसायनिक, एवं जैविक प्रक्रियाएं आती हैं।

5. जल-प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम (Water pollution control Act)–प्रदूषण निवारक तथा नियन्त्रण अधिनियम, 1947 का कठोरता से पालन किया जाना चाहिए। इस अधिनियम में जल प्रदूषण को रोकने के लिए कानूनी व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम में केन्द्रीय एवं राजकीय जल-बोर्डों को स्थापित करने की व्यवस्था की गई है और उन्हें प्रदूषण रोकने के लिए विस्तृत अधिकार प्रदान किये गये हैं।

कुछ अन्य जल-प्रदूषण नियन्त्रण के साधन निम्नलिखित हैं–

1. परिस्थिति तन्त्र में स्थिरता रखना (Maintaining Stability of Ecosystem)–यह एक वैज्ञानिक विधि है। जिससे जल प्रदूषण को रोका जा सकता है। भौतिक तथा जैविक अनेक विधियां जिनका उपयोग जल स्रोतों का परिस्थितिकी सन्तुलन रखने में किया जाता है।

2. प्रदूषकों का पृथकीकरण (Removal of water Pollution)–जल स्रोतों से अनेक प्रकार के प्रदूषकों को अलग कर सकते हैं। जैसे सोखने की क्रिया, विद्युत विश्लेषण, आयोन का लेन-देन, विपरीत ओसमोसिस किया। सौर्य ऊर्जा द्वारा प्रदूषित जल को शुद्ध किया जाता है।

3. पुनः उपयोग तथा पुनः चक्रीय क्रिया का अपशिष्ट में प्रयोग (Reutiling and Recycling)–उद्योगों एवं कारखानों से अनेक प्रकार के अपशिष्ट निकाले जाते हैं। ऊष्मा प्रदूषकों का पुनः उपयोग किया जा सकता है। नगरी अपशिष्ट से गैस बनाई जा

सकती है। कुछ अपशिष्ट को तकनीकी प्रक्रिया के द्वारा कृषि तथा अन्य उपयोगी उत्पादकों के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

4. जल गुणवत्ता का प्रबन्धन (Water quality Management)–धरातल तथा धरातल के अन्दर के जल स्रोतों की गुणवत्ता बनाये रखने की आवश्कता है। इसके लिए केन्द्रीय सरकार ने 'जल नियन्त्रक' कानून बनाया है जैसे–

(1) भारत सरकार केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण–यह गंगा के जल को शुद्ध करने के लिए एक व्यापक योजना एवं कार्यक्रम है। इसके अन्तर्गत गंगा नदी में शहरों के सीवेज से जो नदी में जल प्रवाहित किया जाता है उसे पहले 'सीवेज ट्रीटमेण्ट' से शुद्ध करके छोड़ा जाये ऐसी योजनायें में शहरों में गंगा के किनारे स्थापित की गई है।

(2) जल ऐक्ट (1974)–यह भी जल-प्रदूषण को नियन्त्रण तथा रोकने के लिये बनाया गया है।

(3) दामोदर घाटी कारपोरेशन एक्ट (1948)–को दामोदर नदी के जल को प्रदूषित होने से रोकने तथा नियन्त्रण के लिये किया गया है।

(4) जल सैस ऐक्ट (1971)–यह जल-प्रदूषण नियन्त्रण तथा रोकने के लिए बनाया गया है।

(5) पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986)–इसके अन्तर्गत किसी भी प्रकार के प्रदूषण को बढ़ावा देने वाले व्यक्ति को दण्ड सजा देने का प्रावधान है। इसमें आर्थिक दण्ड तथा कारावास दोनों ही प्रकार के दण्ड का प्रावधान किया है।

इन सब ऐक्टों तथा अधिनियमों का लक्ष्य जल की गुणवत्ता को बनाये रखना है।

(6) राष्ट्रीय पेय जल मिशन (National drinking water Mission)-ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहरों के झुग्गी वालों के लिये पीने के पानी की सुविधा नहीं थी। विश्व बैंक की सहायता से ग्रामीण क्षेत्रों एवं शहरों में नल लगाये जा रहे हैं जिससे पानी आसानी से सुलभ हो सके ये नल उच्च तकनीकी के आधार पर बनाये गये हैं।

(7) केन्द्रीय आन्तरिक जल बोर्ड का कार्य योजनाओं की सहायता करना तथा ऐसे केन्द्रों की स्थापना करना है जो जल-प्रदूषण को रोक सकें।

जल साफ करने की विधियां
(Ways and Means of Cleaning Water)

जल की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए जल को साफ करने की आवश्यकता है। इसकी कुछ निम्नलिखित विधियां हैं–

1. भौतिक प्रक्रियाएं (Physical Process)–भौतिक प्रक्रियाओं में निथारना, उबालना तथा अर्क की तरह खींचना शामिल है। उबालकर वाष्पीकरण विधि से जल शुद्ध कर सकते हैं।

(1) उबालना (Boiling)–जल के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए उबालना सर्वोत्तम विधि है। इससे हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

(2) आसवन (Distellation)–इस प्रक्रिया द्वारा पहले पानी को गैस में बदला जाता है फिर गैस से पानी बनाया जाता है। यह विशिष्ट प्रकार की यांत्रिकता द्वारा किया जाता है जिसे आसवन कहा जाता है।

2. रासायनिक प्रक्रियायें (Chemical Process)–इन प्रक्रियाओं द्वारा निम्नलिखित विधियों से पानी साफ किया जाता है–

(1) अवक्षेपक क्रिया द्वारा (Precipitant)–जल में विद्यामान मैल को नीचे तल में बैठाने के लिए कैल्शियम, फिटकरी, लोहे का परक्लोराइड का प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से पानी की गन्दगी नीचे बैठ जाती है।

(2) कीट नाशक द्वारा (Antiseptic)–इसके द्वारा पानी में कीट नाशक पदार्थ डालकर पानी को साफ किया जाता है जैसे पोटाशियम परमैंगनेट (Potassisum Permanganate), ब्लीचिंग पाऊडर (Bleaching Powder), कलोरीन गैस (Chlorine Gas), आयोडीन (Iodine), पराबैंगनी किरणें (Ultra Violet Rays) आदि।

3. मैकनिकल प्रक्रियायें (Mechanical Processes)–इनमें पानी को फिल्टर में छाना जाता है। आजकल घरों में फिल्टर का प्रयोग किया जाने लगा है। जल को शुद्ध करने के लिए आजकल घरों में 'ऐकुआ गार्ड' प्रयोग किया जाता है।

4. परम्परागत विधियां (Traditional Method)–छानकर, उबालकर, लकड़ी के कोयले से छानना, कंकड़ों, बालू तथा कोयले से छानना आदि क्रियाएं हैं।

5. आधुनिक विधियां (Modern Method)–कुओं को ढककर रखना, उनकी नियमित सफाई करना, पोटोशियम परमैंगनेट व फिटकरी कुओं में डालने से पानी के कीटाणु मर जाते हैं।

3. वायु प्रदूषण [Air Pollution]

मनुष्य तथा सभी जीवों के लिए वायु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बिना वायु के कुछ मिनट भी जीवित रहना कठिन है। आज मनुष्य को शुद्ध वायु नहीं मिलती है, वायु में कुछ न कुछ मिलावट होती रहती है। जिससे वायु अशुद्ध हो जाती है। वायु प्रदूषण से तात्पर्य है–वायु में बाह्य तत्वों का मिल जाना जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो जाये। वायु-प्रदूषण मानव जीवन के लिए बहुत ही अधिक खतरनाक है गैस, धुआं व धूल के द्वारा वायु में प्रदूषण होता है। प्राकृतिक और मानवी क्रियाओं द्वारा वायु प्रदूषित होती है। सल्फर

डाइऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि वायु में मिलक दूषित कर देते हैं।

वायु-प्रदूषण के स्त्रोत [Sources of Air Pollution]

वायु प्रदूषण के दो मुख्य स्त्रोत हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. प्राकृतिक स्त्रोत (Natural sources of air pollution)
2. मानव निर्मित स्त्रोत (Man-made sources of air Pollution)

1. प्राकृतिक स्त्रोत (Natural sources of air pollution)–कभी-कभी भी पर्यावरण में प्रदूषण फैलाने का कारण बनती है। ये प्रदूषण अचानक ही प्रकृति जाते हैं और इनका प्रभाव सभी जीवों पर पड़ता है। जैसे भूकम्प का आना, बाढ़ का ज्वालामुखी फटना, पहाड़ों का टूटना, भूखलन, चट्टानों का टूटना, तेज़ आंधि आना, वनों में आग लगना, तेज़ आंधियों का आना, तीव्र वर्षा का होना, बिजली का आदि। ये सब प्राकृतिक घटनायें प्रकृति में घटती हैं जिन्हें प्राकृतिक संकट कहा जा इन घटनाओं को मनुष्य रोक नहीं सकता केवल इनके बारे में भविष्यवाणी कर सक

2. मानव निर्मित स्त्रोत (Man-made sources of air Pollution)–मनु द्वारा किये गये बहुत से ऐसे विकास के कार्य हैं जिनसे वायु-प्रदूषण होता है। मानव प्रदूषण के स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) औद्योगिक प्रक्रिया (Industrial Process)–शहरों के नगरी औद्योगीकरण के कारण प्रदूषण बहुत बढ़ गया है। बहुत से औद्योगिक कारखाने स किए गए हैं। जैसे तेल शोधक कारखाने, रासायनिक उद्योग धातु शोद्धन उद्योग आदि उद्योगों से निकला गंदा धुआं व गैंसे वायु को प्रदूषित कर देती है।

(2) मोटर वाहन (Motor Vehicles)–शहरों मे चल रही मोटर गा स्वचालित वाहनों के कारण वायु प्रदूषण हो रहा है। बम्बई जैसे बड़े नगर में 2.5 ल भी अधिक मोटर गाड़ियां 600 वर्ग कि.मी. में चलती हैं। मोटर गाड़ियां ट्रक रेलगा वायुयान तथा यातायात के अन्य साधन हाईड्रोकार्बन, कार्बन मोनोऑक्साइड, सि नाइट्रोजन आदि निकालते हैं जिससे वायु प्रदूषित होती है। डीज़ल इंजन के दुरुपय वह काला धुआं व दुर्गन्धयुक्त गैस छोड़ता है जो वायु को अशुद्ध कर देता है श चलने वाले वाहन 80% वायु प्रदूषण के कारण है।

(3) ज्वलनशीलता (Combustion)–ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी लकड़ी, को गोबर को ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। चूल्हों तथा अंगीठियों को निकल तथा धुआं विषैला होता है। जिससे अनेक बीमारियां होती है। कारखानों तथा घरों मे

ज्वलनशील वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। उससे धुआं, धूल तथा सल्फर डाइऑक्साइड उत्पन्न होते हैं। जो वायु को प्रदूषित कर देते हैं।

(4) लोगों का मल-मूत्र (Human Waste)–लोगों के मल-मूत्र को बाहर खुले में फेंक दिया जाता है। जिससे वायु-प्रदूषण होता है।

(5) आबादी का घनत्त्व (Density of Populations)–जनसंख्या के अधिक बढ़ने से वायु में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ गई है और ऑक्सीजन की कमी हो रही है। ऑक्सीजन की कमी जीवों के जीवन के लिए हानिकारक है।

(6) विभिन्न (Miscellaneous)–कूड़ा-करकट को जलाना, रासायनिक खादों तथा कीट नाशक दवाओं को छिड़कने से प्रदूषण होता है। आणविक-ऊर्जा कार्यक्रम के कारण भी वायु प्रदूषित होती है।

वायु-प्रदूषक [Air Pollutants]

वायु मण्डल में अनेक प्रकार के प्रदूषक विभिन्न स्रोतों से छोड़े जाते हैं। विभिन्न स्रोतों से जो प्रदूषक छोड़े जाते हैं। वे निम्नलिखित हैं–

1. वायु प्रदूषक गैसें (Gascour Pollutants)–100 से भी अधिक वायु-प्रदूषक गैसों की पहचान की जा चुकी है। उनमें से अत्यन्त महत्वपूर्ण इस प्रकार है–

(1) कार्बन पदार्थ–यह कार्बन डाईऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड जैसे ईंधन से उत्पन्न होते हैं परन्तु आजकल मोटर-वाहनों से भी उत्पन्न होते हैं।

(2) सल्फर पदार्थ–इसमे सल्फर डाइऑक्साइड हाइट्रोजन सल्फाइड, स्लफ्यूरिक एसिड कोयले के कारखानों तथा मिलों में जलने से उत्पन्न होते हैं। तेल शोधक कारखानों से भी यह प्रदूषक निकलते हैं।

(3) नाइट्रोजन ऑक्साइड–नाइट्रोजन ऑक्साइड मोनोऑक्साइड नाईट्रिक एसिड स्वचालित वाहनों, कारखानों से अधिक मिलते हैं।

(4) ओजोन गैस–यह गैस मानवी क्रियाओं से उत्पन्न होती है। यह वायुमण्डल के तापमान को बढ़ाता है।

(5) हाइड्रोकार्बन–यह भी कारखानों और स्वचालित वाहनों से निकलते हैं।

(6) फ्लोरो कार्बन–यह कीटनाशक दवाओं को छिड़कने से वायु मण्डल में उत्पन्न होते हैं।

(7) धातुयें–इसमें निकिल, लैड, शीशा, आर सैनिक, कैडियम आदि पदार्थ वायु में कणों के रूप में, तरह रूप में या गैस के रूप में मिलते हैं।

2. कण पदार्थ (Particulate Substances)–कई छोटे-छोटे कण भी
प्रदूषित करते हैं जैसे–धूल, धुआं, दुर्गन्ध, धुन्ध कोहरा, छिड़काव आदि। कोयला
से बारीक राख तथा कालिख हवा में उड़ती है। धातु शोध प्रक्रिया से धातुओं की
में फैलती है जो वायु को प्रदूषित करती है।

वायु-प्रदूषण के प्रकार
[Type of Air Pollution]

वायु प्रदूषण का वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया जाता है–

1. प्रदूषकों के प्रकार के आधार पर
2. प्रदूषकों के स्रोतों के आधार पर

1. प्रदूषकों के प्रकार के आधार को दो उपभागों में बांटा जाता है–

(1) गैसों द्वारा प्रदूषण (2) पदार्थों के कणों द्वारा प्रदूषण। इनका उपर वर्णन
जा चुका है।

2. प्रदूषकों के प्रकार के आधार को छः वर्गों में विभाजित किया गया है-

(1) स्वचालित वाहनों से प्रदूषण (2) उद्योग द्वारा प्रदूषण (3) शक्ति उत्पा
प्रदूषण (4) नगरीकरण से प्रदूषण (5) ग्रामीण प्रदूषण (6) परमाणु परीक्षण से प्र

1. स्वचालित वाहनों से वायु-प्रदूषण (Automobiles air Pollution)-या
के साधनों मे तकनीकी विकास से बहुत उन्नति हुई है। आजकल शहरों में कार, बस,
स्कूटर, तिपहिये, वाहनों में बड़ी तेज़ी से वृद्धि हुई है। शहरों में बढ़ते हुए यातायात
कारण आये दिन ट्रेफिक जाम हो जाता है। वहां के वातावरण में इतना धुआं तथा धू
जाती है कि सांस लेना कठिन हो जाता है क्योंकि यह वाहन टनों गैस छोड़ते हैं। वि
प्रतिदिन प्रदूषण बढ़ रहा है।

शहरों में 60% वायु प्रदूषण वाहनों के कारण हो रहा है। वाहनों की वृद्धि
पर्यावरण की गुणवत्ता में दिन प्रतिदिन गिरावट आ रही है। संसार के करीब-करीब
करोड़ कार, बस ट्रक आदि हैं। शहरों में वाहनों से एक हज़ार टन के प्रदूषक छोड़े जाते
जिनमें 50% स्वचालित वाहन से होते हैं। स्वाचालित वाहन सात सौ कि.ग्रा. कार्बन
ऑक्साइड छोड़ते हैं। बड़े वाहन 80% ऑक्साइड और नाइट्रोजन छोड़ते हैं।

स्वचालित वाहनों का प्रदूषण वाहनों के साइलैन्सरों से निकलने वाली गैसें
अन्य पदार्थों पर आधारित हैं।

2. उद्योग से वायु प्रदूषण (Industrial air pollution)–भारत में उद्योगों एवं
तकनीकी में तीव्र गति से विकास हुआ है भारत की आर्थिक उन्नति यहां से औद्योगिक

कृषि विकास पर निर्भर है। जितनी तीव्र से औद्योगिक विकास हुआ उतना ही पर्यावरण में प्रदूषण भी बढ़ा है। औद्योगिक विकास वायु-प्रदूषण का मुख्य स्रोत है। कारखानों से निकलने वाली गैसें, धुआं, वायु को प्रदूषित करते हैं। तेल शोधक कारखानों से सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन ऑक्साइड निकलती है। जो वायु में मिल कर उसे अशुद्ध बनाती है। मथुरा के तेल शोधक संयन्त्र ने ताजमहल की सुन्दरता को कम किया है यमुना नदी को प्रदूषित किया है। रसायन खाद बनाने वाले उद्योग तथा कीट नाशक दवायें तैयार करने वाले कारखाने भी विषैली गैस छोड़ते हैं। दिल्ली में बहुत से ऐसे कारखाने हैं जिनके कारण वायु-प्रदूषण हो रहा है इसलिए सरकार ने इन कारखानों को बन्द करने के आदेश भी दिये हैं। कारखानों की चिमनी से निकलने वाली हानिकारक गैंसे व धुआं वायु में प्रदूषण करते हैं। सीमेन्ट के कारखानों से टनों धूल पैदा होती है। जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। कागज़, नाइलोन, व सूती वस्त्र बनाने के कारखाने भी वायु को प्रदूषित करते हैं।

ताप बिजली उत्पादन संयनत्र से राख तथा सल्फर के यौगिक निकलते हैं। वे जहां जहां फैलते हैं वहां के आसपास की वनस्पति एवं पेड़-पौधे समाप्त हो जाते हैं। सीमेन्ट के कारखाने से निकलने वाली धूल आस-पास के सारे वायुमण्डल, वहां बने हुए आवासों तथा कई मील तक की कृषि को प्रभावित करते हैं। यहां रहने वाले लोगों को कई प्रकार की बीमारियां भी हो जाती हैं।

कानपुर में बहुत से उद्योग चल रहे हैं जिनमें कोयले का प्रयोग किया जाता है। यहां सबसे अधिक वायु प्रदूषण किया जाता है। यहां सबसे अधिक वायु प्रदूषण है पूरा वायु-मण्डल धूल एवं धुएं से ढका रहता है। इस नगर में रहना एक समस्या है।

3. विद्युत उत्पादक संयन्त्र/ केन्द्र से वायु से प्रदूषण (Thermal Power Pollution)–बिजली हमारे जीवन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। बिजली के बिना भी जीवन असंभव हो गया है। विद्युत उत्पादन के लिये चार कोयले शक्ति केन्द्रों ने मिलकर राष्ट्रीय विद्युत-शक्ति संस्थान (National Thermal Power Corporation) की स्थापना की है जिसमें कोयले का प्रयोग किया जाता है। बदरपुर में प्रतिदिन 10 हज़ार टन कोयला जलाया जाता है। यहां जो गैस प्रदूषक हैं वे निम्नलिखित हैं–कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइऑसाइड, नाईट्रोजन, ऑक्साइड, ओज़ोन गैस, क्लोरो कार्बन, हाइड्रो कार्बन आदि प्रमुख हैं।

वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव
[Adverse Effects of Air Pollution]

मनुष्यों, जानवरों, पौधों तथा अन्य जीवों पर वायु-प्रदूषण का हानिकारक प्रभाव पड़ता है। वायु प्रदूषण का जलवायु, मौसम एवं वायुमण्डल का जलवायु, मौसम एवं वायुमण्डल पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। वायु-प्रदूषण के निम्नलिखित दुष्प्रभाव होते हैं-

1. मानवीय स्वास्थ्य पर प्रभाव (Effects on human Health)–वायु प्रदू से मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे मृत्यु दर में वृद्धि हुई है। मनुष्य श्वास प्रक्रिया पर बुरा प्रभाव होता है। जुकाम, फेफड़े के कैंसर, काली खांसी, दमा, छा के रोग आदि वायु प्रदूषण के कारण होते हैं। धूल कणों के कारण दृश्यता (Visibility भी कम हो जाती है।

2. पशुओं पर प्रभाव (Effects on Animals)–वायु-प्रदूषण का पशुओं पर हानिकारक प्रभाव होता है। पशुओं के लिए फ्लोराइडस (Flourides) विष के समान फ्लोराइडस से प्रदूषित पत्ते या पौधे खाने से पशु बीमार हो जाते हैं।

3. पौधों पर प्रभाव (Effects on Plants)–वायु प्रदूषण कृषि, फसलों, उपव पौधे तथा प्राकृतिक वनस्पति को हानि पहुंचाता है। जिससे पौधे नष्ट हो जाते हैं। कृषि सम्बन्धी जीवधारियों को भी हानि होती है।

4. सामाजिक एवं आर्थिक तत्वों पर प्रभाव (Effects on social and Economic Aspects)–प्रदूषण को रोकने के लिए भवन निर्माण वस्तुओं के नाश, सफा तथा मुरम्मत पर हो रहे खर्चों, तकनीकी उपायों तथा प्रशासनिक व्यवस्था पर हो रहे खर्च का सामाजिक एवं आर्थिक तत्वों पर प्रभाव पड़ता है।

कुछ अन्य वायु प्रदूषण के प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(1) वायुमण्डल में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाने से पृथ्वी का तापमा बढ़ जाता है। जिससे सूखे की सम्भावना बढ़ती है।

(2) सुन्दर इमारतों पर वायु-मण्डल का प्रभाव पड़ता है जैसा कि पहले भी लिख गया है ताजमहल की सुन्दरता वायु प्रदूषण के कारण कम हो रही है।

(3) वायुयान, जैट, तथा सुपर सोनिक वायुयान वायुमण्डल में अधिक ऊंचाई उड़ते हैं और नाइट्रोजन ऑक्साइड गैस छोड़ते हैं और नाइट्रोजन ऑक्साइड गैस छोड़ते जो वायुमण्डल की ओज़ोन अणुओं को नष्ट कर देती है। इसके नष्ट होने से पृथ्वी तापमान में वृद्धि होती है।

वायु-प्रदूषण का नियन्त्रण तथा बचाव
[Control and Prevention of Air Pollution]

वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण करना मानव, वनस्पति एवं सभी प्रकार के जीवों के लि आवश्यक है। वायु प्रदूषण के नियन्त्रण से पर्यावरण की गुणवत्ता, कृषि विकास, मनुष्य स्वास्थ्य, वनस्पति तथा सभी जीव मण्डल को लाभ पहुंचेगा। वायु प्रदूषण पर नियन्त्र आधुनिक तकनीकी तथा वैज्ञानिक शोध निष्कर्षों से किया जा सकता है। वायु प्रदूषण नियन्त्रण करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते हैं–

1. मोटर वाहनों का प्रयोग कम से कम (Minimum use of Automobiles)–मोटर वाहनों का प्रयोग कम से कम किया जाए इससे वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण होने के साथ तेल की भी बचत होगी। वाहनों में यन्त्र लगाकर प्रदूषकों को छोड़ने में नियन्त्रण किया जाये। वाहनों के कार्बुरेटर तथा टंकियों के ईंधन की वाष्प को नियन्त्रित किया जाए। इनमें फिल्टर का प्रयोग किया जाए। कानून द्वारा निर्धारित 'मोटर व्हीकल एक्ट 1988' को सख्ती से लागू किया जाए।

2. पेड़ लगाना (Plantation of trees)–पेड़ कार्बनडाइऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन छोड़ते हैं। जिससे वायु शुद्ध होती है इसलिए अधिक से अधिक पेड़ लगाने चाहिए। पेड़ों की कटाई पर नियन्त्रण लगायें।

3. अच्छा ईंधन (Good quality Fuel)–मोटर वाहनों में अच्छे ईंधन का प्रयोग किया जाये जिसमें सल्फर कम हो या बिल्कुल न हो। शोद्धक के प्रयोग से मोटर वाहनों से निकलने वाली गैसों को साफ किया जाए।

4. औद्योगिक प्रक्रियाओं का संशोधन (Modification of industrial Process)–उद्योगों से जो गैस तथा अन्य बेकार पदार्थ निकलते हैं उन्हें संयन्त्रों द्वारा अलग किया जाए। इस तीन प्रकार के संयन्त्रों का प्रयोग किया जाए। (क) चक्रीय एकत्रंक (Cycle collector), (ख) इलैक्ट्रोस्टैटिक संयन्त्र (Electrostatic Percipitators), (ग) औद्योगिक कानून (Industrical Law) बनाये जाएं।

औद्योगिक कारखाने से निकलने वाले धुओं को पहले छाना जाये इससे वायु प्रदूषकों के कण को कम किया जा सकता है।

5. ऊंची चिमनियों का प्रयोग (Use of tall Chimneys)–कारखानों में यदि ऊंची चिमनियां बनाई जाएं तो वायु प्रदूषण कम होगा। दिल्ली में कारखानों द्वारा इतना वायु प्रदूषण बढ़ गया है कि यहां भी कानपुर जैसा वातावरण बन गया है इसलिए नगरपालिका तथा प्रशासन ने इन सभी कारखानों पर रोक लगा दी है।

6. पारम्परिक ईंधन को बदलना (Replacing conventional Fuel)–पारम्परिक ईंधन लकड़ी, कोयला, तेल के स्थान पर बिजली तथा प्राकृतिक गैस का प्रयोग किया जाए इनसे सल्फर ऑक्साइड नहीं निकलता है।

7. जनसंख्या पर नियन्त्रण (Population Control)–वायु-प्रदूषण पर नियन्त्रण करने के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगाना होगा।

8. आणविक विस्फोट नहीं (No nuclear Epplosions)–आणविक विस्फोट बन्द करने चाहिए तभी इनसे निकलने वाली गैसों से बचा जा सकता है।

9. ऊर्जा उत्पादन के अज्वलनशील साधन (Non-combustible means producing Energy)–जिन साधनों को जलाया नहीं जाता उनसे ऊर्जा उत्पन्न करने कोशिश करनी चाहिए। ऐसे साधन निम्नालिखित हैं–सूर्य, ऊर्जा, विद्युत तथा आणविक ऊर्जा। इनसे प्रदूषण नहीं फैलता है।

10. कानून बनाना (Legislation)–भारत के बहुत से नगरों में ऐसे कानून बना गये हैं जिनसे वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण किया जा सकता है। कलकत्ता, बम्बई, अहमदाबा एवं कानपुर में (Smoke nuisance Act) लागू किया गया है।

11. अन्तर्राष्ट्रीय कार्य (International Action)–विश्व स्वास्थ्य संगठ (World Health organisation) ने वायु प्रदूषण के अध्ययन के लिए प्रयोगशालाओं का एक अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क स्थापित किया गया है। विश्व के विभिन्न भागों में ऐसी 2 प्रयोगशालाएं स्थापित की गई हैं जो वायु प्रदूषण की चेतावनी भी देती रहती हैं।

12. गैस प्रदूषक (Gaseous Pollutants)–गैस प्रदूषकों को निम्न उपायों से नियन्त्रण कर सकते हैं–(क) आर्द्र प्रणाली (Wet system), (ख) शुष्क प्राणली (dry system), (ग) आर्द्र एवं शुष्क प्रणाली (wet-dry system), (घ) कानून व प्रशासन द्वारा (Control through law and Administration)

वायु का शुद्धिकरण [Disinfection of Air]

दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए वायु मण्डल को देखकर वायु को शुद्धिकरण की ओर ध्यान दिया गया है। इसके लिए जो उपाय अपनाये गये हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. धूल नियन्त्रण (Dust Control)–फर्शों पर तेल लगाने से वायु के कीटाणुओं को कम किया जा सकता है।

2. मलिन वायु हटाने के यान्त्रिक साधन (Mechanical Ventilation)–यान्त्रिक साधन से मलिन वायु तथा कीटाणु घनता को कम किया जा सकता है।

3. कैमिकल धुन्ध (Chemical mists)–ट्राइएथीलीन ग्लूकोल (Triethylene glucal) की बूंदे वायु के कीटाणुओं को नष्ट कर देती हैं। यह विधि नाभिक कणों तथा धूल कणों को नष्ट करने में बहुत प्रभावशाली है।

4. परा-बैंगनी विकिरण (Ultra violet Radiation)–पराबैंगनी किरणें (Ultra violet Radiation) आंखों और चमड़ी के लिए हानिकारक होती है। इसलिये परा-बैंगनी लैम्पों को कुछ ढक दिया जाता है और कमरों के उपर रोशनदान के पास रखा जाता है। यह विधि आप्रेशन थियेटरों तथा संक्रामक रोगों के बार्डों के लिए बहुत लाभदायक रहती है।

4. ध्वनि प्रदूषण [Noise Pollution]

आधुनिक समय में वातावरण में शोर बढ़ता जा रहा है। बड़े-बड़े शहरों तथा औद्योगिक कस्बों में शोर की समस्या भंयकर रूप धारण करती जा रही है। मनुष्य का दिमाग कुछ सीमा तक ही शोर को सहन कर सकता है। अधिक शोर के कारण मनुष्य को कठिनाई होने लगतीहै। पहले विकसित देश इस समस्या से परेशान थे अब विकाशशील देशों में भी शोर प्रदूषण की समस्या उपस्थित हो गई है।

शोर की परिभाषा [Definition of Noise]

1. सामान्य परिभाषा (Popular definition)–प्राय: –अवांछित ध्वनि को शोर कहा जाता है परन्तु यह परिभाषा व्यक्तिपरक है क्योंकि एक व्यक्ति के लिये साधारण ध्वनि दूसरे व्यक्ति के लिये शोर हो सकती है।

2. बेहतर परिभाषा (Better Definition)–गलत स्थान, गलत समय पर, गलत ध्वनि को 'शोर' कहते हैं। (Noise is wrong sound in the wrong place at the wrong time.)

ध्वनि प्रदूषण का अर्थ (Meaning of Noise Pollution)–आजकल 'शोर' प्रदूषण शब्द का प्रयोग होने लगा है। यह आधुनिक जीवन की उस व्यापक ध्वनि की ओर इशारा करता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

ध्वनि प्रदूषण के स्त्रोत [Sources of Noise Pollution]

ध्वनि प्रदूषण दो प्रकार से होता है–

1. प्राकृतिक स्त्रोतों से (Natural Resources)
2. मानवीय क्रियाओं द्वारा (Human Activities)

1. प्राकृतिक स्त्रोतों से (Natural Resources)–बादलों की गर्जना, बिजली की गड़गड़ाहट, अधिक तेज़ आंधी, तेज़ वर्षा, ओले गिरने आदि से शोर अधिक होता है।

2. मानवीय क्रियाओं द्वारा (Human Activities)–मोटरवाहन, कारखाने, वायुयान, लाउडस्पीकर, रेडियो, ट्रांजिस्टरों, टेलीविज़नों, बैंड बाजा, धार्मिक पर्व, विवाह उत्सव, चुनाव अभियान, आन्दोलन, कूलर, प्रैशर कुकर आदि से शोर होता है। जब ध्वनि बहुत तेज़ होती है तो वह असहनीय हो जाता है। यही शोर ध्वनि प्रदूषण बन जाता है।

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव
(Effect of noise Pollution)

मनुष्य के शरीर एवं मस्तिष्क पर निम्नलिखित ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव पड़ते हैं-

1. श्रवण थकान (Auditery Fatigue)–शोर के कारण श्रवण योग्यता थकान के कारण कम होने लगती है।

2. बहरापन (Deafness)–शोर के कारण बहरापन होने लगता है। बड़े-बड़े शहरों में जहां ध्वनि प्रदूषण अधिक है बहरे होने की सम्भावना अधिक होती है। बहरापन अस्थाई भी हो सकता है और स्थायी भी। विशिष्ट मात्रा में शोर के कारण अस्थाई बहरापन होता है पर बार-बार उसी स्थिति में रहने से अस्थायी बहरापन स्थायी बहरापन में बदल जाता है।

3. बोलने में बाधक (Interference with Speech)–शोर बोलचाल में भी बाधक होता है।

4. कार्य कुशलता (Efficiency)–ध्वनि अधिक होने से व्यक्ति के कार्य करने की कुशलता प्रभावित होती है। यदि ध्वनि प्रदूषण कम होता है तो कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है।

5. खीझ (Annoyance)–जो मनुष्य अधिक संवेदनशील होते हैं वे अधिक शोर से खीझ जाते हैं।

6. शारीरिक परिवर्तन (Physiological Changes)–ध्वनि प्रदूषण का व्यक्ति के शरीर पर प्रभाव पड़ता है। और कई प्रकार के शारीरिक परिवर्तन होते हैं। वे निम्नलिखित हैं–

(1) रक्तचाप का बढ़ना।

(2) सिर दर्द, जी मचलना, थकान।

(3) हृदय गति का बढ़ना।

(4) आंखें भारी होना।

(5) नींद में बाधक होना।

(6) पसीना आना।

(7) रक्त में कॉलैस्ट्रोल (Cholestrol) का बढ़ना।

(8) नेत्र निकार उत्पन्न होना।

नगरों में सामाजिक एवं पारिवारिक उत्सवों पर लाउडस्पीकर बजाये जाते हैं। देर जागरण भी आजकल बहुत किये जाते हैं जिनमें लाउडस्पीकर बजते हैं। मन्दिर, मस्जिद में तथा रामलीला के समय लाउडस्पीकर बजते हैं। इन सबका प्रभाव छात्रों पर पड़ता है

छात्र परीक्षा की तैयारी में लगे होते हैं। तब लाउडस्पीकर के शोर से उन्हें पढ़ने में बाधा उत्पन्न होती है और वे परीक्षा की तैयारी ठीक से नहीं कर पाते।

ध्वनि प्रदूषण का नियन्त्रण [Control of Noise Pollution]

शोर या ध्वनि को समाप्त तो नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह भी हमारे जीवन का एक अंग बन गया है परन्तु अधिक शोर या ध्वनि को कम अवश्य किया जा सकता है। निम्नलिखित उपायों एवं विधियों से ध्वनि प्रदूषण को कम या नियमिन्त्रत कर सकते हैं–

1. उत्तम तक्नॉलोजी (Superior Technology)–जिन उपकरणों से ध्वनि उत्पन्न होती है उन उपकरणों में उत्तम तक्नॉहोजी का प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. ध्वनि निवारक (Silencers)–यातायात के साधनों में ध्वनि निवारकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

3. पौधे तथा वनस्पति (Plants and Vegetation)–सड़कों के किनारे पौधे लगाने चाहिए। अधिक शोर वाले क्षेत्रों में बड़े पेड़ लगाने से ध्वनि का प्रभाव कम होता है।

4. लाउडस्पीकरों पर प्रतिबन्ध (Ban on loud-speakers)–लाउडस्पीकरों पर प्रतिबन्ध लगाना चहिए।

5. हॉर्न का उचित प्रयोग (Proper use of Horns)–मोटर गाड़ियों मे हार्न का प्रयोग तभी किया जाए जब आवश्यक हो।

6. आबादी से दूर कारखाने स्थापित करना (Setting up factories away from Population)–कारखानों से होने वाले ध्वनि प्रिदूषण से बचने के लिये कारखानों को घनी आबादी वाले इलाकों से दूर रखना चाहिए।

7. अवांछित ध्वनि पर प्रतिबन्ध (Ban on unwanted Sound)–अवांछित ध्वनियों पर रोक लगानी चाहिए।

8. प्रसारण पर नियन्त्रण (Control on Transmission)–घरे बना कर तथा दीवारों में शोर निवारक सामग्री का प्रयोग करके ध्वनि प्रदूषण से बचा जा सकता है।

9. स्त्रोत पर शोर को नियनित्रत करने के उपाय (Other measures of control of the noise at Source)–शोर निवारक यन्त्रों तथा अन्य उपायों से स्त्रोत पर शोर को नियन्त्रित करने के उपाय करने चाहिये। मशीनों पर शोर कम करने वाले आवरण लगा कर शोर के स्त्रोत पर ही नियन्त्रित किया जा सकता है।

10. ध्वनि-क्षेत्र में काम कर रहे व्यक्तियों की सुरक्षा (Protection of exposed Persons)–ध्वनि को डेसीबल में मापा जाता है। जिन कारखानों में 85 डेसीबल

से अधिक ध्वनि होती है वहां काम करने वाले व्यक्तियों की श्रवण योग्यता कम हो जाती है इसलिए कारखानों में अधिक ध्वनि क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों को कम शोर वाले स्थान में बदलते रहना चाहिए। समय समय पर इनकी श्रवण क्षमता की जांच होनी चाहिए। इन व्यक्तियों को कानों में पलग तथा मफस (Earplargs and Ear muffs) का प्रयोग करना चाहिए।

11. अधिनियम तथा कानून (Legislation and Law)–ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिए सरकार द्वारा अधिनियम तथा कानून बनाये गये हैं। यदि किसी कार्यकर्ता को शोर के कारण हानि होती है तो वह क्षतिपूर्ति के लिए दावा कर सकता है।

12. शिक्षा की भूमिका (Role of Education)–युवकों तथा वृद्धों को ध्वनि प्रदूषण की जानकारी देनी चाहिए तथा ध्वनि प्रदूषण के दुष्टप्रभावों को कम करने के उपाय बताये जायें। लोगों की सहायता के बिना ध्वनि प्रदूषण को रोकने कार्य सफल नहीं हो सकता। रेडियो, दूरदर्शन, लाउडस्पीकर, स्कूल पाठ्यक्रम द्वारा शोर प्रदूषण के दुष्परिणामों से शिक्षित किया जाए। संचार माध्यम के द्वारा भी ध्वनि प्रदूषण रोकने की शिक्षा दी जा सकती है।

पर्यावरण प्रदूषण के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य और भी ऐसे कारण है जिनके कारण पर्यावरण प्रदूषित होता है। वे निम्नलिखित हैं–

1. ठोस अपशिष्ट-प्रदूषण [Solid Waste Pollution]

हम बहुत से ऐसे ठोस पदार्थों का प्रयोग करते हैं जो प्रयोग करने के बाद बेकार हो जाते हैं और उन्हें हम बाहर फेंक देते हैं जैसे टीन के डिब्बे और प्लास्टिक के डिब्बे की अन्य वस्तुएं, पोलीथिन के थैले, कांच की बोतले आदि। इन फैंके हुए पदार्थों से जगह-जगह कूड़े का ढेर लग जाता है और इनसे पर्यावरण प्रदूषित होता है आजकल पोलीथिन के थैले जो फेंक दिये जाते हैं। प्रदूषण के एक बहुत बड़ा कारण है और एक गम्भीर समस्या भी है क्योंकि पोलीथिन न तो गलता है न ही सड़ता है। उद्योगों से भी कुछ अपशिष्ट पदार्थ बाहर पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।

ठोस अपशिष्ट के स्त्रोत [Sources of Solid Waste]

ठोस अपशिष्ट पदार्थ दो प्रकार के होते हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. ठोस अपशिष्ट पदार्थों का उत्पादन–औद्योगिक क्षेत्रों या कारखानों में जहां उत्पादन किया जाता है उन्हीं जगहों पर ठोस अपशिष्ट पदार्थों का उत्पादन होता है जिन्हें उद्योगों से बाहर फेंक दिया जाता है। ये ठोस पदार्थ निम्नलिखित स्त्रोतों से उत्पन्न होते हैं–

(1) औद्योगिक अपशिष्ट
(2) खेतों के लिए अपशिष्ट
(3) खदानों का अपशिष्ट
(4) मानवीय अपशिष्ट
(5) शहरी अपशिष्ट
(6) पैकिंग अपशिष्ट
(7) स्कूलों का अपशिष्ट
(8) रेडियो धर्मी अपशिष्ट
(9) अस्पतालों का अपशिष्ट आदि।

2. वस्तुओं के उपयोग के बाद अपशिष्ट पदार्थों की खपत–जब वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। उसके बाद वे बेकार हो जाते हैं और उन अपशिष्ट पदार्थों की खपत नहीं होती।

3. ठोस अपशिष्ट की समस्या (Problem of solid Waste)–ठोस अपशिष्ट पदार्थ का निस्तारण एक समस्या है कि इसे कैसे समाप्त किया जाये। आजकल तकनीकी के विकास के द्वारा ऐसी मशीनों का निर्माण किया गया है जो ठोस अपशिष्ट पदार्थ को पुनः चक्रीय द्वारा। उपयोगी बना देती है। लेकिन सभी प्रकार के अपशिष्टों को पुनः चक्रीय क्रिया द्वारा उपयोग में नहीं लाया जा सकता। कागज, गत्ता, समाचार पत्र को पुनः क्रिया द्वारा उपयोगी बना लिया जाता है। परन्तु भारी ठोस अपशिष्ट पदार्थ एक समस्या है।

ठोस अपशिष्ट प्रदषण का नियन्त्रण
[Control of Solid Waste Pollution]

पर्यावरण प्रदूषण को समाप्त करने के लिये ठोस अपशिष्ट पदार्थ के प्रदूषण को नियन्त्रित करना आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित सुझावों को अपनाया जा सकता है–

(1) पुन चक्रीय क्रिया विधि–ठोस अपशिष्ट पदार्थों को मशीन द्वारा उपयोगी बनाकर।

(2) कुछ अपशिष्ट को जला कर उष्मा का उपयोग कर सकते हैं।

(3) ठोस अपशिष्ट से बिजली का उत्पादन किया जा सकता है जैविक अपशिष्ट से बायोगैस तैयार कर उसे घरेलू कार्यों में उपयोग कर सकते हैं। कई प्रकार के अपशिष्टों को खाद में बेच देते हैं। उससे गन्दगी नहीं फैलती है।

2. ताप प्रदूषण
[Thermal Pollution]

ताप-मण्डल से भी पर्यावरण प्रदूषित होता है। ईंधन को जलाने से गर्मी उत्पन्न होती है। जब गर्म गैस या गर्म पानी को पर्यावरण में छोड़ा जाता है तो ताप-प्रदूषण होता है।

है। शहरों में गर्म वायु जलवायु को प्रभावित करती है। ताप बिजली घरों तथा अ औद्योगिक संस्थानों द्वारा नदियों, झीलों तथा तलाबों में फेंका गया गर्म पानी जल-जीव हानिकारक है। इससे पानी में रहने वाले जीव, मछलियां भर जाते हैं एवं वनस्पति भी न हो जाती है।

ताप-प्रदूषण को रोकना
[Prevention of Thermal Pollution]

ताप-प्रदूषण को रोकने के लिए निम्नालिखित उपायों को अपनाया जा सकता है-

(1) गर्म पानी के बहाव को रोकना (checking flow hot Water)-ग पानी को नदियों एवं झीलों आदि में जाने से रोका जाये।

(2) अनुसन्धान को प्रोत्साहित करना (Encouraging Research)-सरका अनुसन्धानों को प्रोत्साहित करे।

(3) लोगों को शिक्षित करना (Educating the People)-लोगों को शिक्षित किया जाये।

(4) नई तकनीक का प्रयोग (Use of new Techniques)-ताप-परियोजनाओं में नई तकनीक का प्रयोग किया जाये।

(5) प्रचार एवं प्रसार माध्यम (Propaganda and Publicity)-प्रचार एवं प्रसार माधयमों द्वारा लोगों में स्वस्थ वातावरण के प्रति चेतना जागृत की जाये।

3. रेडियो-धर्मी प्रदूषण
[Radio-active Pollution]

रेडियो-धर्मी पदार्थ बहुत हानिकारक होते हैं। आजकल परमाणु परीक्षण एवं परमाणु युद्ध में प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है। उर्जा-उत्पादक संयन्त्रों तथा रेडियो आइसोटोप्स का उपयोग दवाइयों में अधिक किया जाता है। औद्योगिक तथा अनुसन्धान कार्य रेडियो-धर्मी प्रदूषण के प्रमुख स्त्रोत हैं जिसके कारण पर्यावरण प्रदूषण हो रहा है। इस प्रकार के प्रदूषण के दो प्रमुख स्त्रोत हैं जो निम्नलिखित हैं-

(1) प्राकृतिक तथा (2) मानवीय।

(1) प्राकृतिक (Natural)-रेडियम यूरेनियम, थ्योरियम, पोटेशियम तथा कार्बन आदि चट्टानों से निकालने से प्रदूषण होता है।

(ख) मानवीय क्रियाएं (Human Activites)-इनमें परमाणु संयन्त्र, परमाणु बम्ब तथा अन्य रेजियेशन के स्त्रोत-रेडियो आइसोटोपस जैसे आइओडीन, स्ट्रेनियम, प्लोटीनम, कोबाल्ट आदि हैं। इन सब से पर्यावरण प्रदूषण होता है।

आइसोटोपस मनुष्य, पशु तथा पौधों में जमा हो जाता है। ये मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। बनावटी रेडियेशन से मनुष्य को हड्डियों और फेफड़ों की बीमारी हो जाती है। यह रेडियो-धर्मी पदार्थ सूचित या बिखरते रहते हैं तथा जैविक क्रियाओं पर निर्भर करते हैं। इन्हें पौधे सोखते हैं, जीवधारी लेते हैं जो हड्डियों तथा रक्त के टिसू में जमा हो जाते हैं। दूध के द्वारा मनुष्य के शरीर मे जाकर उसके स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

रेडियो-धर्मी प्रदूषण का नियन्त्रण
[Control of Radioactive Pollution]

आज विकसित देशों में समुद्र तथा मरुस्थलों में परमाणु परीक्षण किये जा रहे हैं। जिससे पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। परमाणु ऊर्जा का प्रयोग घरेलू तथा औद्योगिक कार्यों के लिए किया जाना चाहिए।

'विश्व स्वास्थ्य संघ' तथा संयुक्त राष्ट्र संघ देशों को परमाणु परीक्षण द्वारा पर्यावरण को प्रदूषित करने से रोक सकते हैं।

पर्यावरण अध्ययन को शिक्षा तथा औषधि विज्ञान में शामिल किया जाये। परमाणु अनुसंधान संस्थान में प्रभावशाली दवाओं का आविष्कार किया जा रहा है।

रेडियो धर्मी सरंक्षण कानून (1962) में बनाया गया जिसे 'एटोमिक इनर्जी एक्ट 1962' कहते हैं।

4. आणविक प्रदूषण
[Nuclear Pollution]

आज सम्पूर्ण विश्व आणाविक शक्ति के कारण युद्ध की सम्भावना से भयभीत है क्योंकि हर देश आणविक हथियारों को बनाने में लगा है। आणविक हथियारों के विस्फोट रेडियो धर्मिता चारों ओर फैल कर पर्यावरण को प्रदूषित करती है और मनुष्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है। आज भी जापान में हिरोशिमा तथा नागासाकी में हुए अणु बम के विस्फोट का प्रभाव दिखाई देता है।

विफैली गैसों का मानव जीवन पर प्रभाव पड़ता हैं यहां तक कि बच्चे भी विकलांग पैदा होते हैं। आणविक परीक्षणों से निकली विकिरणों के कारण टयूमर, कैंसर तथा मानसिक पिछड़ेपन जैसे रोग हो जाते हैं। विकिरणों से हड्डियां कमज़ोर हो जाती हैं। काम ग्रन्थियां (Sex glands) कमजोर हो जाते हैं। आणविक भट्टियों (Atomic Reactors) में काम करने वाले विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। उनकी दृष्टि भी कमज़ोर हो जाती है।

आणविक प्रदूषण को रोकना
[Control of Nuclear Pollution]

आणविक प्रदूषण पर नियन्त्रण करने के लिए निम्नालिखित उपाय अपनाये जा सकते

1. आणविक शक्ति का रचनात्मक प्रयोग (Constructive use of Atom Energy)–कार्यों के लिए आणविक शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

2. आणविक परीक्षण अति आवश्यक स्थिति में (Atomic tests Und unavoidable Conditions)–आणविक परीक्षण तभी किये जायें जब उनकी अत्यधि आवश्यकता अनुभव हो।

3. आणविक हथियारों पर प्रतिबन्ध (Ban on atomic Weapons)–आणवि हथियारों के बनाने पर प्रतिबन्ध लगा देने चाहिए इस कार्य में संयुक्त राष्ट्र संघ की सहाय ले सकते हैं।

4. रेडियो-धार्मिता से मानवता का बचाव (Defending humanity agains redioactivity)–आणविक शक्ति से निकलने वाली रेडियो-धार्मिता से मानवता क रक्षा की जानी चाहिए।

5. वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Outlook)–लोगों में जागृति एवं चेत उत्पन्न की जाये ताकि वे वातावरण को स्वस्थ बनाये रखें। लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण क विकास किया जाये।

6. रिसाब को रोकना (Prevention of Leakage)–आणविक भट्टियों से रेडि धर्मिता के रिसाब को रोका जाए

7. जनमत (Public Opinion)–शिक्षा के द्वारा सशक्त जनमत तैयार किया जा जो आणविक परीक्षणों का विरोध करे।

8. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग (International Co-operation)–अन्तर्राष्ट्रीय सहयो एवं सद्भावना के द्वारा भय के वातावरण को समाप्त किया जाये।

9. नई तकनीकें (New Techniques)–आणविक प्लांट के सुरक्षित संचाल की संहिता तैयार करने तथा विकिरणों से बचने के लिए बुनियादी सिद्धान्तों के पालन समूचे विश्व को रूचि दिखानी चाहिए। नई तकनीकों का प्रयोग किया जाये।

10. वैज्ञानिक उपलब्धियां धरोहर के रूप में (Scietific achievements Heritage)–वैज्ञानिक उपलब्धियां किसी एक देश की नहीं सम्पूर्ण मानवता की धरोहर है।

11. रेडियो-धार्मिता के अपशिष्ट को इकट्ठा करना (Storage of Radio active Waste)–रेडियो धार्मिता के अपशिष्ट को ऐसी जगह इक्ट्ठा किया जाये जहां व बिना कोई हानि पुहंचाये क्रमश: नष्ट हो जाये।

पर्यावरण-प्रदूषण तथा विघटन में अन्तर [Difference between Pollution and Degradation]

पर्यावरण प्रदूषण को जानने के लिए पर्यावरण प्रदूषण तथा विघटन में अन्तर जानना भी आवश्यक है। पर्यावरण प्रदूषण तथा विघटन में निम्नलिखित अन्तर हैं-

पर्यावरण प्रदूषण	पर्यावरण विघटन
1. मानवीय क्रियाओं द्वारा पर्यावरण में प्रदूषण होता है।	1. प्राकृतिक तथा मानवीय क्रियाओं से पर्यावरण विघटन होता है।
2. प्रदूषण का दुष्प्रभाव निरन्तर धीमी गति से होता रहता है।	2. विघटन का कुप्रभाव अचानक होता है, इसका पूर्व अनुमान ही लगाया जा सकता है।
3. प्रदूषण अपेक्षाकृत संकुचित प्रत्यय है।	3. विघटन अपेक्षाकृत व्यापक प्रत्यय हो जो गम्भीर घटनाओं के कारण होता है।
4. प्रदूषण का कुप्रभाव स्थानीय तथा क्षेत्रीय होता है।	4. विघटन का प्रभाव स्थानीय, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय होता है।
5. परिस्थिति-तन्त्र को प्रभावित करता है।	5. परिस्थिति में असन्तुलन पैदा करता है।
6. पर्यावरण की गुणवत्ता मे धीरे-धीरे गिरावट आती है।	6. पर्यावरण की गुणवत्ता अचानक कम हो जाती है।
7. प्रदूषण को मानवी प्रयासों तथा उपयोग से कम कर सकते हैं।	7. मानवीय प्रयासों से पूर्वानुमान लगाकर सावधानी बरती जा सकती है तथा तत्काल राहत के साधन जुटाये जा सकते हैं।
8. जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात का विकास कारखाने आदि मानवी क्रियाओं में आते हैं। वनों का काटना, कृषि में कीटनाशक दवाओं तथा रसायनिक खादों का प्रयोग करना, तकनीकी विकास तथा अधिक उपयोग करना।	8. बाढ़ का आना, भूकम्प भूचाल, आंधी, ज्वालामुखी, विस्फोट आदि प्राकृतिक प्रक्रियाओं में आते हैं। मानवीय क्रियाओं में बांध का टूटना, परमाणु बम्बों का प्रयोग, रेल-दुर्घटना, समुद्री जहाज़ का डूबना आदि।

पर्यावरण विघटन के कारण
[Causes of Environment Degradation]

समाज में हो रहे आर्थिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक विकास के कारण अनेक प्रकार की गम्भीर सम्स्याएं पर्यावरण में उत्पन्न हो रही हैं। आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, तकनीकी विकास के कारण ऐसी घटनाएं घटती हैं। जिनसे पर्यावरण विघटन तथा पर्यावरण प्रदूषण हो रहा है। पर्यावरण विघटन के कुछ निम्नलिखित कारण हैं–

1. वनों का काटना–कृषि के लिये भूमि की आवश्यकता होती है इसलिए वनों को काटा जा रहा है जिससे पर्यावरण की गुणवत्ता कम हो रही है।

2. जनसंख्या वृद्धि अथवा विस्फोट–जनसंख्या वृद्धि की आवश्कताओं को पूर्ण करने के लिये प्राकृतिक संसाधनों का अधिक प्रयोग किया जाता है। जबकि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं।

3. कृषि का विकास–जनसंख्या वृद्धि के कारण अधिक उपज की आवश्यकता होती है इसलिए अधिक उपज प्राप्त करने के लिए खेतों में रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाएं छिड़की जाती हैं। जिससे मिट्टी की गुणवत्ता में कमी होती है और पर्यावरण विघटन होता है।

4. औद्योगिक विकास–दिन प्रतिदिन औद्योगिक विकास हो रहा है। जिसके कारण पर्यावरण विघटन तथा प्रदूषण हो रहा है।

5. अधिक धूल और धुआं वायु को प्रदूषित करते हैं झुग्गी झोपड़ी में रहने वाले लोग भी प्रदूषण करते हैं।

6. आधुनिक उत्पादक तकनीकी–विशाल बांधों का निर्माण, बड़ी–बड़ी इमारतों को बनाने, जलाशय बनाने के लिए पृथ्वी की चट्टानों में असन्तुलन होने से संकट उत्पन्न होते हैं।

पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए 'पर्यावरणीय–प्रबन्ध योजना' (Environmental Management Plan–EMP) बनाई गई है। इस योजना में निम्नलिखित कार्यों को शामिल किया गया है–

(1) पर्यावरण के कुप्रभावों से सुरक्षा करना तथा रोकना।

(2) घटनाओं, संकटों तथा प्राकृतिक प्रकोप के लिए राहत योजना तैयार करना।

(3) संकट से पीड़ित व्यक्तियों के लिए पुनर्वास योजना।

(4) संरक्षण अथवा सुरक्षा के कार्यक्रम को लागू करने के बाद उनकी प्रभावशीलता का आंकलन करके पृष्ठपोषण देना।

पर्यावरण प्रदूषण में शिक्षा की भूमिका [Role of Education in Environment Pollution]

प्रदूषण की समस्या एक गम्भीर समस्या है। इसका समाधान केवल शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा सामान्य व्यक्ति को भी पर्यावरण प्रदूषण के खतरे से सचेत किया जा सकता है। जिससे व्यक्ति न तो स्वयं कोई ऐसा कार्य करे जिससे प्रदूषण में वृद्धि हो और न ही कोई ऐसा कार्य होने दे। शिक्षा के द्वारा नागरिकों को यह समझाया जाये कि यदि हम पर्यावरण को दूषित करेंगे, समुद्र और नदियों में कूड़ा-करकट या जहरीले पदार्थ फैंकेगे, खाद्य पदार्थों को अपवित्र करेंगे तथा ताप प्रणाली में हस्तक्षेप करेंगे तो हमारा जीवन अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रह सकता। यदि हम वायुमण्डल को दूषित करेंगे तो मनुष्य ही नहीं इस पर रहने वाले अन्य जीवों का जीवन भी दूभर बन जायेगा।

शिक्षा का आधार व्यापक होना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति वैज्ञानिक, प्रशासक इंजीनियर नीति निर्धारक तथा जनसाधारण तक पहुंचे। इसके लिए संचार माध्यमों रेडियो, टेलीविज़न, चलचित्र एवं समाचार पत्रों का सहयोग लिया जाना चाहिए। शिक्षक तथा वैज्ञानिक निर्णय कर्त्ताओं को प्रशिक्षित करें. इसके लिए निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं-

(1) शिक्षा के सभी को पर्यावरण संकट एवं प्रकोपों की जानकारी देनी चाहिए तथा उनमें चेतना का विकास किया जाना चाहिए।

(2) प्राकृतिक प्रकोपों से बचा तो नहीं जा सकता पर इन घटनाओं की भविष्यवाणी से सावधानी कर सकते हैं। संचार माध्यमों से इन घटनाओं की पूर्व सुरक्षा सबको दी जानी चाहिए। सम्भव सुरक्षा के उपायों को अपनाया जाये।

(3) संकट के प्रभाव को कम करने के लिए तत्काल राहत विधियों को समझाना चाहिए।

(4) शिक्षा द्वारा व्यक्तियों को नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों का विकास किया जाये। आर्थिक मूल्यों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। अपितु पर्यावरण की गुणवत्ता बनाये रखनी चाहिए।

आज के समय में पर्यावरण-शिक्षा की अधिक आवश्यकता है इसलिये इसकी व्यवस्था उचित ढंग से की जानी चाहिए। पर्यावरण शिक्षा व्यक्तियों में पर्यावरण के सम्बन्ध में सोचने, करने तथा अनुभूति करने का विकास करती है। यह कार्य सामाजिक विज्ञान तथा व्यावहारिक विज्ञान द्वारा भी किया जाना चाहिए। यह सुझाव अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में दिया गया है कि पर्यावरण शिक्षा द्वारा नैतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का विकास पर्यावरण के सम्बन्ध में करना चाहिए। शिक्षाविदों को भौतिक, जीव-विज्ञान, समाज, मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण का ज्ञान होना चाहिए। परिस्थितिकी अध्ययन की हमारी शिक्षा में आवश्कता है।

शिक्षा में पाठ्यक्रम एवं सहगामी क्रियाओं द्वारा विद्यार्थियों को प्रदूषण की जानकारी दी जा सकती है।

पर्यावरण के सन्तुलन की शिक्षा देने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाये जा सकते है-

1. प्रचार (Publicity)-रेडियो पर पर्यावरण की शिक्षा के वकत्व्य प्रसारित किये जाये। समाचार पत्रों में पर्यावरण पर लेख छापे जायें। इस कार्य में दूरदर्शन का प्रयोग भी प्रभावशाली रहेगा।

2. सैमीनार वाद-विवाद एवं भाषण (Seminars debates and Lectures)-शिक्षा संस्थानों में पर्यावरण की सुरक्षा के लिये सैमीनार वाद-विवाद भाषण आयोजित किये जाने चाहिए।

3. पर्यावरण शिक्षा अध्यापक शिक्षा का एक अंग (Environment education as a part of teacher Education)-पर्यावरण शिक्षा का अर्थ पर्यावरण के सन्दर्भ में पौधों, पशुओं लोगों संस्थाओं का अध्ययन करना है। पर्यावरण शिक्षा को शिक्षक-शिक्षा का एक अनिवार्य अंग बनाना चाहिए।

4. पर्यावरण में शोध कार्य (Research in Ecology)-पर्यावरण की समस्या व उनके समाधान का ज्ञान प्राप्त करने के लिये पर्यावरण में शोध कार्य को प्रोत्साहन दिया जाये।

5. पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन (Environmental Studies)-स्कूलों में पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन को अनिवार्य बनाया जाये। C.B.S.E. तथा अन्य राज्यों के स्कूल शिक्षा बोर्ड द्वारा इस विषय को स्कूलों में पढ़ाया जा रहा है। पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रम में N.C.E.R.T. द्वारा निर्मित पाठ्यक्रम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

6. स्वीकारात्मक दृष्टिकोण (Positive Attitude)-लोगों को शिक्षित किया जाये कि वे पर्यावरण के प्रति स्वीकारात्मक दृष्टिकोण अपनाये। पर्यावरण की शिक्षा द्वारा लोगों को ऐसी सूचनाएं प्रदान की जानी चहिए जो इन्हें जैविक-भैतिक पर्यावरण का बोध करा सकें। पर्यावरण की शिक्षा द्वारा लोगों को पर्यावरण की समस्याओं एवं समधानों के लिए प्रेरित करना चाहिए कि वे प्रदूषण मुक्त वातावरण बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूभिका निभा सकते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के समाधान में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमि का हो सकती है। शिक्षा द्वारा ही लोगों को प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के प्रदूषण तथा इसके कुप्रभावों के सम्बन्ध में समझाया जा सकता है। पर्यावरण शिक्षा लोगों को मानसिक रूप से तैयार करती है कि वे पर्यावरण में सुधार करें। उन्हें पर्यावरण के प्रदूषण मुक्त बनाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सहायता प्रदान कर सकती है। इसके लिए औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. प्रदूषण की परिभाषा लिखे। वायु प्रदूषण के कौन से स्रोत हैं? वायु प्रदूषण के प्रभाव लिखें।
(Define pollution. What are the sources of air pollution? State the effects of air pollution.)

2. जल प्रदूषण क्या है? जल प्रदूषण के स्रोत क्या हैं? जल-प्रदूषण के प्रभाव लिखें और उसके रोकने के उपाय भी लिखें।
(What is water pollution? State the souces of water pollution. State its effects and suggest meansures to prevent it.)

3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें–
(1) वायु प्रदूषण को रोकना
(2) जल-प्रदूषण को रोकना
(3 ध्वनि-प्रदूषण को रोकना
(4) भू-प्रदूषण को रोकना
[Write short notes on the following :
(1) Prevention of Air Pollution
(2 Prevention of Water Pollution
(3) Prevention of Noise Pollution
(4) Prevention of Soil Pollution.]

❑

Unit–VII

मिले जुले (मिश्रित) पर्यावरण मुद्दे

[Miscellaneous Environment Issues]

1. जंगल और उनका संरक्षण
   (Forest and their Conservation)
2. वन्य जीवन और उसका सरंक्षण
   (Wild life and its Conservation)
3. ऊर्जा संसाधनों का सरंक्षण
   (Conservation of Energy Resources)
4. ऊर्जा के वैकल्पिक संसाधन (स्त्रोत)
   (Alternate sources of Energy)
5. अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) का उचित प्रबन्धन
   (Waste Management)
6. जनसंख्या और पर्यावरण
   (Population and Environment)
7. निवास स्थान (घर के अन्दर) का पर्यावरण
   (Indoor Environment)

1. जंगल और उनका संरक्षण
[Forest And Their Conservation]

जंगल अपने अस्तित्व को बनाये रखने की चिन्ता किये बिना दूसरों प्राणियों को आश्रय देता है और उनकी रक्षा करता है। यहां तक कि जो जंगल को कुल्हाड़े से समाप्त करने का प्रयास करते हं यह उनको भी छाया प्रदान करता है। जंगल से अनेक प्रकार के लाभ होने के बावजूद मानव जाति ने समस्त विश्व में जंगलों को बुरी तरह से नुकसान पहुंचाना शुरु कर दिया है और जंगलों का विनाश बढ़ता जा रहा है और इसके परिणामस्वरूप साधारण मौसम ने खतरों की घण्टी बजानी प्रारम्भ कर दी है। साईक्लोने द्वारा संसार के भिन्न-भिन्न भागों में जैसे फिलीपाईन, बंगलादेश और भारत में हज़ारों लोगों के मरने का कारण जंगलों का विनाश है।

जंगलों का महत्व
[Importance of Forests]

जंगल पृथ्वी का महत्वपूर्ण अंग हैं और मानव जाति का पोषक होने के कारण इसका पृथ्वी पर महत्वपूर्ण स्थान है। जंगल अपने आप में ही पूरी तरह से परिस्थिति-तन्त्र (प्रणाली) इकोसिस्टम (Ecosystem) है। जंगल मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और हर प्रकार के सुख शान्ति प्रदान करता है। मनुष्य ने आज वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति की सहयता से लकड़ी के विकलप के रूप में अनेक चीज़े विकसित कर ही हैं परन्तु ये सभी वस्तुएं लकड़ी का स्थान नहीं ले सकी अर्थात् लकड़ी का अच्छा विकलप साबित नहीं हुई है। आज भी इमारती लकड़ी की आवश्यकता कम नहीं हुई है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। भवनों को बनाने के लिये लकड़ी का प्रयोग मूल रूप से होता है। अधिकांश रूप से मकानों और दफतरों का फर्नीचर भी लकड़ी से ही बनाया जाता है। रेलवे लाइन की पटरियों को बनाने के लिये भी लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त और भी घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार जंगल मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु मूलभूत है और इसकी सुरक्षा हम सभी के लिये इस लिये आवश्यक है क्योंकि जंगल हमारे लिये वरदान हैं।

जंगलों की सुरक्षा (संरक्षण)
[Conservation fo Forests]

जंगलों की सुरक्षा हेतु हमें निम्न लाभ होते हैं–

1. वातावरण का संरक्षण (Protection of Environment)–अगर जंगलों का सुरक्षित रखा जायेगा तो वातावरण (पर्यावरण) की भी सुरक्षा होगी। जंगलों की यह विशेषता है कि वे गर्मी और प्रकाश को अपने में लीन कर लेते हैं और इस प्रकार तापमान को सामान्य रखते हैं। वर्षा का सन्तुलन बनाये रखते हैं। गैसों के चक्र को भी सहन करते हैं। प्राकृतिक और दूसरे जीवाणुओं के बीच उनको रहने का स्थान देकर सन्तुलन बनाते हैं। वे मिट्टी के कटाव और पानी के बहाव को भी रोकते हैं। इस प्रकार जंगल पर्यावरण को सन्तुलित बनाये रखने में सार्थक और सशक्त भूमिका निभाते हैं।

2. कच्चा माल (Raw Material)–हमारे उद्योग कच्चे माल पर निर्भर करते हैं जो हमें जंगल से मिलता है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में जंगलों का बहुत बड़ा हाथ होता है। कच्चा माल जैसे की इंधन, लकड़ी, इमारती लकड़ी, लाख, गूंद, रबड़, शहद, दवाइयां पटसन, कपास, और फल आदि जंगलों से ही प्राप्त होते हैं।

3. जीव आवास (Habitat)–जानवरों और पक्षियों की नस्लों को रहने के लिये जंगल आवास देते हैं। जंगल में रहकर ही सारे जीवित जीवाणु अपने जीवन की क्रियाएं करते हैं और जंगल में ही उनकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। सभी प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओं को भी जंगल में रहने के लिये आवास प्राप्त होता है।

4. पानी के बहाव को सन्तुलित करना (Balanced water Flows)–जब बहुत अधिक वर्षा होती है तो जंगल की मिट्टी उस वर्षा के पानी को अपने अन्दर सोख लेती है जो वहां से बहता है, इस प्रकार पानी के बहाव को संतुलित बनाये रखने में जंगल सार्थक कार्य करते हैं। जंगल दरियाओं, कुओं और झरनों के पानी के बहाव को नियमित करता है। पृथ्वी के भू-तल के नीचे पानी में वृद्धि करने में जंगल सहायता करता है।

5. संतुलित वर्षा (Balanced Rain Fall)–जंगल वर्षा के लिये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं क्योंकि जंगल वर्षा के बरसने के दौरान वाष्पीकरण द्वारा बादलों के निर्माण में सहायता करता है। इसलिए जहां घने जंगल हैं। वहां वर्षा अधिक होती है। और कम जंगल हैं या जंगल रहित क्षेत्र हैं वहां अपेक्षाकृत वर्षा कम होती है। धरती पर पानी का मुख्य साधन वर्षा ही है।

6. औषधीय स्त्रोत (Medicinal Resources)–जंगलों में उगे हुए वृक्षों एवं जड़ी-बूटियों से अनेक प्रकार की औषधियां प्राप्त होती हैं। बहुत सी बीमारियां प्राकृतिक दवाइयों से ठीक हो जाती हैं। बहुत से लोग जंगल में प्राप्त जड़-बूटियों को ही दवाई के

में प्रयोग करते हैं। टैकसास नामक वृक्ष की छाल से कैंसर की बीमारी का इलाज किया ता है। जंगलों का औषधीय दृष्टि से बहुत महत्व है।

7. **मिट्टी की उपज क्षमता में वृद्धि** (Increase in the soil Productivity)–लों में बहुत से जानवरों तथा पौधों के मृतक शरीर पड़े रहते हैं। जिन पर गलने वाले ाणु काम करते हैं जो इन्हें अच्छी खाद में बदल देते हैं। इसलिए जंगल सड़ाने वाले वों के लिये अच्छा भण्डार है। इस तरह की खाद वाली मिट्टी बहुत उपजाऊ होती है।

8. **प्राकृतिक सौन्दर्य** (Natural Aesthetic Value)–जिन क्षेत्रों में जंगल होते वहां के प्राकृतिक दृश्य अपनी सुन्दरता के कारण लोगों को आकर्षित करते हैं। ऐसी गहों पर बहुत से पर्यटक आते हैं। ऐसे जंगल लोगों को मानसिक शान्ति प्रदान करते हैं।

(9) **जलचक्र तथा वायु चक्र** (Water cycles and other gaseous Cycles)–पानी का वाष्पीकरण फिर उसका बरसना और पत्तों द्वारा पानी का झड़ना आदि कार्य में जंगल अपनी भूमिका अदा करता है। यही वातावरण में ऑक्सीजन चक्र, कार्बन क्र और नाईट्रोजन चक्र को कायम रखता है।

(10) **आर्थिक योगदान** (Economic Contibution)–जंगली संसाधन आजकल इतने कीमती हैं कि वे अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में करोड़ों रुपये में बिकते हैं। इस प्रकार जंगल देश की आर्थिक उन्नति में योगदान करते हैं।

(11) **प्रदूषण नियन्त्रण** (Pollution Control)–आजकल प्रदूषण की समस्या दिन प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण पर नियन्त्रण करने में जंगलों का महत्वपूर्ण योगदान है। मनुष्य अपनी क्रियाओं द्वारा प्रदूषण फैलाते हैं। पर जंगल उस प्रदूषण को नियन्त्रित करने में मदद करते हैं। बहुत से ऐसे तत्व जो मनुष्य के लिये हानिकारक हैं ऐसे रासायनिक तत्वों को पौधे अपने अन्दर समा लेते हैं।

जंगल की कटाई और जंगल उगाना (Deforestation and Afforestation)

मनुष्य ने अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए और अपने स्वार्थ के कारण जंगलों को काट कर धरती में बदल दिया है। जबकि जीवित प्राणियों के लिए जंगलों का बहुत महत्व है। जंगल के काटने से प्रकृति का संतुलन भी बिगड़ गया है इसलिये हमें चाहिये कि जंगलों की कटाई पर रोक लगाई जाये और जंगल उगाये जायें इसी में मानव की भलाई है।

जंगलों की कटाई (Deforestation)–जंगलों को काटने से अभिप्राय है–वृक्षों को काटना। जैसे जैसे जनसंख्या बढ़ती गई मनुष्य की जरूरतें बढ़ने लगी और उसने अपने प्रयोजन को पूरा करने के लिए जंगल काटने शुरु किये। 1987 के संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण

कार्यक्रम (U.N.E.P.) के अनुसार 29 करोड़ हेक्टर एकड़ भूमि से जंगल काटे ग हैं। द्वितीय महाविश्व युद्ध के बाद जंगलों की कटाई तीव्र गति से बढ़ी। उद्योग, मकान एवं शहरी क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये जंगल का रहे हैं।

आजकल उद्योगों का विकास तीव्र गति से हो रहा है और उद्योगों के लिये को काटा जा रहा है। जंगल के उपजाऊ क्षेत्रों को कृषि के लिए प्रयोग में लाने के जंगलों को काटा जाता है। एक वर्ष कुछ जंगल काटे जाते हैं उस पर खेती की दूसरे वर्ष उस क्षेत्र को खाली छोड़ दिया जाता है और फिर दूसरे जंगल काटे जा

जंगलों को काटे जाने से पर्यावरण की गुणवत्ता में कमी आती है पर लोग अ के कारण इस ओर ध्यान नहीं देते। उनमें पर्यावरण के प्रति जागरूकता नहीं होती है। ने अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का गलत प्रयोग किया इस कारण अपने जीवन को खतरे में डाल रहा है। भूमि का कटाव, भूमि का खि भूमि का गिरना, सागरों के तल का ऊंचा होना, बाढ़ आना सूखा पड़ना आदि खतरे के जीवन में बढ़ रहे हैं। इसलिए जंगल के काटने पर रोक लगानी चाहिए और जंग सुरक्षा करें।

जंगल उगाना (Afforestation)–जंगल मानव जीवन के लिये बहुत लाभ हैं इसलिए अधिक से अधिक पौधों को लगाना चाहिए। जिन क्षेत्रों में जंगल काटे ग वहां वृक्षारोपण किया जाए। प्रकृति के सन्तुलन को बनाए रखने के लिए जंगलों का कम 33% होने चाहिए। जो अब 20% रह गया है। भारत में जंगलों की स्थिति नि की ओर बढ़ती जा रही है।

सरकार ने जंगल उगाने के लिए पंचवर्षीय योजनाएं बनाई हैं। पहली पंच योजना में ऐसे वृक्ष लगाएं जिनका आर्थिक महत्व हो। दूसरी योजना में खराब हुई भू फिर से उपजाऊ बनाया गया, तीसरी योजना में जल्दी उगने वाले पौधे और कीमती जैसे टीक, शीशम आदि लगाएं। चौथी योजना में बाढ़ रोकने के लिए वृक्ष लगाएं छठी योजना में सामाजिक तौर पर जंगली योजनाएं लागू की गईं। सातवीं पंच पर्यावरण की रक्षा के लिए जंगल लगाए गए।

जिस प्रकार फेफड़े खराब हो जाये तो मनुष्य के लिए जीना कठिन हो जाता है प्रकार जंगल पृथ्वी के फेफड़े हैं यदि जंगल नहीं रहेंगे तो पृथ्वी का सन्तुलन बिगड़ ज

पृथ्वी के पर्यावरण के विनाश को बचाने के लिए कुछ लोग जागृत हुए और उन लोगों का विरोध किया जो प्रकृति का विनाश कर रहे हैं।

चिपको आन्दोलन (Chipko Andolan)– ऐसा ही एक आन्दोलन था लोगों ने जंगल के साथ मनुष्य द्वारा किये गये निर्दयतापूर्ण व्यवहार का विरोध कि

"प्रकृति का अस्तित्व मानव के बिना भी बना रह सकता है लेकिन मानव का अस्तित्व प्रकृति के बिना सम्भव नहीं है।"

2. वन्य जीवन और इसका संरक्षण (सुरक्षा)
[WILD LIFE AND ITS CONSERVATION]

मानव ने अपनी गतिविधियों के द्वारा प्रकृति को सकारात्मक रूप से प्रभावित न करके नकारात्मक रूप से अधिक प्रभावित किया है जैसे कि वनों का कटाव, वन्य जीवन को क्षति पहुंचाना और प्रदूषण के द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य और इसके सन्तुलन को बिगाड़ना आदि। मनुष्य ने वन्य जीवन को अत्याधिक प्रभावित किया है जिससे प्रकृति वन के सौन्दर्य वंचित हो रही है।

वन्य जीवन प्रकृति का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। वन्य जीवन के क्षेत्र में सब प्रकार के जानवर और पौधे आ जाते हैं जोकि प्राकृतिक वातावरण में ही सुरक्षित रहते हैं। जंगल की तरह वन्य जीवन भी प्रकृति का महत्वपूर्ण अंग है। वन्य जीव भी प्रकृति में बायोलोजीकल नियन्त्रण में अपना योगदान करते हैं। जैसे पक्षी शिकार करते हैं, सांप दांतों से कतरने वाले जीवों पर नियन्त्रण करते हैं नहीं तो वे फसल को बरबाद कर दें। मनुष्य के कार्यों से पर्यावरण पर ऐसा प्रभाव पड़ा है कि जानवरों और पौधों का जीवित रहना असम्भव हो गया है। कई प्रकार के वन्य जीव और पौधे प्राय: लुप्त हो गये हैं। लगभग 25000 पौधों की नसलें और एक हज़ार की रीढ़ की हड्डी वाले जानवर समाप्त हो गये हैं। वन्य जीव जन्तुओं की समृद्ध एवं विविध प्रकार के पाये जाते हैं। जानवरों को इकासी स्तनधारी, संतालीस पक्षी, पन्द्रह रेंगने वाले जानवर, तीन जल स्थल चर और बहुसंख्यक प्रकार के जानवर जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

वन्य जीवन की सुरक्षा
[Conservation of Wild Life]

वन्य जीव भी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग हैं इसीलिए उनकी सुरक्षा भी आवश्यक है। उनकी सुरक्षा निम्नालिखित कारणों से जरूरी है–

1. नैतिक (Ethical)–प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह वन्य जीव जन्तुओं को खत्म होने से बचाये और इन्हें अपनी प्राकृतिक धरोहर समझ कर आने वाली पीढ़ी को सौंपे।

2. सौन्दर्य सम्बन्धी (Aesthetic)–प्राकृतिक सुन्दरता हर व्यक्ति के मन को खुश करती है, इसलिए वन्य जीव-जन्तुओं की हमें रक्षा करनी चाहिए।

3. वैज्ञानिक (Scietific)–वन्य जीवन बायोलोजीकल विज्ञान के लिए साधन एवं सामान प्रदान करता है। हमें इसे नष्ट होने से बचाना है। क्योंकि मनुष्य का जीवन प्रकृति पर निर्भर है।

4. आर्थिक (Economic)–वन्य जीवन से हमें अनेक प्रकार की वस्तुएं प्राप्त होती हैं। वन्य जीवन आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इससे अनेक प्रकार की औषधियां भी प्राप्त होती हैं। जिनसे मानव जीवन की रक्षा होती है।

प्रत्येक जीव का पर्यावरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है किसी भी जीव की नसल के नष्ट होने से पर्यावरण को हानि होती है जैसे उत्तरी भारत में एक बार चीलों की संख्या कम हो गई थी तो वहां अनेक प्रकार की बीमारियां फैल गईं, इसलिए हर प्रकार के जीव जन्तु की रक्षा करनी आवश्यक है।

वन्य जीवन सुरक्षा के उपाय
[Steps taken for the Conservation of Wilds]

भारत देश में आध्यात्मिक दृष्टि से और पारम्परिक तौर पर वन्य जीवन की सुरक्षा को महत्वपूर्ण माना जाता है। हमारे संविधान में भी वन्य जीवन सुरक्षा का अधिनियम है। वन्य जीवन की सुरक्षा के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

1. सुरक्षा घरों से बाहर (Ex-situ Conservation)–जिन नस्लों के खत्म होने का भय हो उन्हें उचित स्थानों पर रखना चहिए जैसे कि चिड़ियाघर ऐकूरियम, बोटोनीकल बागों आदि में।

2. सुरक्षा घरों के अन्दर (In-situ Conservation)–दुर्लभ नस्लों की सुरक्षा उन के प्राकृतिक स्थानों में की जाये। यह सुरक्षा अदृश्य रूप से दूसरे वन्य जीवों के स्थान पर अधिक प्रभाव डालती है।

वन्य जीवन को सुरक्षित रखने के कुछ अन्य निम्नलिखित तरीकें हैं–

1. वन्य जीवन सुरक्षा अधिनियम 1972 (Wild life protection Act 1972)–सन् 1972 में वन्य जीवों की सुरक्षा के लिये यह अधिनियम बनाया गया था। इसमें वन्य जीवन के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया गया था। यह अधिनियम पक्षी एवं जानवरों के व्यापार को नियन्त्रित करता है। अधिनियम धारा 51 के तहत कुछ सजाएं भी निर्धारित की गई हैं जो निम्नालिखित हैं–

(1) कोई भी व्यक्ति जो इस आज्ञा या लाईसेन्स का दुरप्रयोग करता है उसे 3 वर्ष की कैद की सजा या 25000 रुपये का जुर्माना होना चाहिए या दोनों ही।

(2) यदि यह अपराध बार-बार किया जायेगा तो उस व्यक्ति का लाइसेंस रद्द कर दिया जायेगा।

(3) जो व्यक्ति उन जानवरों या उनसे उत्पादित वस्तुओं का व्यापार करता है जो कि रैड डैटा बुक (Red Data Book) में जो वन्य जीव सुरक्षा वाली है, उसे सात साल की कैद या 500 रूपये जुर्माना किया जायेगा।

यह अधिनियम 1986 और 1991 में संशोधित किया गया था जिसमें इन वन जीवों की सुरक्षा राष्ट्रीय पार्क और अभयारण्यों की देखभाल करने का कार्य केन्द्र व राज्य सरकारों को सौंपा गया।

(*i*) मद्रास का हाथी सुरक्षा अधिनियम, 1973

(The Madras wild Elephant preservation Act 1973)

(*ii*) अखिल भारतीय हाथी सुरक्षा अधिनियम 1979

(All India Elephant preservation Act 1979)

(*iii*) वन्य पशु तथा पक्षी सुरक्षा अधिनियम, 1912

(Wild birds and animal protection Act, 1912)

(*iv*) बंगाल गैडा सुरक्षा अधिनियम, 1932

(The Bangal thinoceros protection Act, 1932)

2. भारतीय वन्य जीवन बोर्ड की स्थापना (Estabilsihment of Indian Board of Wild Life)-वन्य जीवन की सुरक्षा के लिये 1952 में यह अधिनियम बनाया गया। जिसमें 1991 में कुछ परिवर्तन हुए। वे परिवर्तन निम्नलिखित है-

(1) वन्य जीव की सुरक्षा के लिये भारत सरकार की सलाहकार समिति को कायम करना।

(2) लोगों को शिक्षित करना जिससे वे वन्य जीवन में रूचि ले सकें।

(3) वन्य जीवन की सुरक्षा की स्थिति का अध्ययन करना।

(4) वन्य जीवन तथा इनसे उत्पन्न वस्तुओं के आयात निर्यात के बारे में सुझाव देना।

(5) वन्य जीवों की अभयारण्यों, वनों तथा चिड़ियाघरों के प्रबन्ध के बारें में बोर्ड ने सुझाव दिये थे।

3. भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड (Animal welfare Board of India)-इस बोर्ड की स्थापना भारत सरकार के वातावरण तथा वन मन्त्रालय के आधीन की गई और निम्नलिखित सुझाव दिये गये-

(1) वन्य जीवों को अत्याचार से सुरक्षित रखना।

(2) वन्य जीवन की सुरक्षा और विकास की योजनाओं को विकसित किया जाना चाहिए।

(3) वन्य जीवों के लिये अस्पतालों और कल्याणकारी विभागों को स्थापित करना।

4. राष्ट्रीय पार्क और वन्य जीवों के लिये शरण स्थलियों की स्थापना (Estalblishment of national parks of wild life Sanctuaries)–ऐसे राष्ट्रीय पार्क तथा वन्य जीव रक्षण स्थलों की स्थापना की जाये जहां वन्य जानवरों और पौधों की सुरक्षा की जा सके। भारत में ऐसे 496 वन्य जीवों के रक्षण स्थल हैं जिनमें 75 चिड़ियाघर और 42 वन्य जीवों की रक्षा के लिये शरणगाह हैं। भारत सरकार ने इन रक्षण स्थलों को 50% से 100% तक की आर्थिक सहायता दी है।

5. विशेष वन्य-जीव जातियों की सुरक्षा के लिये विशेष योजनाएं (Special schemes for the conservation of particular Species)–ऐसी बहुत सी योजनाएं बनाई गई जिनसे वन्य जीव जातियों की सुरक्षा की जा सके। वे योजनाएं निम्नलिखित हैं–

हेगुंल योजना, (1970), (Hangul scheme, 1970) टाईगर प्रोजैक्ट योजना 1973 (Tiger shceme, 1970), शेर योजना, 1972 (Lion project scheme, 1972), मगरमच्छ योजना (Crocodile project), हिरण योजना (Brown Antiered Deer 1981), गैंडा (Rhinocers 1987), हिम चीता (Snow leopard, 1987), हाथी (Elephant 1991), आदि इन योजनाओं के अन्तर्गत इन जानवरों को बचाया और सुरक्षित रखा गया है।

6. चिड़ियाघर (Zoological Park)–दिल्ली में राष्ट्रीय चिड़ियाघर है जिसमें 1198 जानवरों की नस्लें हैं। जिनमें 54 स्तनधारियों की नस्लें हैं, 25 नस्लें पक्षियों की, 16 नस्लें रेंगने वाले जानवरों की हैं। ऐसे चिड़ियाघरों को देखने से बच्चों के ज्ञान में वृद्धि होती है और बच्चे बहुगत रूचि से इन्हें देखते हैं। इन सभी प्रकार के जीवों की जानकारी प्राप्त होती है।

पदमजा नायडू हिमालयन चिड़ियाघर (Padmaya Naidu Himalayan Zoological Park)–यह चिड़ियाघर दार्जलिंग की पहाड़ियों में पश्चिमी बंगाल में है यहां बहुत से जानवरों और पौधों की नस्लें संकट में हैं।

7. वन्य जीवों की संकट ग्रस्त जातियों की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संधि (The Convention on international trade in Endangered species of wild fauna and Flora)–वाशिंगटन में हुई इस संधि में अन्य देशों के साथ भारत ने भी इस संधि पर हस्ताक्षर किये थे। इस सन्धि में संकट ग्रस्त जंगली जातियों के अवैध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाया गया। जिन नस्लों के आयात निर्यात पर रोक लगाई गई वे हैं–व्हेल मछली, कस्तूरी मृग, मगरमच्छ, मोर, गैंडा, हाथी दांत, सांप की खाल, जंगली भैंसों के सींग कछुआ आदि। इन जीवों के व्यापार से इनकी संख्या में कमी आने के साथ आर्थिक हानि भी हुई।

8. विश्व वन्य जीवन कोष (World wild life Fund W.W.F.)–विश्व जीवन कोष का नाम बदल कर प्रकृति के लिये विश्व व्यापी कोष (World wide for Nature) रख दिया गया है। इसे 130 देशों ने अपना लिया है। इसमें 4000 यो हैं जो पौधों और जानवरों की सुरक्षा के लिये काम कर रही हैं। भारत में चल रहे प्रोजैक्ट का श्रेय (W.W.F.) को जाता है। यह कोष 10 लाख अमरीकी डालर इन पर कर रहा है।

वन्य जीवन सुरक्षा हेतु सुझाव
[Suggestions for Wild Life Conservation]

वन्य जीवों की सुरक्षा के लिये बहुत से प्रयत्न किये जा रहे हैं फिर भी वन्य जं पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। इनकी सुरक्षा के कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं निम्नालिखित हैं–

(1) अवैध शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया जाये।

(2) पर्यावरणीय शिक्षा सभी स्तर के व्यक्तियों को अवश्य दी जानी चाहिए।

(3) राष्ट्रीय चिड़ियाघरों तथा अभ्यारणयों की संख्या में वृद्धि होना चाहिए।

(4) राष्ट्रीय पार्क अभ्यारणयों एवं चिड़ियाघरों की सैर विद्यार्थियों को करानी चाहिए

(5) दुर्लभ एवं संकटग्रस्त जीवों की रक्षा के विशेष उपाय किये जाने चाहिए।

(6) घरेलू जानवरों को आरक्षित तथा सुरक्षित क्षेत्रों में चराने पर प्रतिबन्ध लग जाना चाहिए।

(7) प्रदूषित तत्वों से वन्य जीवों की सुरक्षा करने के लिए पर्यावरण प्रदूषण क करने के प्रयास करने चाहिए।

(8) वन्य जीवों की सुरक्षा के लिये बनाये गए अधिनियमों को सख्ती से ल किया जाये।

इन सभी सुझावों को अपनाकर हम वन्य जीवों की सुरक्षा कर सकते हैं। ये व जीव हमारी प्रकृति के महत्वपूर्णा अंग हैं।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

वन्य जीवन का प्रकृति में क्या महत्व है? वन्य जीवन की सुरक्षा कैसे की सकती है?

(What is importance of wild life in nature? How wild li can be conserved?)

3. ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण

[CONSERVATION OF ENERGY RESOURCES]

ऊर्जा जीवन का संचालन करती है। इसलिये इसका महत्व सभी प्राणियों के लिये अद्वितीय है क्योंकि ऊर्जा पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्राणियों के लिये मूलभूत आवश्यकता है। जिस तरह, पानी, हवा और भोजन के बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता इसी प्रकार वह ऊर्जा के बिना भी जीवित नहीं रह सकता। जीवित प्राणी अपने सभी कार्यों को ऊर्जा शक्ति द्वारा ही सम्पन्न करते हैं। इस पृथ्वी पर रहने वाले सब जीवों और प्राणियों को अपने जीवन को बनाये रखने के लिये अर्थात् जीवित रहने के लिये ऊर्जा नितान्त आवश्यक है।

ऊर्जा के विभिन्न रूप (Forms of Energy)

ऊर्जा के विभिन्न रूप निम्न हैं–

1. सूर्य (सौर) ऊर्जा (Solar Energy)–इस ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। इसको हम कई विधियों एवं तरीकों से प्राप्त कर सकते हैं।

2. ताप ऊर्जा (Heat Energy)–इसको ताप के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

3. विद्युत ऊर्जा (Electric Energy)–इसे विद्युत से कई प्रकार और कई रूपों में प्राप्त किया जा सकता है।

4. चुम्बकीय ऊर्जा (Magnetic Energy)–इसे चुम्बकीय प्रयोग से प्राप्त किया जा सकता है।

5. गति ऊर्जा (Kinetic Energy)–यह ऊर्जा गति से प्राप्त की जाती है।

6. वायु ऊर्जा (Air Energy)–तीव्र गति से चलने वाली गति वायु से प्राप्त ऊर्जा।

7. परमाणु ऊर्जा (Nuclear Energy)–इस ऊर्जा का स्रोत परमाणु है।

8. रासायनिक ऊर्जा (Chemical Energy)–यह ऊर्जा रसायनों की प्रतिक्रियाओं से प्राप्त होती है।

9. समुद्र थर्मल ऊर्जा (Ocean thermal Energy)–यह ऊर्जा समुद्र की भिन्न-भिन्न ताप वाली परतों से प्राप्त की जाती है।

ऊर्जा के परम्परागत स्त्रोत [Tradilional Souces of Energy]

इन परम्परागत क्षेत्रों का प्रयोग हमारे पूर्वजों से होता चला आ रहा है। इनका प्रयोग शुरु करना उस समय हुआ था जब मनुष्य ने अपनी सूझ-बूझ से आग का अविष्कार कर लिया था। इन स्त्रोतों को फिर से नया अथवा नया रूप नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह प्रकृति की देन जो भिन्न-भिन्न रूप में उपलब्ध हैं। मनुष्य द्वारा इनका अधिक शोषण होने के कारण अब ये समाप्ती के कगार पर पहुंचने वाले हैं-

मुख्य रूप से ये तीन हैं जिन का संक्षिप्त विवरण निम्न है-

1. कोयला (Coal)-यह अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधनों में से एक है। और यह अत्याधिक गर्मी देता है। यह ऐसी ऊर्जा है जिसको फिर से स्थापित करके पर्याप्त नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोग मुख्य रूप से बिजली घर, कारखानों, उद्योगों और भट्टों में होता है।

2. पैट्रोलियम (Petroleum)-इस संसाधन के अन्तर्गत पैट्रोल, डीज़ल, मोबिल आयल, और खनिज तेल आ जाते हैं। इन सभी का प्रयोग बाहनों, भट्टियों और बिजली घरों में होता है। आधुनिक तकनीक द्वारा हुए निरीक्षकों से यह आशा बंधी है कि इन निरीक्षकों का आधार पर 3000 मिलीयन टन धरती में से और 1000 मिलियन टन समुद्र में पैट्रोलियम होने की सम्भावना है। जिसको ठोस और कड़े प्रयासों से प्राप्त किया जा सकता है।

3. प्राकृतिक गैस (Natural Gas)-प्राकृतिक गैस का प्रयोग रोजमर्रा के छोटे से कार्यों से लेकर बड़े-बड़े उद्योग धन्धों में किया जाता है। भविष्य में भी यह संसाधन उपलब्ध होता रहेगा। ये तीनों स्त्रोत पर्यावरण में प्रदूषण फैलातें हैं। इसलिए प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में ही होना उचित है।

गैर-परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत (संसाधन) (Non-Tradiltional Energy Sources)

यह वो संसाधन हैं जो हमें प्रकृति से प्राप्त नहीं हुए हैं बल्कि इनका अविष्कार हुआ है। ये दो प्रकार के हैं-

1. व्यापारिक प्रयोग के संसाधन-इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से दो साधन (संसाधन) निम्नलिखित हैं।

(1) जल शक्ति (Hydro Power)

(2) परमाणु शक्ति (Nuclear Energy)

[illegible]

(i) सौर ऊर्जा (Solar Energy)

(ii) कचरे से ऊर्जा (Energy from Waste)

(iii) पवन ऊर्जा (Wind Energy)

(iv) वन उत्पादों से ऊर्जा (Energy from [illegible] Production)

(v) [illegible] (Agricultural [illegible] Fuel)

(vi) पशु-शक्ति और मानव शक्ति (Animal powered and man Power)

(vii) बायोगैस (Bio-Gas)

(viii) भू-तापीय ऊर्जा (Geothermal Energy)

(ix) ज्वार ऊर्जा (Tidal Energy)

(x) समुद्र तल ऊर्जा (Ocean thermal Energy)

[illegible] (Alternate) के रूप में प्रयोग किये जा सकें।

[illegible] संसाधनों (स्रोतों) का संरक्षण

[illegible] के लिये आवश्यक बता दिया जा रहा है। [illegible] 20 वीं सदी के आंकड़ों से [illegible] 12.8 प्रतिवर्ष बढ़ी। [illegible]

खपत के अनुसार ऊर्जा उत्पादन सम्भव नहीं है। इसलिये इसका एक समाधान यह सकता है कि ऊर्जा की सुरक्षा से ऊर्जा की अधिक से अधिक बचत की जाये।

इसलिये बिजली ऊर्जा संरक्षण के कुछ उदाहरणों पर हमें अवश्य ही विचार क चाहिये जो इस प्रकार है–

1. बिजली की मोटर (Electric Motor)–आज के युग में बिजली की ऊर्जा खर्च का बहुत बड़ा सशक्त और सार्थक साधन है। इससे अनेक उपकरणों को च जाता है। तकनीकी के विकास से मोटरों की गुणवत्ता बढ़ाकर ऊर्जा के खर्च में कमी के प्रयास किये गये हैं। नई तकनीकी के प्रयोग करने से मोटरों की बिजली ऊर्जा को को कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है। इसलिये बिजली ऊर्जा की बचत के अच्छी शक्ति और गुणवत्तापूर्ण मोटरों का प्रयोग करना आवश्यक हो गया है।

2. पम्प (Pump)–वैज्ञानिक प्र ति के परिणाम स्वरूप अब भारत जैसे कृषि प्र देश में खेती के लिये बिजली खपत पम्पों को प्रयोग किया जाने लगा है। इन पम्प डीजल ईंजन और बिजली मोटरों के माध्यम से ऊर्जा खर्च होती है। गत वर्षों में डी इंजन से मोटर पम्प की लोकप्रियता बढ़ी है। इसके कारण कम लागत से अधिक भरो साधन मिला है और इसके अतिरिक्त यह सुविधाजनक भी है। डीज़ल ईंजन की गुण को बनाये रखकर कम ऊर्जा खर्च करके अधिक काम किया जा सकता है। इस प्रका ऊर्जा की बचत करने में सफल हो सकते हैं।

3. रोशनी प्रबन्ध (Light Arrangement System)–रोशनी की आवश्य घरेलू स्तर के साथ–साथ व्यापारिक और औद्योगिक स्तर पर भी होती है। रोशनी की (खर्च) को आंकने के लिये कोई अलग से मीटर नहीं है फिर भी आंकड़ों से पता है कि कुल खर्च की 17.4 बिजली रोशनी के रूप में खर्च होती है। दिन के 24 घ सबसे अधिक खर्च सुबह 6 से 9 बजे और शाम को 6 से 9 बजे तक होती है। बड़े में बिजली रोशनी खर्च बहुत अधिक है। यह खपत (खर्च) भविष्य में और भी अ होगी क्योंकि अभी भी बिजली की सुविधा सारी जनसंख्या को उपलब्ध नहीं है।

घरेलू क्षेत्रों में स्त्रोतों का संरक्षण (Conservation of Energy sourc residential Areas)–घर या परिवार एक ऐसी संस्था है जहां व्यक्ति का विकास है। अगर घरेलू क्षेत्रों में ऊर्जा की खपत को निश्चित कराने में सफल होते हैं तो ऊ सुरक्षा सम्भव हो सकती है। घरों में पानी गर्म करने के लिये विभिन्न साधनों का किया जाता है। विभिन्न वस्तुओं के ठण्डा करने हेतु भी अनेक उपकरणों को प्रयोग जाता है जैसे–एयर कंडीशनर, ऐयर कूलर, पंखे और फ्रिजों का प्रयोग आदि। इसी इलैक्ट्रिक कैटल, हॉट प्लेट, ओवन टोस्टर और प्रैस का प्रयोग किया जाता है। रो

लिये बल्ब, ट्यूबें, पतली ट्यूबों और कामपैकट फ्लोर सैट आदि को प्रयोग में लाया जाता है। इनके अतिरिक्त घरेलू क्षेत्र में वॉशिंग मशीन, टेलीविज़न, रेडियो और टेलीफोन के माध्यम से ऊर्जा खर्च होती है।

हमारी शिक्षा प्रणाली कुछ इस प्रकार की हो जिससे परिवार मे जागरूकता और चेतना का वातावरण बने और परिवार का प्रत्येक सदस्य ऊर्जा बचत के लिये प्रयत्नशील हो। अच्छी गुणवत्ता वाले प्रामाणित उपकरणों का ही घरों में प्रयोग किया जाये। घर में प्रयोग में आने वाले उपकरणों को तब तक ही चलने लिया जाये जब तक उनकी आवश्यकता हो अन्यथा उनको तुरन्त बंद कर दिया जाये। बिजली गीज़र के स्थान पर आज गैस गीज़र का प्रयोग किया जा सकता है। जिस कमरे में कोई भी ना बैठा हो तो उसके पंखे और रोशनी साधन बन्द कर दिये जाने चाहिये। इससे ऊर्जा में तो बचत होगी ही इसके साथ-साथ घर का बजट भी सन्तुलित रहेगा।

सूर्य ऊर्जा का लाभ उठाना (Tapping Solar Energy)

मनुष्य के लिये ऊर्जा अत्यन्त आवश्यक है। सूर्य ऊर्जा का विशाल भंडार है और सबसे अच्छा स्रोत है। यह ऐसा ऊर्जा का भंडार है जो सदियों से उपलब्ध है और आने वाले समय भी रहेगा। पश्चिमी लोग सूर्य को गैर-परम्परागत ऊर्जा का स्रोत मानते हैं पर भारत में गांवों में जनता बहुत से कार्य सूर्य से लेती है। अत: सूर्य परम्परागत ऊर्जा का स्रोत है। 1855 ई. में श्री गुंथर की खोजों से सूर्य ऊर्जा के भिन्न-भिन्न प्रयोग की संभावनाओं का पता चला। श्री गुंथर ने इको शीशे का प्रयोग से सूर्य ऊर्जा द्वारा पानी गर्म करने की तकनीक खोजी।

सूर्य एक धर्मोन्युकलियर भट्ठी है। जिसका बुनियादी तापमान 5800°C वहां धर्मोन्युकलियर क्रिया से लगातार हाइड्रोजन जे के परमाणु हीलियम में बदलते है। बिजली के चुम्बकीय सूर्य विकिरण द्वारा इसके ताप का कुछ हिस्सा वायुमंडल में दाखिल होता है। सूर्य ऊर्जा धरती पर ऐसा प्राकृतिक ऊर्जा का स्रोत है जो कभी खत्म नहीं होगा। गर्म देशों में सूर्य ताप साल में कई हज़ार घंटे तक उपलब्ध है पर ठण्डे देशों में सैंकड़ों घंटे ही ताप उपलब्ध होता है। अभी तकनीकी इतनी विकसित नहीं हुई कि सूर्य की धरती पर आने वाली ऊर्जा को सम्भाल लिया जाये। विकल्प ऊर्जा स्रोत द्वारा सूर्य ऊर्जा को विभिन्न कार्यों में प्रयोग करके परम्परागत स्रोतों के घाटे को पूरा किया जा सकता है।

सूर्य ऊर्जा बहुत लाभकारी है। इसके प्रयोग के लिये बनाये गये उपकरण सदा के लिये काम देते रहेंगे। सूर्य ऊर्जा उपकरण बिना मुरम्मत के अधिक समय तक चल सकते हैं। इसका सबसे अच्छा फायदा यह है कि परम्परागत ऊर्जा स्रोत जब प्रयोग में लाए जाते

हैं तो यह किसी न किसी रूप में प्रदूषण करते हैं पर सूर्य ऊर्जा बिल्कुल भी प्रदूषण न करती क्योंकि इसके प्रयोग से कोई कोयला एवं तेल की तरह धुआं नहीं निकलता।

सूर्य ऊर्जा को धूप के रूप में सीधे प्रयोग करते हैं। मशीनी उपकरणों से इसको बदल कर दूसरे रूपों में प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग की विधियां निम्नलिखित हैं-

1. सूर्य ऊर्जा की प्रत्यक्ष विधियां (Direct methods of solar Energy)

2. सूर्य ऊर्जा की अप्रत्यक्ष विधियां (Indirect methods of solar Energy)

इन विधियों द्वारा सूर्य की किरणों को पदार्थों के ताप में बदल लिया जाता है सूर्य की किरण को किसी ठोस या तरह पदार्थ के ऊपर डाला जाता है तो ताप पैदा होता है जिससे ठोस या तरल ऊर्जा से गर्म हो जाता है और स्रोत में ताप इकट्ठा हो जाता है।

सूर्य किरणों की ताप ऊर्जा का प्रयोग निम्नलिखित कार्यों में किया जाता है-

1. सूर्य ऊर्जा से गर्म पानी (Water heating with solar Energy)-सूर्य ऊर्जा से पानी गर्म करना बहुत साधारण है। इस तकनीक में ताप सोखने के लिये चपटी प्लेटें लगी होती है। चपटी प्लेटों के सामने की तरफ चमकदार होती है और साथ ही काली हुई ताप शोधक धातु लगी होती है। उसके पीछे से चारों तरफ से काला किया जाता है। यह बाहर से धातु के बक्से से जड़ा होता है। इन प्लेटों से पानी निकालने पर 60°C तक पानी गरम हो जाता है।

2. स्थान या इमारत गर्म करना (Space or building Heating)-सर्दियों में इमारतों को गर्म करने के लिये इस तकनीकी को प्रयोग में लाते हैं। सूर्य ताप ऊर्जा पैदा कर उस को थोकनी द्वारा कमरों या इमारतों में भेजा जाता है। आजकल ऐसा प्रबन्ध भी किया जाने लगा है कि बिना ताप किये गर्म हवा को अन्दर भेजा जा सकता है।

3. शक्ति उत्पादन (Power Generations)-सूर्य ताप ऊर्जा द्वारा शक्ति उत्पादन किया जा सकता है। सूर्य ताप ऊर्जा चक्कर तीन प्रकार के हैं-

(1) निम्नतापी चक्कर (Low Temperature Circle)-इस तकनीक से चपटी प्लेटों के प्रयोग से 100°C तक तापमान प्राप्त किया जा सकता है।

(2) मध्यतापी चक्कर (Medium temperature Circle)-इसके अन्दर आकार वाली प्लेट संग्रहिणी का प्रयोग किया जाता है इससे 150°C से 200°C तक तापमान प्राप्त हो सकता है।

(3) उच्च तापी चक्कर (High temperature Circle)-ऊंचे स्तर का तापमान प्राप्त करने के लिये प्यालानुमा सुराही का प्रयोग किया जाता है इस तकनीक द्वारा 200°C से 300°C तक तापमान प्राप्त कर सकते हैं। 400°C से अधिक तापमान प्राप्त करने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं।

(4) शीतलीकरण और प्रशीतन प्रक्रिया (Cooling and refrigeration)–सूर्य ऊर्जा से ठण्डा करने का कार्य भी लिया जाता है। सूर्य ऊर्जा का प्रयोग घर ठण्डा करने, फलों एवं सब्जियों को ठण्डी जगह रखने के लिए किया जाता है। बम्बई में सूर्य ऊर्जा से चलने वाले कोल्ट स्टोर में सूर्य ऊर्जा से चलने वाले कोल्ड स्टोर काम कर रहे हैं।

(5) आसवन क्रिया (Distillation)–खारे पानी का सूर्य ऊर्जा से आसवन बहुत फायदेमन्द सिद्ध हुआ है। आसवन क्रिया से यह पानी पीने योग्य बन जाता है। भारत के भावनगर में अवानिया गांव में 5000 लीटर पानी प्रतिदिन की शक्ति वाला प्लांट 1978 से काम कर रहा है।

(6) सुखाना (Drying)–सूर्य ऊर्जा से वस्तुएं सुखाने का भी कार्य किया जा रहा है। विशेष तकनीक विकसित करके अनाज और फसलों में नमी निकालने के लिए सूर्य ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है। पंजाब कृषि यूनिवर्सिटी ने ऐसी तकनीक विकसित की जिससे सूर्य ऊर्जाताप द्वारा धान, मिर्च आदि को काटने, तुड़वाने के बाद सुखाने से मदद ली जाती है।

(7) खाना पकाना (Cooking)–सूर्य ऊर्जा द्वारा खाना पकाने की विधि–बहुत लाभकारी है। इसमें एक ताप ग्राहक फाईबर ग्लास के बक्से में से अन्दर काला किया धातु का बक्सा होता है जिस पर ताप ग्राहक साधारण शीशा लगा होता है। इस पर एक मुंह देखने वाले शीशा पेचों की मदद से लगा होता है। बक्से में चार छोटे बड़े डिब्बों की व्यवस्था होती है। ऊपर के शीशे को सूर्य की दिशा अनुसार खोल दिया जाता है। इसमें 200°C तक तापमान आसानी से एकत्रित किया जाता है। भारत में 365 दिनों में 300 दिन आराम से सोलर कूकर का प्रयोग किया जाता है।

2. सूर्य ऊर्जा की अप्रत्यक्ष विधियां (Indirect methods of Energy)–इन अप्रत्यक्ष विधियों का आधार सूर्य ही होता है। इससे पहले पवन ऊर्जा की चर्चा की जा चुकी है। पवनों के चलने कारण सूर्य की ऊर्जा होती है। पवन ऊर्जा की सहायता बड़े स्तर पर काम लिये जाते हैं। जैविक ऊर्जा भी परोक्ष विधि से मिलती है। इस प्रकार संश्लेषण द्वारा पौधे बायो मास बनाते है। इससे फसलें, घास, फूल आदि पनपते हैं। इनको खाकर जीव ऊर्जा पैदा करता है। जंगल से प्राप्त हुई लकड़ी भी ऊर्जा उत्पादन हेतु प्रयोग में आती है। जैविक ऊर्जा से ईंधन के लिये लकड़ी, कोपला, जैविक गैस (गोबर, गैस, बायोगैस) तरह पदार्थ बनाये जाते हैं।

उपरोक्त के अतिरिक्त परोक्ष विधियों की सहायता से समुद्री ताप ऊर्जा रूपान्तर को भी निश्चित करते हैं। सूर्य ऊर्जा समुद्री ताप का मूल भूत आधार है।

भारत में सूर्य ऊर्जा कार्यक्रम (Solar energy programme in India)–हमारे देश में इस क्षेत्र से सम्बन्धित कार्यक्रमों को बढ़ावा देने के लिये मन्त्रालय की स्थापना की गई है। जिसके अन्तर्गत कई कार्यक्रम चलाये गये हैं।

(1) धुआं रहित चूल्हे (Smokeless Chulhas)–इस प्रकार चूल्हों का राष्ट्रीय कार्यक्रम 1983 में प्रारम्भ हुआ था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत साठ प्रकार के चूल्हे निर्मित किये गये। इनको सुधरे चूल्हों की संज्ञा दी गई है। इनको लोकप्रिय बनाने हेतु जनसाधारण को छूट देकर बांटे गये। इनका निर्माण आधुनिक तकनीकी को ध्यान में रखकर किया गया। इसका प्रयोग करने से कम ईंधन में अधिक उत्पादन होता है। आंकड़े बताते हैं कि अब तक 150 लाख से अधिक चूल्हे जन साधारण लोगों के घरों में जल रहे हैं अर्थात् प्रयोग में लाये जा रहे हैं।

(2) बायोमास विकास कार्यक्रम (Biomass development Programme)–यह कार्यक्रम (Programme) 1981 में प्रारम्भ हुआ था। इसके अन्तर्गत गोबर गैस प्लांट, बायोप्लाट सबसिडी देकर उपलब्ध करवाये गये। अब तक भारत में 15 लाख से अधिक प्लांट लगाये जा चुके हैं।

(3) सूर्य ताप ऊर्जा कार्यक्रम (Solar Heat Programme)–यह कार्यक्रम 1990 में प्रारम्भ किया गया था और उसी समय से 3 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय ऊर्जा दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसके अन्तर्गत पानी गर्म करने, खाना पकाने, ठण्डा करने आदि से सम्बन्धित प्रोग्राम बनाये गये और आज तक तीन लाख से अधिक सोलर कूकर सबसिडी आधार पर जनसाधारण को दिये गये हैं।

उपरोक्त साधनों की उपयोगिता को देखते हुए यह कहना उचित रहेगा कि सूर्य ऊर्जा परम्परागत स्रोत है जिसका प्रयोग विज्ञान और तकनीकी विकास से ऐसी विधियों को अस्तित्व में लाया गया है। जिससे सूर्य ऊर्जा का प्रयोग गैर परम्परागत ढंग से सम्भव हो सका है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. ऊर्जा के स्रोत कौन से हैं? इन स्रोतों की सुरक्षा कैसे की जा सकती है?
   What are sources of energy? How can these sources b conserved?
2. ऊर्जा के परम्परागत स्रोत कौन से हैं? ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों और गैर परम्परागत स्रोतों में क्या अन्तर है?
   What are the tradional sources of energy? What is th difference between traditional sources and non tradition resources?

4. ऊर्जा के वैकल्पिक संसाधन (स्त्रोत)
[ALTERNATE SOURCES OF ENERGY]

ऊर्जा के प्राकृतिक साधनों (स्त्रोतों) में मुख्य रूप से सूर्य है और इसके अतिरिक्त तीन और स्त्रोत हैं जिन्हें हम कोयला, पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैसों के नाम से जानते हैं। इन स्त्रोतों को परम्परागत स्त्रोत (संसाधन) भी कहा जाता है। सूर्य ऊर्जा को छोड़कर बाकी के तीन स्त्रोतों का स्थाई रूप से हमेशा-हमेशा के लिये सुरक्षित नहीं किया जा सकता अर्थात् यह सम्भव नहीं है कि भविष्य में भी यो स्त्रोत कभी समाप्त नहीं होंगे। इसलिये यह बात विश्व स्तर पर चिन्ता का विषय बनी हुई है और इन स्त्रोतों के वैकल्पिक रूप अर्थात् परिवर्तित रूपों को खोजना प्रारम्भ किया। विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति के परिणाम स्वरूप वैकल्पिक स्त्रोतों को खोजने में सन्तोषजनक सफलता भी प्राप्त हुई।

ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों से तात्पर्य है कि जो स्त्रोत पहले से ऊर्जा के रूप में प्रयोग लाये जा रहे हैं उनके स्थान पर उनके विकल्प के रूप में अन्य ऊर्जा स्त्रोतों का प्रयोग करना या फिर उसी स्त्रोत का किसी अन्य विधि एवं तकनीकी से प्रयोग करना ही ऊर्जा वैकल्पिक स्त्रोत कहलाता है जैसे-घरेलू स्तर पर ऊर्जा के रूप में कोयले का या लकड़ी का प्रयोग किया जाता था लेकिन इन प्राकृतिक स्त्रोतों के खत्म होने के खतरे के कारण गैस के चूल्हों का प्रयोग करना शुरु कर दिया है। जैसे परम्परात ढंग से सूर्य ऊर्जा से प्रकाश (रोशनी) प्राप्त करते हैं। लेकिन रात्रि के समय जब सूर्य का प्रकाश उपलब्ध नहीं होता है तो बिजली के प्रयोग से विकल्प रूप से रोशनी प्राप्त करते हैं। अगर मान लो बिजली की सप्लाई न हो रही हो हम रात्रि के समय वैज्ञानिक तकनीकी के आधार पर बने उपकरण का प्रयोग करके अन्धेरे को दूर करते हैं। इस प्रकार ऊर्जा की बचत हेतु विकल्प का भी विकल्प खोजना पड़ता है जो ऊर्जा की बचत में सहायक सिद्ध होता है। इन्वर्टर का लाभ यह है कि इससे किसी प्रकार का प्रदूषण नही होता जबकि जनरेटर का प्रयोग करने से ध्वनि और वायु प्रदूषण-दोनों ही होते हैं।

ऊर्जा के जितने भी गैर-परम्परागत स्त्रोत हैं वे लगभग वे विकल्प रूप में ही प्रयोग में लाये जाते हैं। वे सभी स्त्रोत मनुष्य द्वारा अथक प्रयासों से अविष्कृत किये गये हैं या फिर परम्परागत स्त्रोतों का विज्ञान एवं तकनीकी की सहायता से बनाये गये साधनों से रुपान्तरण किया गया है जैसे कि सूर्य उर्जा का प्रत्यक्ष रूप से और परोक्ष रूप से अनेक विधियों की

सहायता से विकल्प रूप में प्रयोग करके लाभ उठा रहे हैं। इन सभी साधनों की चर्चा
पहले कर चुके हैं।

विकल्प स्रोतों को बनाये जाने के पीछे यही लक्ष्य रहें है कि बढ़ती जनसंख्या
ऊर्जा आवश्यकताओं को देखते हुए उनकी आवश्कताओं की पूर्ति करना, प्राकृतिक साध
एवं स्रोतों के खत्म होने के खतरे से बचना और पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाना।

यातायात के साधनों में पहले पैट्रोलियम (पैट्रोल या डीज़ल) का प्रयोग किया जा
था जिससे पैट्रोल या डीज़ल की खपत बहुत अधिक होती है और इससे वायु प्रदूषण
बहुत फैलता है। लेकिन अब सफर करने वाली सवारियों को प्रदूषण से बचाने के लिये व
वाहनों अथवा बसों में सी०एम०सी० गैस के प्रयोग पर विचार किया जा रहा है। देहल
और अन्य बड़े शहरों में सी०एन०जी० गैस का प्रयोग भी होने लगा है। सी०एन०जी० गै
का प्रयोग पैट्रोल एवं डीज़ल के विकल्प रुप में कियाजा रहा है। इससे दो बड़े लाभ
पैट्रोल एवं डीज़ल की बचत जिसकी हमारे देश में कमी है और दूसरे प्रदूषण से बचा
करना।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि विकल्प स्रोतों के प्रयोग करने से पर्याप्
मात्रा में ऊर्जा की बचत की जा सकती है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

वैकल्पिक स्रोतों से आपका क्या तात्पर्य है? ऊर्जा बचाने में इसकी क्या भूमिक
है?

(What do you mean by alternate sources of energy? wha
is the role of alternate sources in conservation of energy?

5. अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) का उचित प्रबन्ध
[WASTE MANGEMENT]

कारखानों, कृषि घरों तथा दूसरे क्षेत्रों में जीवित प्राणियों द्वारा प्रयुक्त की गई वस्तुओं से अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) उत्पन्न होता है। दिन प्रतिदिन कूड़ा-करकट के ढेर में वृद्धि हो रही है। शहरों के बाहर फेंका हुआ कूड़ा-करकट प्रयोग में आने वाली जमीन को, न प्रयोग होने वाले ज़मीन बना देता है और इससे पर्यावरण प्रदूषित होता है। हम इस अपशिष्ट को दो वर्गों में बांट सकते हैं-

1. ग्रामीण अपशिष्ट (कूड़ा-करकट)(Rural Waste)
2. शहरी अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) (Urban Waste)

1. ग्रामीण अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) (Rural Waste)-गांवों में कृषि और डेयरी का कूड़ा-करकट है। इससे कूड़े की खाद बनाई जाती है और यह खाद कृषि में काम आती है। मनुष्य और जानवरों द्वारा त्यागा मल एवं फेंके हुए कूड़ा-करकट को अब गोबर गैस प्लाटों अै बायोगैस प्लाटों द्वारा भी ईंधन रूप में प्रयोग किया जाता है।

2. शहरी अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) (Urban Waste)-शहरी कूड़े को दो भागों में बांटा जाता है-

(1) ठोस कूड़ा करकट (Solid Waste)-डिब्बे, शीशे के टुक्ड़े, प्लास्टिक के डिब्बे, समाचार पत्रों, बोतलें, टूटी हुई क्रोकरी पोलीथिन के लिफाफे एवं घरेलू कूड़ा कठोस कूड़ा करकट है।

(2) तरल अपशिष्ट (कूड़-करकट) (Liquid Waste)-मनुष्य की दैनिक क्रिया पानी के प्रयोग से शुरु होती है। पानी पर आधारित कूड़ा-करकट मनुष्य की क्रियाओं द्वारा पैदा होता है। पानी वाला कूड़ा करकट वातावरण में फेंका जाता है जो वातावरण को प्रदूषित करता है।

कूड़ा-करकट के स्त्रोत [Sources of Waste]

अपशिष्ट या कूड़ा-करकट के निम्नलिखित स्त्रोत हैं-

1. औद्योगिक अपशिष्ट (Intustrical Waste)-औद्योगिक अपशिष्ट मे ठोस और तरह दोनों प्रकार के कूड़ा करकट होता है। उद्योगों का गन्दा जल तरह कूड़ा करकट

के रूप में उद्योगों से बाहर फेंक दिया जाता हैं और उद्योगों का टूटा फूटा सामान एवं कूड़ा करकट कचरा ठोस अपशिष्ट है।

2. घरेलू कूड़ा-करकट (Domestic Waste)–घर का कूड़ा-करकट गन्दगी, धूल, मल और सीवरेज का कूड़ा-करकट बहुत सी बीमारियों को पैदा करता है। क्योंकि इसमें कई ऐसे कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो बीमारी का कारण बनते हैं। इसमें अनेक नौन-बाईयोडेग्रेडेबल आग लगने वाले और न आग लगने वाले पदार्थ होते हैं। इनको खुले मैदानों में फेंक देते हैं जो पर्यावरण को हानि पहुंचाते हैं।

3. कृषि सम्बन्धी अपशिष्ट (Agricultural Waste)–फसलों, जानवरों और पशुओं द्वारा जो कूड़ा-करकट पैदा होता है वह कृषि सम्बन्धी अपशिष्ट है। जैसे चावल के छिलके, गोबर, यह कूड़ा-करकट खुले में फैंकने से मनुष्यों और जानवरों को हानि पहुंचाता है।

4. उड़ती हुई राख बिजली पैदा करने वाले प्लांट से पैदा होती है।

5. अस्पताल के बाहर फेंके गये कूड़े में संक्रामक और असंक्रामक दोनों प्रकार की बीमारियां फैलती है इन कूड़ों में रोगों के सूक्ष्म कीटाणु होते हैं।

औद्योगिक और शहरी ठोस कूड़ा-करकट का सुप्रबन्ध [Mangement of Industrial and Urban Solid Waste]

शहरों में प्रतिदिन कूड़ा–करकट बढ़ता जा रहा है। शहरों में उद्योग, अस्पताल आदि अधिक हैं जिनके कारण शहरों में जगह-जगह कूड़े-करकट के ढेर दिखाई देते हैं। इसलिए शहरों में कूड़ा-करकट के प्रबन्ध करने की आवश्कता अधिक है। शहर में जो कूड़ा-करकट होता है उसमें से जमादार या कूड़ा उठाने वाले ऐसे पदार्थों को छान लेते हैं जिस सामान को दुबारा काम में ले सकते हैं और शेष कूड़ा पड़ा रहने देते हैं जो पर्यावरण को प्रदूषित करता है वहां गन्दगी एवं बदबू फैलती रहती है। विकसित टेक्नॉलाजी की सहायता से इसे टरीटमैंट और प्रासैसिंग आदि उपायों द्वारा ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। कूड़ा-करकट का प्रबन्ध करने के निम्नलिखित उपाय हैं–

1. इक्ट्ठा करना (Collection)–शहरों में ठोस कूड़ा-करकट नगरपालिका के जमादारों द्वारा उठा कर एक स्थान पर एकत्रित किया जाता है भारत में यह काम मनुष्यों द्वारा किया जाता है जबकि कई देशों में यह काम मशीनें करती हैं।

2. आगे ले जाना (Transfer)–जब शहर का कूड़ा एक स्थान पर एकत्र कर दिया जाता है तब वहां से उसे उठा कर दूसरे स्थान पर ले जाते हैं क्योंकि नगरापलिका इस कूड़े को नष्ट कर देती है।

3. नष्ट करना, निपटारा करना (Disposal)–कूड़े-करकट को समेटने की यह महत्वपूर्ण अवस्था है। यहां पर भिन्न-भिन्न चीज़ें विभिन्न प्रक्रियाओं के लिए चुनी जाती है। जैसा कि नीचे वर्णन किया जा रहा है–

(1) दहन (Incineration)–अस्पताल के कूड़े-करकट को जला दिया जाता है परन्तु उससे निकलने वाला धुआं पर्यावरण को प्रदूषित करता है यदि इस दहन के कार्य को इनसिनरेटर प्लांट में किया जाये तो कुछ सीमा तक पर्यावरण को सुरक्षित रख सकेंगे।

(2) कम्पोस्टिंग (Composting)–कूड़े-करकट को एकत्र करके उसका कम्पोस्ट बनाया जाता है जिसको ईंधन के लिये प्रयोग किया जाता है। मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने के लिये इसे खेतों में डाला जाता है इस ढंग से कूड़े-करकट के अन्दर की बायोमास से ऊर्जा पैदा करके बिजली उत्पन्न की जाती है। गोबर के उपले बनाकर गांव में गोबर को समाप्त किया जाता है। शहरों में ऐसे कूड़े-करकट को मशीनी ढंग से ईंधन बनाकर प्रयोग किया जाता है।

(3) भूमि में दबाना (Land Fills)–कई जगह न जलने वाले पदार्थ एवं जलने वाले पदार्थ को मिट्टी में गड्ढे खोद कर दबा दे हैं। न जलने वाले पदार्थ के लिए यह सबसे अच्छा उपाय है। कभी मिट्टी में कूड़े-करकट का दबाना खतरनाक सिद्ध होता है। यह भूमि के नीचे वाले पानी को दूषित करता है और मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम होती है।

शहरी क्षेत्रों और कारखानों से उत्पन्न तरल कूड़ा-करकट का प्रबन्ध [Mangement of Liquid Waste from Urban Areas & Industries]

घरों और कारखानों का गन्दा एवं रासायनिक पानी तरल कूड़ा-करकट होता है। इसमें होटलों का कूड़ा, अस्पतालों का दूषित पानी, मल, साबुन, डिटरजैंटस, शैम्पूज, गन्दा भोजन दफ्तरों का गन्दा पानी आदि आते हैं। गन्दे नाले का जल बहुत ही हानिकारक होता है। इसलिए इस तरह कूड़ा-करकट से निपटने का प्रबन्ध किया जाये। इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिये गये हैं–

1. प्राथमिक ट्रीटमैंट क्रिया (Primary Treatment Process)–इसमें छानना, बजरी हटाना और तलछट जमा होने की प्रक्रिया शामिल हैं।

(1) छानना (Screening)–गन्दे पानी के रास्ते में लोहे की सलाखें छलनी की तरह रूकावट के लिये लगा देते हैं। गन्दे पानी के ठोस पदार्थ इन लोहे की सलाखों पर रूक जाते हैं। आगे नहीं बह पाते फिर इन ठोस पदार्थों को जला देते हैं।

(2) गिट्टी (Grit)–इस विधि में कंकर पत्थर, रेत, चिकनी मिट्टी, अंडों के छिलके, धातु के छोटे-छोटे टुकड़ों को गिट्टी हटाने वाले कमरे के द्वारा गन्दे पानी को साफ करने वाले प्लांट से रोका जाता है।

(3) सैडीमैंटेशन (Sedimentation)–इसमें ढलान वाले तालाबू बनाये जाते हैं। जिनमें गन्दे पानी को धीरे-धीरे आगे भेजा जाता है जिसके साथ न घुलने वाले पदार्थ गुरुत्व बल के द्वारा नीचे बैठ जाते हैं। जिसके साथ न घुलने वाले पदार्थ गुरुत्व बल के द्वारा नीचे

बैठ जाते हैं। तब वह पानी बाहर निकला जाता है फिर कीचड़ जो कि एक गाढ़ा काला पदार्थ है उसे साफ किया जाता है।

2. सैन्कडरी ट्रीटमैन्ट प्रक्रिया (Secondary treatment Process)–इसे जीव वैज्ञानिक क्रिया कहा जाता है। इसमें निम्नलिखित ढंग अपनाये जाते हैं–

(1) बायोफिलट्रेशन (Bio filteration)–इसमें तरल कूड़ा-कर्कट को एक आयताकार तालाब पर रखा जाता है जो तालाब पत्थरों से बना है जिसमें माईकरोबियल फिल्म रखी है। गन्दा पानी पत्थरों के ऊपर छन जाता है और माईकरोबज द्वारा साफ हो जाता है।

(2) ऐक्टीवेटिड कीचड़ (Activated Sludge)–इस क्रिया में आक्सीजन मकैनीकल ऐजीटेटर द्वारा दी जाती है। इसे और आगे ट्रीटमैंट के लिये इकट्ठा किया जाता है जैसे–

कीचड़ ट्रीटमैंट ऐनरोबिक डाईजैन द्वारा (Sludge treatment anaerobic digestion)–इसमें कीचड़ को ऐनरोनिक सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा साफ किया जाता है फिर सुखा कर गर्म किया जाता है जिससे खाद मिट्टी पैदा होती है। जो शक्तिवर्द्धक खाद की तरह है।

1. कच्चा माल पदार्थ खड़े पानी वाले तालाब में चला जाता है। जिसमें यह पदार्थ प्राकृतिक रूप से टूट जाते हैं और इसे एलजी और बैकटीरिया तोड़ते हैं।

2. ऐरेटिड तालाब (Aerated Lagoons)–गन्दे पानी से भरे जाते हैं। वहां पर ऑक्सजीन आरेटरज़ aerators द्वारा छोड़ी जाती है।

3. दहक (Incineration)–ठोस और कठोर पदार्थों को जला कर पानी बाहर निकाला जाता है।

4. बाहर निकाला हुआ पानी रासायनिक विधि से साफ कर दुबारा प्रयोग किया जाता है।

आज हम कूड़ा-करकट से बच नहीं सकते पर कई तरीकों से इससे निपटा जा सकता है। इसके प्रति लापरवाही सम्पूर्ण मानव जाति के लिए खतरा बन सकती है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

अपशिष्ट (कूड़ा-करकट) के प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? अपशिष्ट के कौन से स्रोत हैं।

(What do you mean by management of waste? What are the sources of Waste?)

□

6. जनसंख्या और पर्यावरण (वातावरण)
[Population And Environment]

भारत में जनसंख्या केवल बढ़ ही नहीं रही है बल्कि जनसंख्या विस्फोट के कगार पर आ चुकी है। आज तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या भारत के सामने सबसे अधिक महत्वपूर्ण और बुनियादी एवं मूल समस्या है। इस समस्या ने और भी अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। आज इस बात का भी पता लग चुका है कि जनसंख्या का विकास उन देशों में बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है जिनकी प्रति व्यक्ति आय कम है। अगर हम चाहते हैं कि देश सामाजिक और आर्थिक प्रगति करे तो हमें अवश्य ही जनसंख्या को स्थिर करने और जन्म दर में कमी के लिये अथक प्रयास करने पड़ेगें।

राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक खुशहाली के लिये संसाधनों का उपभोक्ता के बराबर होना आवश्यक है। भारत जनसंख्या विस्फोट ने न केवल प्राकृतिक संसाधनों को प्रदूषित किया है बल्कि उनका शोषण भी किया है। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याओं को जन्म दिया है जैसे कि निम्न जीवन स्तर, जीने की मौलिक सुविधाओं की कमी जैसे- भोजन, मकान, कपड़ा, अन्य आवश्यकताओं से सम्बन्धित समस्याएं ये सभी समस्याएं अन्य गम्भीर, समस्याओं के लिये कारण बन रही है जैसे बेरोज़गारी, हत्या, जुर्म, चोर बाज़ारी, लूटपाट, भ्रष्ट्राचार, मंहगाी आदि। इन समस्याओं से मानवीय मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है।

जनसंख्या वृद्धि और पर्यावरण की समस्याएं
[Populations Growth and Environmental Problems]

आज जितनी भी समस्याएं हैं चाहे उनका सम्बन्ध भारत देश से है या अन्य देशों से है उनमें से बहुत सी समस्याएं जनसंख्या वृद्धि के कारण ही हैं या इस बात को यूं भी कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में मूलभूत समस्या जनसंख्या वृद्धि है। इसी समस्या ने पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। जनसंख्या वृद्धि से पर्यावरण से सम्बन्धित निम्न समस्याएं पैदा हुई है-

(1) पर्यावरण की गुणवत्ता का स्तर नीचे आया है।

(2) खाद्य पदार्थ एवं भोजन की गुणवत्ता नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई है।

(3) जनसंख्या वृद्धि से नैतिक स्तर, जीवन स्तर और आर्थिक स्तर में गिरावट आई है।

(4) खाद्य पदार्थों में मिलावट के चलते स्वास्थ्य का स्तर भी नीचे आया है और अनेक बीमारियां फैली हैं।

(5) जनसंख्या की वृद्धि से लोग गांवों को छोड़कर शहर की ओर बढ़ते हैं जिससे शहरीकरण होता है जिससे कस्बों और नगरों का विस्तारकरण होता है जिससे प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और भूमि प्रदूषण बढ़ता है।

(6) इस बढ़ती जनसंख्या के परिणाम स्वरूप आवश्कताओं को देखते हुए औद्योगिक और तकनीकी का अत्याधिक विकास हुआ है जिसके कारण भी भूमि, जल, वायु और ध्वनि प्रदूषण बढ़ा है।

(7) बढ़ती जनसंख्या के कारण उच्च शिक्षा की सुविधाओं में भी कमी आई है क्योंकि जिस गति से जनसंख्या में वृद्धि हो रही है उस गति से उच्च शिक्षा के लिये सुविधाओं में वृद्धि नहीं हो पा रही है। शिक्षण के सभी स्तर पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। इसके अतिरिक्त व्यावसायिक और तकनीकी संस्थाओं पर भी पहले की तुलना में दबाव बढ़ता जा रहा है। ऐसा होने से छात्रों में अनुशासनहीनता और असन्तोष बढ़ रहा है।

(8) बढ़ती जनसंख्या के कारण मनुष्य का भौतिक (शारीरिक), सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक पर्यावरण प्रदूषित हुआ है।

(9) मानव के सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और शाश्वत मूल्यों में गिरावट आई है।

(10) इस बढ़ती जनसंख्या के कारण समाज में बुराइयों, भ्रष्टाचार का बोल बाला होता जा रहा है। मनुष्य बेरोजगारी की हालात में अपराधीकरण की ओर बढ़ रहा है।

(11) राजनीति, धर्म, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में भी मानव मूल्यों का पतन हो रहा है।

उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र की सेवाओं और सरकारी सेवाओं के क्षेत्र में दिन प्रति-दिन गिरावट बढ़ती जा रही है क्योंकि सभी क्षत्रों में जनसंख्या का दबाव बढता जा रहा है। यदि हम इन सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान करना चाहते हैं तो हमें जनसंख्या की वृद्धि की रोकथाम के लिये अवश्य ही सफल प्रयास करने होंगे। जनसंख्या नियन्त्रण हेतु सरकार को कानून बनाने की आवश्यकता है और उस कानून को सख्ताई से सभी पर लागू करना होगा। इन सकारात्मक सफल प्रयासों के चलते हम इस दिशा में अच्छे परिणामों की आशा रख सकते हैं।

जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण के उपाय
[Measures for Over Coming Population Growth]

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए आज जनसंख्या वृद्धि पर काबू पाने की बहुत आवश्यकता है जिससे मनुष्य की गुणवत्ता को गुणवता पूर्ण पर्यावरण में बनाये रखा जा सके। भारत सरकार इस सन्दर्भ में बहुत चिन्तित भी है और इस समस्या पर नियन्त्रण पाने के लिए प्रयास भी कर रही है इस सम्स्या के समाधान हेतु नीति भी निर्धारित की गई है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में जनसंख्या समस्या का समाधान करने के लिए व्यवस्था की जाती रही है। हमारी छटी (Sixth) पंचवर्षीय योजना में परिवार नियोजन को विशेष महत्व दिया गया था, परन्तु सन्तोषजनक परिणामों की प्राप्ति नहीं हो सकी। वर्तमान में ऐसा लगता है कि जनसंख्या शिक्षा और जनसंचार के माध्यमों की सहायता से जनसंख्या वृद्धि में रोकथाम हो सकेगी। अगर हम निम्न उपायों को समुचित ढंग से कार्यन्वित करते हैं तो अवश्य ही कुछ सीमा तक जनसंख्या नियन्त्रण में सफलता प्राप्त कर सकते है–

1. मुख्य रूप से देखा जाये तो तीन उपाये दिखाई देते हैं–

(1) परिवार नियोजन (family Planing)

(2) जनसंख्या शिक्षा (Population Education)

(3) जनसंख्या सम्बन्धी कानून (Laws for Population)

2. उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य साधन और तरीके जो निम्न हैं–

(1) प्राकृतिक साधन

(2) जनसंख्या सम्बन्धी योजना और नीति

(3) जनसंख्या और परिवार नियोजन का अलग से मंत्रालय बनाया जाये।

(4) जनसंचार माध्यमों का प्रभावपूर्ण ढंग से जनसंख्या रोकथाम में प्रयोग।

(5) सतत् शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम।

(6) उचित मुद्रित सामग्री उपलब्ध कराना जो पोस्टर चार्ट, नारे और लेख एवं कहानियों के रूप में हो सकती है।

(7) जनसंख्या सम्बन्धी कानून का सभी के लिये बिना किसी प्रकार की छूट दिये सरकार द्वारा निष्ठा और सख्ती से लागू करना।

जितने भी उपरोक्त उपाय सुझाये गये हैं उन सभी उपायों में प्राकृतिक उपाय सबसे उत्तम है। उसके लिये जनसाधारण में सचेतना एवं जागरुकता और संवदनशीलता का विकास करना आवश्यक है। जन साधारण में जागरुकता का विकास जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से सरलता एवं सुगमता से किया जा सकता है। जनसंख्या शिक्षा का सम्बन्ध

पर्यावरण शिक्षा से जोड़ा जाये क्योंकि इन दोनों का अटूट सम्बन्ध है। इन दोनों को
एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकते। इन दोनों की पाठ्य वस्तु को औपचारिक
अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों में अनिवार्य रूप से उचित स्थान दिया जाना चाहिये
स्कूल स्तर पर अगर बालकों में आदर्श परिवार की धारणा स्पष्ट हो जाती है अर्थात् परिव
का आकार छोटा होना चाहिए तभी उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति सही ढंग से सम्भव
सकती है। भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 40% भाग किशोरावस्था से गुजर रहा
और वे सभी छात्र-छात्राएं स्कूल या महाविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं जो भविष्य
प्रौढ़ नागरिक के रूप में अपनी सक्रिय भूमिका निभायेंगे। इस लिये जनसंख्या के प्रति
जागरुकता का विकास छात्र-छात्राओं में जनसंख्या शिक्षा के माध्यम से पूर्णरूप से सम्भव
हो सकता है।

भारत सरकार द्वारा जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिये कई कानून एवं नियम बनाये
गये। जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिये कई योजनाएं बनाई गई तथा उन लोगों को
प्रोत्साहित किया गया जिनका परिवार छोटा था। एक दो बच्चे वाले व्यक्तियों को वेतन में
अतिरिक्त वृद्धि दी जाती है।

भारत की जनसंख्या सम्बन्धी योजना
[Plan and Policy for Controlling Population]

जनसंख्या में वृद्धि भी पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाने का एक कारण है इसलिए पर्यावरण
की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि जनसंख्या का नियन्त्रण
किया जाये पंचवर्षीय छठी योजना में जनसंख्या नियन्त्रण को प्राथमिकता दी गई थी पर
भारत सरकार इसे गम्भीरता से नहीं ले रही है न ही प्रभावशाली ढंग से लागू कर रही
है। संजय गांधी ने इस योजना को व्यावहारिक ढंग से लागू करने का प्रयास किये और
उसके अच्छे परिणाम निकले। पंचवर्षीय योजनाओं में परिवार नियोजन को महत्व दिया
जाता रहा है। परन्तु स्वेच्छा कार्यक्रमों को सम्मिलित करने के कारण अच्छे परिणाम
नहीं निकले। चौथी पंचवर्षीय योजना में समय की सीमा को निधारित किया गया जिससे
1979 में जन्म दर 39 प्रति हज़ार से घटकर 23 प्रति हज़ार हो गई थी। पांचवी पंचवर्षीय
योजना में 'सामाजिक सेवाओं' के साथ 'परिवार नियोजन' को सम्मिलित किया गया।
छठी पंचवर्षीय योजना में स्वास्थ्य, परिवार कल्याण तथा भोजन की पौष्टिकता को भी
शामिल किया गया जिससे 1983 में जन्मदर घट कर 30 प्रति हज़ार हो गई सातवीं
पंचवर्षीय योजना में प्रयोजनवादी नीति को अपनाया गया जिसमें संचार माध्यमों, प्रकाशन
सामग्री द्वारा तथा प्रोत्साहन एवं विश्वास देना आदि बातों को शामिल किया गया। जिसका
कोई विशेष परिणाम नहीं निकला।

जनसंख्या पर नियन्त्रण करने के लिये अनेक योजनाओं का लागू किया गया पर कोई सफल परिणाम नहीं निकला। भारत में जनसंख्या बहुत तीव्र गति से बढ़ रही है। इसे हम जनसंख्या विस्फोट कह सकते हैं। पर्यावरण की समस्या भी तीव्र गति से बढ़ रही है। जनसंख्या शिक्षा के द्वारा भी इस समस्या का समाधान हो सकता है।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. जनसंख्या और पर्यावरण पर निबन्ध लिखिए।
   (Write an essay on population and Environment.)
2. पर्यावरण जनसंख्या वृद्धि से कैसे प्रभावित होता है? जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए उपाय सुझाइये।
   (How environment is influenced by population growth? Suggest measures for control of population Growth.)

❑

7. निवास (घर) के अन्दर का वातावरण [INDOOR ENVIRONMENT]

निवास स्थान (घर) के वातावरण से तात्पर्य है कि ऐसे स्थान का पर्यावरण (वातावरण) जहां पर मनुष्य रहते हैं अर्थात् निवास करते हैं। यह वो आरामदायक स्थान होता है जहां मनुष्य अपना अधिक से अधिक समय व्यतीत करता है। लेकिन आज की तकनीकी और मशीनीकरण ने ऐसे उपकरणों को उपलब्ध करवा दिया है। जिनके प्रयोग से घर या निवास स्थान का पर्यावरण भी दूषित होने लगा है। घर में बहुत सी ऐसी सामग्री एवं साधन होते हैं जिनसे घर का वातावरण अशुद्ध होता है और हमारे स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है लेकिन हम में से अधिकांश लोग इस बात से अनभिज्ञ हैं।

निवास स्थान (घर) के अन्दर के पर्यावरण प्रदूषण के कारण (Causes of Indoor Environment Pollution)–घर के अन्दर भी बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिनके कारण पर्यावरण की गुणवता में कमी आती है। पर्यावरण प्रदूषित होने के घर के अन्दर जो कारण है वे निम्नलिखित है–

1. अभरक, प्लाइवुड, न्यूवुड, वार्निश और रासायनिक पदार्थ हानिकारक होते हैं।
2. मिट्टी, चूना लकड़ी, कंक्रीट, लोहा, सीमेंट एवं प्लास्टिक पेंटस आदि पदार्थ घर बनाने के काम आते हैं पर ये सब पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।
3. फर्नीचर बनाने में वार्निश, पेन्टस और फेविकोल आदि जो रासायनिक पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं वे जहरीले हैं तथा घर के अन्दर वाले पर्यावरण में हानिकारक गैसें छोड़ते हैं।
4. आजकल घरों में पोलीथिन और प्लास्टिक की बनी वस्तुओं का प्रयोग बहुत अधिक होने लगा है। जो घर की हवा और मिट्टी को प्रदूषित करते हैं।
5. जब कलोरीनेटिड पानी उबाला जाता है तो इससे कलोरोफोरम बनता है जिससे दम घुट जाता है जहां तक की मृत्यु भी हो सकती है।
6. घर के अन्दर रसोई एक महत्वपूर्ण जगह है जहां खाना बनाने के लिए किसी न किसी ईंधन का प्रयोग किया जाता है। जैसे कि मिट्टी के तेल, स्टोव, पैट्रोलियम गैस, गांवों में गोबर के उपले, लकड़ियां आदि जलाते हैं जिससे हानिकारक गैस व धुआं पैदा होता है। मिक्सी, गराइन्डर और जूसर तथा दूसरे रसोई वाले उपकरण भी ध्वनि प्रदूषण पैदा करते हैं।
7. घर में कई ऐसे उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जो वातावरण को प्रदूषित करते हैं। सी. एफ.सी. वातावरण की ओजोन परत को नष्ट करती है। जिससे अन्तरिक्ष और सूर्य से हानिकारक बैंगनी किरणें धरती पर आती हैं।

विज्ञान ने आज मनुष्य को बहुत से सुख एवं ऐश्वर्य सम्बन्धी साधन दिये हैं पर से मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

निवास स्थान (घर) के अन्दर के पर्यावरण के लिए सुझाव (Suggestions indoor environment)–मनुष्य घर के अन्दर काफी समय रहता है और घर का विरण मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है। इसलिए घर में रहने वाले लोगों को हिए कि घर का वातावरण साफ व स्वच्छ बनाए। घर के पर्यावरण को स्वच्छ एवं पवित्र ाने के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. घर बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाये कि घर खुला, हवादार एवं रोशनी ला होना चाहिए।
2. घर बनाने में रासायनिक चीज़ों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
3. घर में रसोई एवं स्नान घर साफ हवादार एवं खुला होना चाहिए।
4. भवन निर्माण करते समय जो भी सामान प्रयोग में लाये वह अच्छी किस्म का ना चाहिए।
5. सिंथैटिक वस्तुओं, विकल्पन, वस्तुओं एवं विनाश होने वाली वस्तुओं का प्रयोग हीं करना चाहिए।
6. सीधे कुआं खोद कर गन्दा मल निचले पानी में नहीं भेजा जाना चाहिए।
7. घर में बिजली उपकरणों का प्रयोग निश्चित दिशा निर्देश के अनुसार करना चाहिए।
8. घर में बची खुची चीज़ों का सही प्रबन्ध करना चाहिए।
9. परम्परागत ईंधन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
10. आवश्यकता से अधिक रोशनी के उपरकरण घर में नहीं लगाने चाहिए।
11. घरों में सौर ऊर्जा को उत्साहित किया जाना चाहिये।
12. घर के अन्दर संचार के साधनों की आवाज़ तेज़ नहीं होनी चाहिए। जैसे तीविज़न, टेपरिकार्ड, स्टीरियों धीमी आवाज़ में चलाना चाहिए।
13. घर में ए.सी. (A.C.), कूलरों, हीटर आदि का प्रयोग कम करें।
14. घर में धूल आदि से बचने के लिए सफाई उचित ढंग से करें।
15. सुगन्धित दुर्गन्ध वाले पदार्थ का प्रयोग कम करना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

निवास स्थान के अन्दर के पर्यावरण से क्या तात्पर्य है? निवास स्थान (घर) के अन्दर के प्रदूषण के क्या कारण हैं?
(What do you mean by indoor environment? What are the cause of indoor environment Pollution?) ❑

Unit–VIII

परिस्थितिकी (इकोलोजी) और पर्यावरण का परिचय

[Introduction to Ecology & Environment]

1. परिस्थितिकी और वातावरण (पर्यावरण) की धारणा
   (Concept of Ecology and Environment)
2. जीव मण्डल
   (Biosphere)
3. समुदाय
   (Community)
4. जनसंख्या
   (Population)
4. परिस्थिति तन्त्र प्रणाली
   (Ecosystem)

परिस्थितिकी (इकोलोजी) और पर्यावरण का परिचय
[INTRODUCATION TO ECOLOGY AND ENVIRONMENT]

परिस्थितिकी (इकोलोजी) का अर्थ और परिभाषा
[Meaning and Definition of Ecology]

पर्यावरण अध्ययन का महत्व बहुत बढ़ गया है। इसके अध्ययन में विज्ञान, जीव विज्ञान और व्यावहारिक विज्ञान को शामिल किया जाता है। इसके अध्ययन का क्षेत्र पर्याप्त रूप से व्यापक है क्योंकि इसका सम्बन्ध अन्य विषयों से जैसे जैसे-पर्यावरण जीव विज्ञान, पर्यावरण वनस्पति विज्ञान, पर्यावरण-रसायन शास्त्र और पर्यावरण भूगोल आदि। पर्यावरण शिक्षा एक नया एवं महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र है जिसका अध्ययन और अध्यापन शिक्षा के अन्तर्गत करते हैं। पर्यावरण का परिस्थितिकी के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। परिस्थितिकी जीव विज्ञान की वो शाखा है जिसके अन्तर्गत जीव-जन्तुओं की क्रियाओं और मुख्य रूप से पर्यावरण (वातावरण) में उनकी परिस्थिति का अध्ययन किया जाता है। यह विषय बहुत रोचक है क्योंकि यह रूचिपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालता है यह इस तथ्य की व्याख्या करता है कि अनेक कठिनाइयों के होने पर भी प्रकृति अपना सन्तुलन बनाये रखने में सक्षम है।

अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition)-परिस्थितिकी की विज्ञान से सम्बन्धित एक नया विषय है। इसके अन्तर्गत कई सिद्धान्त है जो प्राणियों के पर्यावरण के सम्बन्ध और उनकी पारस्परिक निर्भरता को स्पष्ट करता है। यह ग्रीक भाषा के दो शब्दों के मेल से बना है। 'आई कोस' और 'लोगोस' (Oikos and logos) का अर्थ होता है। प्राणियों तथा पर्यावरण में सम्बन्धों और परस्पर निर्भरता को प्रकट करना है। इस शब्द परिस्थितिकी (Ecology) की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से की है। कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

वैसे परिस्थितिकी का साधारण अर्थ 'घर का अध्ययन' होता है।

''परिस्थितिकी-प्रणाली के स्वरूप एवं कार्यों के अध्ययन को परिस्थितिकी कहते हैं। इसको सरल भाषा में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रकृति के स्वरूप एवं कार्यों का अध्ययन परिस्थितिकी कहलाती है।''

सी०जे० क्रेंबस (C.J. Kurebrs) ने परिस्थितिकी सरल एवं व्यापक परिभाषा दी है जो इस प्रकार है-

"परिस्थितिकी की प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य अन्त: क्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन है जो प्राणियों को पर्याप्तता तथा विवरण विस्तार का निर्धारण करती है।" (Ecology is the scientific study of the interections between organism and nature that determine the range or distributions and absendance of orgaisms)

मैकफेडियन (Macfadyew) के अनुसार, "परिस्थितिकी एक विज्ञान है, जिसका सम्बन्ध, प्राणियों, पौधों, पशुओं तथा उनके पर्यावरण के आन्तरिक सम्बन्धों से होता है।" (Ecology is a science which concern itself with interelationship of living organisms plants animals and their environment.)

जी०एल० कलार्क (G.L.Clarke) के अनुसार, "परिस्थितिकी में पौधों तथा जानवरों का उनके वातावरण के साथ आन्तरिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है जिसमें अर्थ, पौधों तथा जानवरों को प्रधान तथा भौतिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है।" (Ecology is the study of inter-relations of plants and animals with in environment which include the inferences of other plants and animals as well as of the physical feature.)

एल०आर० टेलर्स (L.R. Taylor) के अनुसार, "परिस्थितिकी अध्ययन का एक अंग है। जिसमें प्राणी, जनसंख्या, जीवों का समुदाय परिवर्तन के साथ कैसी प्रतिक्रिया करते हैं।" (Ecology is the study of the way in which individual organism, population of some species and communities is respond to those changes.)

आधुनिक वैज्ञानिकों ने परिस्थितिकी की परिभाषा व्यापक रूप से अधिक विस्तृत दी हैं। इनमें से यहां पर कुछ परिभाषाओं का उल्लेख इस प्रकार है–

साउथविडे (Southvide) के अनुसार, "परिस्थितिकी एक वैज्ञानिक अध्ययन है जो जीव धारियों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनके अपने वातावरण के साथ सम्बन्धों का अध्ययन करता है। यह अपनी परिभाषा इस प्रकार करते हैं कि, यह जैविक अन्त: क्रिया का अध्ययन किया है जो जैविक तथा अजैविक समुदायों का उसके पर्यावरण-सम्बन्धों का अध्ययन करता है।" (Ecology is the scientific study of the relations of living organisms which each other and with their environment." He Further explained his definition of ecology by stating that it is the science of biological interactions among individuals populations and communities, and it is also the science of ecosystems that inter-relations of biotic communites with their non-living environment.)

पिनलिया (Pinalia) के अनुसार, "परिस्थितिकी के अन्तर्गत प्राणियों तथा सम्पूर्ण जैविक तथा भौतिक कारकों, प्रभाव या उनको प्रभावित करने वाले कारकों, सम्बन्धों का

अध्ययन किया जाता है।" (Ecology is the study of relations between organisms and the totality of the biological and physical factors affecting them or uninfluenced by them.)

एम॰ई॰ क्लार्क (M.E. Clark) के अनुसार, "पारिस्थितिकी एक पारिस्थितिक-प्रणाली तथा उनके वातावरण की पारस्परिक अन्तःक्रिया का अध्ययन है। पर्यावरण अन्तःक्रिया के अध्ययन का वैज्ञानिक अध्ययन है जो प्राणियों की भलाई हेतु विस्तार, वितरण, प्रचुरता उत्पादकता तथा परिवर्तन को नियन्त्रित करता है।" (Ecology is a study of ecosystem or the totality of the reciprocal interactions of all organisms to all their environment. It is scientific approach study of environment interactions which control the welfare of living things regulating their range distributions abundance, reproductions and evolution.)

पारिस्थितिकी विशेषतायें (Characteristics of Ecology)—उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हमें पारिस्थितिकी की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का पता लगता है जो निम्नलिखित हैं–

1. पारिस्थितिकी वह विज्ञान जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण प्राणियों और उनके सम्पूर्ण वातावरण के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

2. इसके अन्तर्गत प्राणियों और उनके वातावरण के सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

3. यह प्राणियों और उनके वातावरण के सम्बन्धों के विश्लेषण का ज्ञान कराता है।

4. इसके द्वारा विशाल प्रकृति के स्वरूप और कार्यों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

5. इसके अन्तर्गत प्राणियों और उनके वातावरण में आन्तरिक सम्बन्धों और उनकी आन्तरिक निर्भरता का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन किया जाता है।

6. पारिस्थितिकी वैज्ञानिक अध्ययन एक पहलू है जिसमें जीव-प्राणियों के कल्याण हेतु नियन्त्रण और संचालन का अध्ययन किया जाता है।

7. यह एक दार्शनिक विचारधारा भी इसमें विश्व जीवन की उत्पत्ति प्राकृतिक प्रक्रियाओं के रूप में मिलती है।

8. यह पर्यावरण का वैज्ञानिक अध्ययन है जो पर्यावरण की अन्तः-क्रियाओं के विस्तार, वितरण, पर्याप्तता, उत्पादकता एवं विकास की दृष्टि से नियन्त्रित एवं संचालित करता है।

9. यह पारिस्थितिकी प्रणाली का विज्ञान है। पारिस्थितिकी प्रणाली पारिस्थितिकी की इकाई होती है।

10. यह एक ऐसा विज्ञान है जिसके अन्तर्गत प्राणियों और उनके वातावरण के आन्तरिक सम्बन्धों और जीवों के बीच आन्तरिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

परिस्थितिकी-विज्ञान व कला
[Ecology-Science and Art]

परिस्थितिकी की परिभाषाओं और विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के बाद इस बात का पता चलता है कि यह विषय विज्ञान भी है और कला भी है क्योंकि विज्ञान में निरीक्षण और अनुभव होता जिससे हमें जानकारी प्राप्त होती है। कला का सम्बन्ध कार्य करने और उसके सम्पादन से होता है। पर्यावरण-शिक्षा का सम्बन्ध ज्ञान, बोध कौशल और व्यावहारिक उद्देश्यों से होता है। इसमें निरीक्षण, अनुभव और व्यावहारिक कार्य करने को महत्व दिया जाता है। इस प्रकार पर्यावरण-शिक्षा भी विज्ञान और कला दोनों ही हैं। वातावरण (पर्यावरण) मनुष्य की गुणवत्ता को महत्व दिया जाता है। इसलिये यह एक दार्शनिक प्रकरण भी है क्योंकि एक दार्शनिक ही 'मनुष्य की गुणवत्ता' की व्याख्या करने में सक्षम है।

वातावरण या प्रकृति का अवलोकन (निरीक्षण) और अनुभवों से हम जानकारी और सूचनाओं को एकत्रित करते हैं उससे अनेक सिद्धान्तों का पत्ता चलता है। इन सिद्धान्तों को ही 'परिस्थितिकी विज्ञान' की संज्ञा दी जाती है। इन सिद्धान्तों का मानव कल्याण के लिये प्रयोग करना ही 'परिस्थितिकी की कला' कहा जाता है। कला का विकास विज्ञान पर निर्भर करता है। जितना अधिक सीखा और समझा जाता है उतना ही कला का विकास होता। वास्तविकता यह है कि कला का और विज्ञान का विकास साथ-साथ चलता है। पर्यावरण शिक्षा विज्ञान और कला दोनों ही हैं और परिस्थितिकी भी विज्ञान और कला दोनों ही हैं। परिस्थितिकी के सन्दर्भ में शिक्षा के अध्ययन को 'मानवीय परिस्थितिकी' की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार शिक्षा परिस्थितिकी विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि शिक्षा बालक और उसके वातावरण के बीच अन्त: क्रिया है। बालक का वातावरण मुख्य से चार प्रकार का भौतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक होता है। परिस्थितिकी का विज्ञान विकास के सभी पक्षों से होता है और विकास की प्रक्रिया में सहायक होता है। इसका मुख्य रूप से सम्बन्ध पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग करने और पर्यावरण के प्रदूषण से होता है। इसका मूल रूप में जीव विज्ञान के प्रकरणों से सम्बन्ध होता है।

चार्ल्स डार्विन के अविर्भाव का सिद्धान्त (Thory of Evalution) का विकास 1859 में हुआ था। परिस्थितिकी-विज्ञान का विकास भी डार्विन के सिद्धान्त के साथ-साथ ही हुआ। इन्वार्निंग और उसके साथियों ने परिस्थितिकी विज्ञान को पौधों का अध्ययन

बताया है जिसमें जीवधारियों, प्राणियों का उनके वातावरण के साथ सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। कुछ ने इसे समुदाय के अध्ययन की परिस्थितिकी कहा है। चार्ल्स इल्टन ने परिस्थितिकी को प्राकृतिक इतिहास का विज्ञान बताया है। इन उपरोक्त बातों से विदित होता है कि परिस्थितिकी की विज्ञान में मुख्य रूप से दो क्षेत्रों का अध्ययन शामिल है–

पहला जीवधारियों और उनके पर्यावरण से सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

दूसरा जीवधारियों के विकास के इतिहास से सम्बन्धित है।

परिस्थितिकी के उद्देश्य [Objectives of Ecology]

परिस्थितिकी एक विज्ञान है और इसका अपना स्वतन्त्र अध्ययन क्षेत्र है। इसकी अपनी विषय वस्तु शिक्षण विधियां और प्रक्रिया है। परिस्थितिकी की ज्ञान प्राप्ति के निम्न उद्देश्य है–

1. विश्व जीवन को प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में अर्थ प्रदान करना।
2. सभी प्राणियों और उनके सभी वातावरणों के सम्बन्धों की विस्तृत रूप से जानकारी प्रदान करना।
3. जीव धारियों और उनके वातावरण से सम्बन्ध का गहन अध्ययन करना।
4. प्रकृति के वैभव और उसके कार्यों का सही ज्ञान प्राप्त करना।
5. जीव धारियों के हित के लिये नियन्त्रण और संचालन के पहलुओं का विकास करना।
6. प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा का अध्ययन करना।
7. भौतिक वातावरण का जैविक उत्पादकता का निरीक्षण करना और यह अध्ययन करना कि किस प्रकार प्राकृतिक उत्पादन मानव की अवश्यकताओं की पूर्ति करता है जिससे मनुष्य की गुणवत्ता में सुधार आता है।
8. जीव धारियों और उनके वातावरण के घटकों (तत्वों) का पारस्परिक निर्भरता का विश्लेषण करना।
9. जीव धारियों और वातावरण के आन्तरिक सम्बन्धों के विकास के लिये प्रक्रिया की खोज करना।
10. पर्यावरणों के घटकों (तत्त्वों) के सम्बन्धों के लिये गणितीय प्रतिमान का विकास करना जिससे पर्यावरण के प्रभावों को प्रणाली विश्लेषण से भविष्यवाणी की जा सके।

उपरोक्त सभी उद्देश्य परिस्थितिकी विभिन्न पहलुओं एवं क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

परिस्थितिकी का क्षेत्र (Scope of Ecology)–परिस्थितिकी के अर्थ और उद्देश्यों से ज्ञात होता है कि इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है इसका क्षेत्र जीव विज्ञान तक सीमित न होकर बल्कि इसकी पहुंच सामाजिक विज्ञानों और व्यावहारिक विज्ञानों तक भी है। परिस्थितिकी का अध्ययन मस्तिष्क की अवस्था के रूप में भी किया जाता है। जिससे सामाजिक विकास का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। यह आर्थिक विकास की गति को प्रेरित करता है।

परिस्थितिकी एक ऐसा विज्ञान है जिसका ज्ञान जनसाधारण के लिये आवश्यक है। आज के युग के मनुष्य ही समस्याएं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से परिस्थितिकी के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं इसलिये मानवी समस्याओं के जानने हेतु परिस्थितिकी का ज्ञान बहुत आवश्यक हैं। आधुनिक युग में परिस्थितिकी का सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी और वैज्ञानिक विकास में बहुत योगदान है। इसके अतिरिक्त यह विषय राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय नीति निर्धारण में बहुत सहायक है। परिस्थितिकी की अन्य जीवों विज्ञान से पारस्परिक निर्भरता ही नहीं होती बल्कि भौतिक सामाजिक विज्ञानों के साथ भी पारस्परिक निर्भरता होता है। वास्तविक रूप से यह विषय मानव-कल्याण हेतु महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है।

इसमें केवल जीव विज्ञान विषयों को ही सम्मिलित नहीं किया जाता बल्कि भौतिकी, रयासन की, भूगोल गणित, सांख्ययिकी, समाजशास्त्र, मानव शास्त्र और जलवायु विज्ञान को भी शामिल किया जाता है। परिस्थितिकी क्षेत्र का व्यावहारिक प्रयोग (उपयोग) कृषि, मछली पालन, जनस्वास्थ्य, मानसिक, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की सुरक्षा और स्वच्छता आदि के लिये भी किया जाता है।

परिस्थितिकी की निम्न मुख्य शाखाएं जिनका अध्ययन किया जाता है–

(1) आवासीय परिस्थितिकी (Habitant Ecology)
(2) जनसंख्या परिस्थितिकी (Population Ecology)
(3) मानव परिस्थितिकी (Human Ecology)
(4) समुदाय परिस्थितिकी (Community Ecology)
(5) समाज शास्त्र (Sociology)
(6) व्यावहारिक परिस्थितिकी (Applied Ecology)
(7) भौगोलिक परिस्थितिकी (Geographical Ecology)
(8) उत्पादन परिस्थितिकी (Production Ecology)
(9) सौर-ऊर्जा परिस्थितिकी (Radiation Ecology)
(10) चरित्र शास्त्र (Ethology)
(11) प्रणाली परिस्थितिकी (System Ecology)

परिस्थितिकी के सिद्धान्त [Principles of Ecology]

इसके कुछ आधार भूत सिद्धान्त हैं जो जीव धारियों और पर्यावरण के निभिन्न पहलुओं को प्रभावित एवं नियन्त्रित करते हैं। ये सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

(1) परिस्थितिकी के अन्तर्गत यह स्पष्ट ज्ञान होता है कि सभी जीवधारी और भौतिक पर्यावरण परस्पर प्रतिक्रिया करते हैं और जीवधारी परस्पर अन्त: क्रिया करते हैं और इसके साथ ही साथ एक दूसरे की ओर भौतिक पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

(2) परिस्थितिकी की मूल इकाई (आधार भूत इकाई) परिस्थिति-प्रणाली है क्योंकि इसमें जैविक और अजैविक तत्व शामिल होते हैं।

(3) भौतिक और जैविक प्रक्रियायें समानता के सिद्धान्त का अनुसरण करती है और वातावरण की भौतिक एवं जैविक प्रक्रियाएं मानव क्रियाओं से प्रभावित होती हैं।

(4) प्राकृतिक आपात्तों (आपत्ति) का जैविक समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैविक प्रक्रियों भौतिक घटनाओं से जुड़ी होती हैं फिर भी गम्भीर संकट उत्पन्न होते हैं।

(5) जीव-धारियों का ज्ञान पृथ्वी पर जीवन की परिस्थितिकी प्रणाली द्वारा ही होता है।

(6) वातावरण सम्बन्धी सिद्धान्त समग्र प्रकृति के वातावरण से ही सम्बन्धित होते है जो जीवधारियों के समुदायों को प्रभावित करते हैं।

(7) पर्यावरण परिवर्तन में मनुष्य एक सक्रिय घटक होता है जो प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से परिस्थितिकी विधि में सुधार लाता है।

(8) परिस्थितिकी विधि से स्थिरता आती है जब यह तन्त्र पर्यावरण के परिवर्तन के साथ समायोजन नहीं कर सकता है।

(9) परिस्थितिकी विधि से उत्पादकता दो कारणों पर निर्भर करती है जो निम्न हैं–

(1) प्राथमिक उत्पादकों के लिये सौर उर्जा का उपलब्ध होना।

(2) सौर उर्जा और रसायनिक ऊर्जा पौधों की क्षमता पर निर्भर करती है।

परिस्थितिकी और वातावरण (पर्यावरण) (Ecology and Environment)– परिस्थितिकी की जीव-विज्ञान की वह शाखा है जिसमें जीव-जन्तुओं की क्रियाओं और विशेष रूप से वातावरण में उनकी परिस्थिति का अध्ययन किया जाता है। अनेक कठिनाइयों के बावजूद प्रकृति किस प्रकार अपना सन्तुलन बनाये रखती है यह वास्तव में अत्यन्त रोचक विषय है।

वायुमण्डल में मुख्य रूप से नाइट्रोजन 78% आक्सीजन 21% कार्बनडाईआक्साइड 0.03% और अन्य गैसे हैं। हरे पौधे कार्बन डाईआक्साइड लेते है और प्रकाश संश्लेषण

क्रिया द्वारा वायुमण्डल में आक्सीजन छोड़ते हैं। अनेक पेड़ पौधों ने पृथ्वी के नीचे दबकर कोयले व पैट्रोलियम का रूप धारण कर लिया है। जब इनको जलाया जाता है तो वह वायुमण्डल से आक्सीजन लेकर कार्बनडाइऑक्साइड छोड़ देते हैं। इस प्रकार वायुमंडल में कार्बनडाइऑक्साइड और आक्सीजन का सन्तुलन बना रहता है। इसका चक्र कहा जाता है।

द्वितीय चक्र नाइट्रोजन का होता है। सभी जीव मुख्य रूप से प्रोटीन के बने हैं और प्रोटीन बनाने के लिये नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। लेकिन बड़े पौधे और जीव नाइट्रोजन से सीधे प्रोटीन नहीं बना सकते। पृथ्वी में कुछ इस प्रकार के बैकटिरिया और समुद्र में एक प्रकार के जीवाणु नाइट्रोजन को प्रोटीन में बदलते हैं। भोजन के रूप में मनुष्य औ पशु इस प्रोटीन को प्राप्त करते हैं। जंगलों को काटने से और समुद्र में अनेक प्रकार के विषैले पदार्थ छोड़ने से, जो जीवाणुओं को नष्ट कर दें, इन प्रक्रियाओं में रूकावट पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त अधिक ईंधन जलाने वायुमण्डल में इतनी कार्बनडाइऑक्साइड पहुंच जाती है कि पेड़-पौधे उसे ग्रहण नहीं कर सकते।

वास्तविकता यह है कि प्रत्येक पशु-पक्षी और सूक्ष्मतम जीवाणु की भी प्रकृति में एक निश्चित भूमिका और उसके पारस्परिक सम्बन्ध हैं। सामान्य तौर पर प्रतिकूल परिस्थितियों में इनमें से कुछ ही समाप्त होते हैं और शेष अपने कार्यों में संलग्न रहते हैं। परिस्थितिकी का सिद्धान्त है कि मिली-जुली फसलों व जंगलों से प्रकृति का सन्तुलन बना रहता है इसी तरह से अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों का होना भी अनिवार्य है। यदि विशाल क्षेत्रों में एक ही प्रकार की फसलें उगाई जायें तो यह सन्तुलन समाप्त हो जाता है। प्रकृति का यह असन्तुलन मानव-जाति के लिये घातक सिद्ध हो सकता हैं।

फसलों की रक्षा के लिये हम पक्षियों को मारते हैं लेकिन फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले उन कीड़ों में वृद्धि हो जाती है जिन्हें पक्षी खाते हैं। कीड़ों पर नियन्त्रण पाने के लिये यूरोप को एक देश को पक्षी आयात करने पड़े थे। भारत में यदि सभी सांप यह सोचकर मार दिये जायें कि वे मानव के लिये घातक हैं, जो कि वास्तव में नहीं हैं क्योंकि ऐसा हो सकता है भविष्य में हमें चूहों को मारने के लिये विदेशों से सांप आयात करने पड़े।

इस प्रकार पेड़-पौधों सहित अन्य प्राणियों की सुरक्षा में मानव की सुरक्षा है। पर्यावरण के प्रदूषण से मनुष्य न केवल अपना जीवन दुखमय वना रहा है बल्कि उन सबको भी जिन पर वह निर्भर है और जो हमेशा उसके जीवन को सुखमय बनाने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं।

पर्यावरण व परिस्थिति की से सम्बन्धित उपरोक्त विषय वस्तु डॉ. अशोक कुमार सूरी की पुस्तक 'शिक्षा के सिद्धान्त' से ही गई है।

पर्यावरण (Environment)–हमारी पृथ्वी का पर्यावरण सभी जीवों के अनुकूल हैं और यही पर्यावरण का अनोखापन है। पर्यावरण के मुख्य रूप से दो अंग हैं जिसे भौतिक पर्यावरण और दूसरे को जैव पर्यावरण की संज्ञा दी जाती है। भौतिक वातावरण (पर्यावरण) में भूमि, जल और वायु जैसे अजैविक तत्व आ जाते हैं। जैविक पर्यावरण में पेड़-पौधे और सभी प्रकार के छोटे बड़े जीव-जन्तुओं को शामिल किया जाता है। पर्यावरण के ये दोनों अंग एक दूसरे पर निर्भर हैं और दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। इन दोनों की अन्त: क्रिया में पदार्थों और ऊर्जा का एक से दूसरे में स्थानान्तरण भी होता है। पर्यावरण स्थिर न होकर गतिशील है। यही कारण है कि पर्यावरण के भौतिक और जैविक तत्वों में समय परिवर्तन के साथ परिवर्तन के साथ परिवर्तन होता रहता है। सूर्य ऊर्जा का सबसे बड़ा और प्रमुख संसाधन है। इसके द्वारा ही पर्यावरण (वातावरण) में परिवर्तन होते हैं। हम सभी मौसम के दैनिक परिवर्तनों और जलवायु में ऋतुओं के अनुसार होने वाले परिवर्तनों से परिचित हैं। पेड़-पौधे अपने विकास (वृद्धि) के लिये सूर्य पर निर्भर करते हैं। सभी जीव-जन्तुओं को भोजन पेड़-पौधों से ही मिलता है। इस प्रकार सभी जीवों का आधार सूर्य है।

अधिकांश जन साधारण इस प्रकार के परिवर्तनों से तो परिचित हैं लेकिन पृथ्वी के स्थल भाग में जो परिवर्तन होते हैं उससे न तो परिचित होते हैं और न ही ऐसे परिवर्तनों को सहजता से स्वीकार करते हैं। भूकम्प और ज्वालामुखियों जैसे परिवर्तन तो कभी-कभी ही होते हैं, लेकिन तल सन्तुलन के कारक भू-गर्व के स्वरूप को लगातार बदल रहे हैं।

पर्यावरण (वातावरण) के भौतिक तत्वों के अन्तर्गत भूमि, जल और वायु के मध्य पदार्थों और ऊर्जा का परिसंचरण होता है। यही परिसंचरण सभी जैविकों के लिये अनुकूल वातावरण को उत्पन्न करता है। भूमि, जल और वायु एक-दूसरे के संकीर्ण क्षेत्र में सभी जीव रहते हैं। हम सभी के लिये उस वातावरण (पर्यावरण) का महत्व सबसे अधिक है जिसमें मनुष्य रहता है। मनुष्य पृथ्वी पर रहता है अर्थात् पृथ्वी मानव का आवास स्थान है। मनुष्य पृथ्वी के पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं से अलग नहीं रह सकता क्योंकि वह अपनी मूलभूत (बुनियादी) आवश्यकताओं के लिये उन पर ही निर्भर करता है। इस लिये हमारे सब के लिये यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि परिस्थितिकी विज्ञान के अन्तर्गत हम अपनी पृथ्वी के सभी पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के पर्यावरण का गहनता से अध्ययन करें।

जीव मण्डल (Biosphere)–सम्पूर्ण मण्डल के जल, वायु और मिट्टी जिसमें जीवधारी रहते हैं उसे जीव मण्डल (Biosphere) कहते हैं। मनुष्य और जीव-मण्डल के कार्यक्रम समस्या केन्द्रित होते हैं। इन कार्यक्रमों और समस्याओं की प्रकृति अन्त: अनुशासकीय होती है। इस दृष्टि से विशेषज्ञों का समन्वित प्रयास रहता है और

उनका मुख्य लक्ष्य समस्याओं के समाधान हेतु वैज्ञानिक आधार प्रदान करना होता है। जीव मण्डल की समस्याओं का समाधान परिस्थिति की प्रणाली (तन्त्र) के सन्दर्भ में किया जाता है। इसमें प्रणाली आयाम (System Apporach) का अनुसरण किया जाता है जिससे सबसे उत्तम समाधान एक विशेष परिस्थितिकी में दिया जाता है। यह मनुष्य और जीव-मण्डल के नियोजकों नीति निर्धारकों, प्रबन्धकों और वैज्ञानिकों को समुचित निर्णय लेने के लिये सहायक होता है जिससे समस्या का समुचित समाधान ज्ञात किया जा सकता है।

समुदाय परिस्थितिकी [Community Ecology]

इसमें समुदायों और परिस्थिति तन्त्रों का अध्ययन किया जाता है जैसे समय परिस्थितिकी वेत्ता मानसूनी जलवायु, मरुस्थल और कोण धारी वनों का अध्ययन करता है। किसी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितिकी के समस्त जीवधारियों का उनके पर्यावरण से सम्बन्धों एवं प्रभाव का अध्ययन करता है। इसमे सम्पूर्ण उर्जा और पदार्थों के प्रवाह प्रणाली को सम्मिलित किया जाता है। इसे समग्र परिस्थितिकी (Synecology) भी कहते हैं।

इस परिस्थितिकी के अन्तर्गत जीवधारी की एक जाति और भौतिक घटकों में एक घटक, प्रकाश, तापमान, आर्द्रता, खारीपन और क्षारीयन के सम्बन्ध एवं प्रभाव का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार के प्रयोग का प्रारुप सरल होता है और मापन करना भी सुगम होता है। इसका निम्न क्षेत्रों में महत्व बहुत अधिक है-

(1) वनस्पति विज्ञान
(2) जीव विज्ञान
(3) कृषि विज्ञान
(4) वानकी
(5) अर्थ शास्त्र आदि।

इसमें मछली पालन, पशुओं और कृषि को भी शामिल किया जाता है। भूमि संरक्षण और वन्य जीवन संरक्षण में भी विशेष महत्व है। इस प्रकार के अध्ययन से किसी जीव के वितरण, समायोजन, विशिष्टीकरण आदि के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। पौधों का जीवन-चक्र पर्यावरण के अनेक कारकों से प्रभावित होता है जिससे वह अपना समायोजन नहीं कर सकता। एकांगी परिस्थिति का अध्ययन जीवन के इतिहास से सम्बन्धित होता है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन चक्र के सम्बन्ध में समायोजन को सम्मिलित किया जाता है। जीव अपने सम्पूर्ण जीवन चक्र में प्राकृतिक परिस्थितियों का किस प्रकार अनुकूलन करता रहता है।

जनसंख्या परिस्थितिकी (Population Ecology)–इसके अन्तर्गत जीव-धारियों की आबादी की अभिवृद्धि, स्वरूप और नियन्त्रण का अध्ययन करते हैं।

आज के युग में जनसंख्या केवल बढ़ ही नहीं रही है बल्कि इसका विस्फोट हो रहा है। इस विस्फोट के परिणामस्वरूप अनेक समस्याओं का जन्म हुआ है। सबसे गम्भीर समस्या पर्यावरण प्रदूषण की है। जिसे जनसंख्या के विस्फोट ने ही इस समस्या को जन्म दिया है। मनुष्य और समाज की खुशी, प्रसन्नता और खुशहाली का मुख्य रूप से आधार पर्यावरण (वातावरण) की गुणवत्ता क्योंकि पर्यावरण की गुणवत्ता का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव मनुष्य की गुणवत्ता पर पड़ता है। जनसंख्या के स्वरूप को समझने के लिये निम्न महत्वपूर्ण शब्दों के अर्थ को समझना अत्यन्त आवश्यक है–

1. जनसंख्या अध्ययन (Demography)–जनसंख्या की प्रक्रिया का वर्णन गतिविधि और सांख्यकीय विशलेषण के लिये प्रयोग में लाते हैं।

2. जन्म दर (Birth Rate)– एक हज़ार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष जन्म लेने वालों की संख्या जन्मदर कहलाती है।

3. मृत्यु दर (Death Rate)–एक हज़ार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष मरने वाले की संख्या को मृत्यु दर कहते हैं।

4. शिशु मृत्यु दर (Infant death Rate)–एक हज़ार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष मरने वाले बालकों की संख्या को शिशु मृत्युदर कहते हैं।

5. जीवन अपेक्षा (आकांशा) (Life Expectancy)–मरने वालों की औसत आयु को जीवन अपेक्षा कहते हैं। भारत वर्ष में जीवन अपेक्षा (आकांश) 54 वर्ष की आयु है। जबकि न्यूज़ीलैड़ में 74 वर्ष, ब्रिटेन में 75 वर्ष की आयु है। इसका कारण यह है कि भारत में शिशु मृत्यु दर अधिक है।

6. प्राकृतिक वृद्धि (Natural Increase)–प्रति एक हज़ार की जनसंख्या में मरने वालों की संख्या से पैदा होने वालों की संख्या की अधिकता को प्राकृतिक वृद्धि कहते हैं। बाहर से आने वाली जनसंख्या को इसमें शामिल नहीं करते हैं।

7. उत्पादकता (Fertility)–एक जनसंख्या की वास्तविक पैदा करने की संख्या को उत्पादकता कहा जाता है। उत्पादकता सामाजिक और परिस्थितिकी घटकों पर निर्भर होती है। इसमें अधिक विषमता पाई जाती है।

8. मानवीय जन्मदर (Human birth Rate)–प्रति एक हज़ार की जनसंख्या में प्रतिवर्ष पैदा होने वालों की औसत संख्या को मानवीय जन्म दर कहा जाता है। जबकि सभी आयु के व्यक्तियों की उत्पादकता समान नहीं होती है। जनसंख्या अध्ययन विशेषज्ञ प्रत्येक आयु वर्ग के व्यक्तियों की जन्म दर की विशिष्ट मापक के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

9. मानवीय मृत्युदर (Human death Rate)–प्रति एक हज़ार की जनसंख्या में प्रति वर्ष मरने वालों की औसत संख्या को मानवीय मत्युदर कहते हैं। यहां पर भी विशेषज्ञ अधिक संवेदनशील मापक को प्रयोग में लाते हैं, क्योंकि विभिन्न आयु वर्ग के व्यक्तियों का मानवीय मृत्यु दर समान नहीं होती है। कुछ में मृत्यु दर अधिक होती है और कुछ में कम होती है। यह भी सामाजिक और परिस्थितिकी घटकों पर निर्भर करती है।

10. मानवीय जनसंख्या का घनत्व (Density of human Population)-इस धरती पर जनसंख्या का वितरण समान रूप से न होकर असमान रूप से है। मानवीय जनसंख्या का वितरण गांव नगर, जिला, प्रदेश, राष्ट्र, विश्व और किसी विशिष्ट क्षेत्र में विभाजित किया जाता है। किसी क्षेत्र के भूमि के क्षेत्रफल का सम्पूर्ण रहने वाले व्यक्तियों की जनसंख्या के योग में भाग लेकर ज्ञात किया जाता है। प्रतिवर्ग मीटर या प्रतिवर्ग मील में रहने वालों को औसत संख्या को 'जनसंख्या का घनत्व' कहते हैं। इससे जनसंख्या की सघनता और बिखराव के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। विश्व की औसत जनसंख्या का घनत्व 27 व्यक्ति प्रतिवर्ष किलोमीटर है

संसार में चीन की जनसंख्या सबसे अधिक है परन्तु दक्षिण की जनसंख्या का घनत्व संसार में सबसे अधिक है। हमारे भारत का दूसरा स्थान है। दक्षिण कोरिया में औसतन 345 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर है। इथोपिया का मृत्यु दर सबसे अधिक है। जापान तथा कानाड़ा का मृत्युदर विश्व में सबसे कम है। संसार की जनसंख्या (1987) में 50 खरब थी।

मानवीय जनसंख्या की वृद्धि (Human population Growth)–विश्व में मानवीय जनसंख्या ने लगातार वृद्धि हो रही है। परन्तु 1800 ई. के मध्यकाल से जनसंख्या में तेज़ी से वृद्धि हुई है। मानवीय जनसंख्या की वृद्धि का सम्बन्ध पर्यावरण और मनुष्य के सम्बन्धों पर आधारित है। मानव की परिस्थितिकी और जनसंख्या वृद्धि की प्रवृति का अध्ययन निम्न तीन स्तर पर किया जा सकता है–

(1) प्राचीन मानव की परिस्थितिकी (Ecology of primitive Man)

(2) कृषि मानव की परिस्थितिकी (Ecology of agricultural Man)

(3) औद्योगिक मानव की परिस्थितिकी (Ecology of industrial Man)

इन तीनों का संक्षिप्त विवरण निम्न हैं–

(1) प्राचीन मानव परिस्थितिकी (Ecology of primitive Man)–जब से मनुष्य ने मस्तिष्क से काम लेना शुरु किया और मानव इतिहास से क्रान्ति हुई है। लेकिन इससे पहले प्राचीन मानव की परिस्थितिकी और प्राकृतिक समुदाय की स्थिति स्पष्ट नहीं है, क्योंकि मनुष्य अपने खाने की और पेट की और पेट भरने की खोज तक ही सीमित रहा है। प्राचीन युग में मनुष्य छोटे-छोटे समूहों में जंगलों में रहता था और वह अपने खाने के लिये जंगली जानवरों का शिकार करता और फलों को एकत्रित करता था। इस प्रकार

प्राचीन युग में मनुष्य की संस्कृति भोजन चक्र के एक घटक के रूप तक ही सीमित रही और धीरे-धीरे जनसंख्या वृद्धि से भोजन चक्र की जटिलता बढ़ती गई। इस समय तक मनुष्य ने आग को पैदा करना सीख लिया था। और वह पेड़ की लकड़ी का उपयोग ईंधन के रूप में करने लग गया था। इस प्रकार प्राचीन (आदि) मानव का मुख्य कार्य शिकार करना और फलों को एकत्रित करके खाना था।

(2) कृषि मानव की परिस्थितिकी (Ecology of agricultural Man)- सर्वप्रथम मिश्र मे ईसा से सात हज़ार वर्ष पूर्व मानव ने अपने वातावरण में सुधार लाने हेतु छोटे-मोटे प्रयास करने शुरु कर दिये थे और उन्होंने विशेष प्रकार पौधों को उगाने का प्रयास किया जिससे वे अनाज पैदा करने लगे। उन्होनें जानवरों को भी पालना प्रारम्भ कर किया और अनाज का प्रयोग जानवरों के खाने के लिये करने लगे। परिस्थितिकी की शब्दावली से अगर देखा जाये यह कहना उचित होगा कि मानव ने व्यक्तिगत रूप से परिवर्तन भोजन चक्र में ही किया। कृषि मानव ने वनों को काटना और जंगली जानवरों का शिकार करना, जिन्हें कृषि हेतु खाद और पालतू जानवरों के लिये खाने की सामग्री को जुटाना था।

3. औद्योगिक मानव की परिस्थितिकी (Ecology of industrial Man)- कृषि के विकास के साथ ने अपने रहने हेतु आवास की व्यवस्था करनी आरम्भ की थी जिससे वे स्थाई रूप में निवास कर सके जिससे सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि से अपने जीवन को सुरक्षित रख सकें। जीवन पहले की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हुआ और स्थाई रूप से भोजन की व्यवस्था करने लगे। शिशु मुत्यु दर भी कम हुई और इसके परिणाम स्वरूप जनसंख्या में वृद्धि होनी प्रारम्भ हुई। मानव जनसंख्या की इस प्रकार वृद्धि होती रही और मानव पर्यावरण में परिवर्तन करता रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि जनसंख्या में बहुत वृद्धि हुई। विज्ञान में अविष्कारों ने यातायात के साधनों को जन्म दिया और भोजन सामग्री एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगी। इस प्रकार एक स्थान पर जनसंख्या केन्द्रित होने लगी। कोयले और तेल की खोज की गई जिससे ईंधन का क्षेत्र विकसित हुआ और उसका प्रभाव जनसंख्या की वृद्धि पर हुआ। वर्तमान समय में जनसंख्या की वृद्धि दर अधिक है और विश्व में प्रतिवर्ष 55 करोड़ की वृद्धि हो जाती है। इसके अतिरिक्त मृत्युदर से जन्मदर अधिक है। अब यह अनुमान किया गया है कि एक खरब जनसंख्या की अवश्यकताओं की पूर्ति कृषि और औद्योगिक संसाधन कर सकते हैं। लेकिन जनसंख्या इस सीमा को पार कर गई है अर्थात् जनसंख्या संसाधनों की तुलना में बहुत अधिक है और इसका परिणाम यह हुआ है कि आज विश्व में 75% जनसंख्या गरीबी रेखा से निम्न स्तर का जीवन जी रही है। जो जनसंख्या अधिक खुशहाल है वह विश्व में संसाधनों का उपयोग सब से अधिक करती है और उनका जीवन स्तर बहुत उंचा है।

मानव जनसंख्या को प्रभावित करने वाले तत्व (कारक)
[Factor Affecting Human Population)

बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये पर्यावरण और जनसंख्या पर नियन्त्रण करने के लिये कुछ ठोस कदम उठाये गये हैं जो निम्न हैं–

(1) कृषि में खाद्य पदार्थों का अधिक उत्पादन और खाद्य पदार्थों को संचित करना। बिना मौसम (गैर मौसम) के खाद्य पदार्थों को कोल्ड स्टोरों की सहायता से उपलब्ध करवाना है।

(2) सौर मण्डल की उर्जा का अधिक से अधिक उपयोग करना। इसके अतिरिक्त परमाणु उर्जा का सद्प्रयोग करना।

(3) सुरक्षित आवासों का निर्माण करना और सुविधायों का उपलब्ध करवाना। प्रकृति आपदाओं से बचने के लिये सुरक्षा प्रबन्ध करना।

(4) घरेलू पशुओं के शत्रु जंगली जानवरों को समाप्त करना। इस प्रकार मानव जीवन पहले की तुलना में अधिक सुरक्षित हुआ है।

(5) पशुओं में भी आपसी होड़ और स्पर्धा भी कम हुई है।

(6) औषधि विज्ञान का तीव्र गति से विकास का होना।

उपरोक्त सुविधाओं को उपलब्ध करवाने और पर्यावरण के तत्वों (घटकों) पर नियन्त्रण के परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई है। लेकिन कुछ घटक ऐसे भी है जिनसे बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण बढ़ा है अर्थात् अंकुश लगा है।

1. खाद्य पदार्थों का भण्डारण–खाद्य पदार्थों के भण्डारण की सुविधा से फसल न हो पर कृषि के लिये मौसम ठीक न होने से फसल नष्ट हो जा ऐसी स्थिति में भण्डारण की सुविधा से अकाल पड़ने से तो सुविधा हो जाती है लेकिन इस प्रकार के भोजन से स्वास्थ्य गुणवत्ता प्रभावित होती है।

2. अपर्याप्त आवास–असुविधाओं के अभाव में गर्मी, सर्दी, और बरसात के मौसम में ऐसे आवास में रहने वाले लोग बीमारियों के शिकार होकर मर जाते हैं।

3. प्रकृति प्रकोप–जैसे भूचाल का आना, सूखा पड़ना, ज्वालामुखी विस्फोट, होना, आंधी का और बाढ़ का आना आदि। ये सभी प्रकोप मानव जीवन को प्रभावित करते हैं।

4. मानव शत्रु–मानव के अनेक शत्रु जैसे शेर, जहरीले सांप, चीते, तेन्दुयें और वन्य जीव जन्तु आदि मानव की मृत्यु दर को प्रभावित करते हैं।

5. युद्ध और महायुद्ध–बीते दिनों में जनसंख्या के बीच युद्ध और महायुद्ध होते चले आ रहे हैं। जिनसे लाखों मनुष्यों का संहार हो जाता है। इसका कारण होता है मानव

जाति में अहं की भावना, स्पर्धा भावना और एक-दूसरे पर विजय पाने की और दूसरों को नीचा दिखाने की प्रवृति पाई जाती है और जिसके परिणामस्वरूप युद्ध होते है। युद्ध हमेशा मृत्यु दर में बढ़ोतरी करते हैं।

6. महामारी और बीमारियां–हमारे भूत काल से ही अनेकों बीमारियों और महामारी से जनसंख्या में कमी आती रही है। औषधि विज्ञान के होने पर भी महामारियों और बीमारियों पर काबू नहीं पाया जा सकता। इस प्रकार अधिकांश मृत्यु बीमारी और महामारी के कारण भी होती है।

7. अनेक दुर्घटनाओं बिस्फोट–आज का युग दुर्घटनाओं और विस्फोटों का युग है और इन दुर्घटनाओं और विस्फोटों के चलते आये दिन बहुत से नर, नारियों और बच्चों की मृत्यु हो जाती है। यह जनहानि बहुत बड़ी संख्या में हो रही है। इससे भी मृत्यु दर में बढ़ोतरी हो रही है।

परिस्थितिकी तन्त्र या प्रणाली की धारणा
[Concept of Ecosystem]

आधुनिक विज्ञान और तकनीकी युग में परिस्थितिकी के विकास के साथ परिस्थितिकी तन्त्र (Ecosystem) अधिक उपयोग होने लगा है।

सर्वप्रथम ए.जी. टैनसले ने सन् 1935 में परिस्थितिकी तन्त्र का प्रयोग किया था। इसने परिस्थितिकी प्रणाली (तन्त्र) की परिभाषा भौतिक प्रणाली के रूप में की थी जिसमें जैविक और अजैविक घटक शामिल होते हैं और इनमें स्थिर सन्तुलन होता है। परिस्थितिकी के विकास में भोजन के स्वरूप, समस्याओं विषमताओं और जीव-धारियों में पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। आधुनिकी पारिस्थितिकी को जैविक ऊर्जा आयाम कहते हैं। परिस्थितिकी को परिस्थिति-तन्त्र का अध्ययन कहा जाता है।

इवान्स के अनुसार, "परिस्थितिकी की तन्त्र संचालन, परिवर्तन और ऊर्जा का संचय जो पदार्थों के माध्यम से जीवधारियों की क्रियाओं से होता है। गतिशील अजैविक पर्यावरण के तत्वों का पौधों और जानवरों में संचय अन्त: क्रिया के माध्यम से होता है जिससे सुधार एवं परिवर्तन होता रहता है जिससे परिस्थितिकी प्रणाली का विकास होता है।"

ए. जी. टैन्सले ने परिस्थिति-प्रणाली (तन्त्र) के दो टुकड़े किये हैं-

(1) पहले वर्ग (टुकड़े) में जीव-संसार (Biome) जिसमें सम्पूर्ण पौधों और जानकारी की विशेष इकाई को शामिल करते हैं।

(2) द्वितीय वर्ग में आवास (Habitat) जिसमें विशेष इकाई का भौतिक वातावरण शामिल करते हैं।

परिस्थितिकी प्रणाली के सभी पक्ष-जैविक, अजैविक, जीव संसार आवास आपस में अन्त: क्रिया करते हैं उससे परिपक्व परिस्थिति तन्त्र करते है जिसमें सन्तुलन होता है और सम्पूर्ण व्यवस्था रखी जाती है।

ए०जी० टैन्सले (A.G. Tansely) और **एफ० आर० फोसवर्ग** (F.R. Fosberg) के अनुसार, "परिस्थितिकी प्रणाली एक क्रियाशील अन्त: क्रिया जो जीव-धारियों और उनके प्रभावशाली पर्यावरण के मध्य भौतिक तथा जैविक वातावरण से होती है।" (The ecosystem as functioning, interacting system composed one or more living organisms and their effective environment both physical and biological.)

आर०एन० सिन्डरमैन (R.L. Sinderman) के अनुसार, "परिस्थितिकी की प्रणाली (तन्त्र) का अर्थ होता है कि किसी प्रणाली तन्त्र के भौतिक, जैविक और रासायनिक प्रक्रियाओं जो विशेष, जीवधारी, स्थान तथा समय में इकाई के रूप में होती है।" (The term ecosystem applies to any system composed of physical, chemical and biological processes with in a space time unit of any magnitude.)

ए०एन० स्ट्रेहलर के अनुसार, "सम्पूर्ण तत्वों का संचय जो एक जैविक समूह के साथ अन्त: क्रिया करता है। उसे परिस्थितिकी प्रणाली कहते हैं। इसे सरल भाषा में परिस्थिति तन्त्र कहते हैं।"

"परिस्थितिकी प्रणाली की परिभाषा भौतिक क्रियाओं को एक इकाई के रूप में जो पृथ्वी के विशिष्ट स्थान पर होती है जिसमें सम्पूर्ण समुदाय तथा अजैविक तत्वों और पारस्परिक अन्त: क्रियाओं को एक इकाई स्थान समय के रूप में विवेचन किया जाता है।" (An ecosystem may be defined as fundamental functional unit occupying spatial dimension of earth ship space charactaised by total assemblage of biotie community and abiotic components and their mutual interaction with in a given time unit)

जीव धारी ऊर्जा का प्रयोग कई रूप मे किया जाता है। इसको मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। सौर ऊर्जा और सुनिश्चित ऊर्जा।

(1) सौर ऊर्जा (Radiation)-विद्युत-चुम्बकीय धाराओं के रूप में होती है। जैसे सूर्य की रोशनी।

(2) निश्चित ऊर्जा (Fixed Energy)-यह रासायनिक ऊर्जा होती है जिसके लिये जैविक पदार्थ को तोड़ा जाता है फिर उससे ऊर्जा उत्पन्न होती है।

परिस्थिति तन्त्र (प्रणाली) की विशेषतायें [Charactaisties of Ecosystem]

परिस्थिति तन्त्र की विशेषतायें निम्न हैं–

1. इसमें पृथ्वी के धरातल पर एक सुनिश्चित क्षेत्र का सुनिश्चित समय में इकाई के रूप में अध्ययन करते हैं।

2. परिस्थिति तन्त्र किसी विशेष स्थान और समय की इकाई है जिसमें उस स्थान के सभी जीव-धारियों का उनके वातावरण से सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है।

3. इसके तन्त्र के अन्तर्गत भौतिक, रासायनिक और जैविक प्रक्रियाओं का विशेष समय और स्थान के स्तर को शामिल किया जाता है।

4. इस प्रणाली में तीन प्रकार के तत्वों को शामिल किया जाता है। जैविक (जीव-संसार), अजैविक (आवास) और ऊर्जा तत्वों को शामिल करते हैं।

5. वास्तविक रूप से यह तन्त्र प्रणाली है इसमें अदा, प्रक्रिया और पदा पदार्थ, ऊर्जा के रूप से विस्तार होता रहता है।

6. इस प्रणाली में जटिल अन्त: क्रियाएं जैविक और अजैविक घटकों और ऊर्जा घटकों के रूप में होती है।

7. इस प्रणाली में एक स्थान व समय की इकाई सभी जीव धारियों और उनके भौतिक वातावरण की अन्त: क्रियाओं और निर्भरता का अध्ययन किया जाता है।

8. इस प्रणाली को शक्ति सौर ऊर्जा से प्राप्त होती है और यह अधिक महत्वपूर्ण होती है। उत्पादकता जैविक पदार्थ की वृद्धि जो एक स्थान और समय में होती है। यह शक्ति सन्तुलन के रूप में कार्य करती है।

9. परिस्थिति प्रणाली एक सुव्यवस्थित और सुनिश्चित स्वरूप का प्रणाली तन्त्र है। इसके अध्ययन से पर्यावरण के प्रवन्धन और व्यवस्था में परिस्थितिकी की दृष्टि से सहायता मिलती हैं।

10. इस प्रणाली का अपना उत्पादन होता है। जो जैविक पदार्थों की संरचना की प्रक्रिया होती है। यह उस प्रणाली की ऊर्जा की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

परिस्थिति प्रणाली के प्रकार (Type of Ecosystem)

प्रकृति में कई प्रकार की परिस्थिति प्रणाली है। इन सभी को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। जो निम्न है–

1. प्राकृतिक परिस्थिति प्रणाली (तन्त्र) (Natural Ecosystem)–प्राकृतिक वातावरण में यह तन्त्र अपने आप ही कार्य करता है। इसमें मनुष्य का किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता है विशेष प्रकार के आवास को दो उपभागों में विभक्त किया जाता है–

(1) स्थलीय परिस्थिति प्रणाली (Territosial Ecosystem)–जैसे रेगिस्तान, घास का मैदान, वन क्षेत्र आदि।

(2) नलीय परिस्थिति प्रणाली (Arquatie Ecosystem)–झरना, जल प्रापत, तालाब, नदियां, झीलें आदि। इनके अतिरिक्त समुद्र, महासागर, नहरें, डेलटा आदि।

2. कृत्रिम (बनावटी) या मानवीकृत परिस्थिति प्रणाली (Artifical man made Ecosystem)–इस प्रकार तन्त्र मनुष्यों द्वारा बनाया या व्यवस्थित किया जाता है क्योंकि अतिरिक्त ऊर्जा और नियोजित क्रियाओं द्वारा प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। जैसे गेहूं की फसल, चावल का खेत, मक्के की फसल आदि, मनुष्य जैविक तत्वों को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। जिससे भौतिक रासायनिक वातावरण बदल जाता है। इसको कृत्रिम परिस्थिति तन्त्र कहा जाता है।

3. अन्तरिक्ष परिस्थिति तन्त्र (Space Ecosystem)–यह प्रणाली अभी हाल में ही विकसित हुई है। इसे मानवीकृत तन्त्र ही माना जाता है।

इनके अतिरिक्त परिस्थिति प्रणाली का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया गया है। जो निम्न हैं–

1. आवास (Habitats)
2. पर्यावरण (Ecolines)
3. स्थानीय पैमाना (Spacial Scales)
4. उपयोग (Uses)
5. उर्जा के स्तर एवं संसाधन (Sources and level of Energy)
6. परिस्थिति तन्त्र के विकास की अवस्थाएं (Stages of development of Ecosystem)
7. परिस्थिति तन्त्र की स्थिरता और अस्थिरता (Stabilbty and unstalilily of Ecosystem)

परिस्थितिकी और परिस्थिति प्रणाली (तन्त्र) में अन्तर (Difference between Ecology and Ecosystem)

उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि परिस्थितिकी और परिस्थिति में अर्थपूर्ण अन्तर पाया जाता है जो निम्न ढंग से दर्शाया जाता है।

परिस्थितिकी	परिस्थिति-तन्त्र (प्रणाली)
1. यह वातावरण से सम्बन्धित विज्ञान है।	1. यह वातावरण के अध्ययन का तन्त्र है।
2. इसमें वातावरण के स्वरूप और कार्यों का अध्ययन किया जाता है।	2. इसका सम्बन्ध व्यावहारिक इकाई के विशेष स्थान और समय की इकाई के अध्ययन से है।
3. यह जनसमुदाय का अध्ययन है।	3. इससे एक जीवधारी का एक स्थान और एक समय में अध्ययन किया जाता है।
4. इसके मुख्य रूप से दो पहलू-जीवधारी और वातावरण हैं।	4. इसके तीन घटक (तत्व) हैं-जीवधारी, वातावरण और ऊर्जा प्रवाह।
5. यह परिस्थिति प्रणाली (तन्त्र) का विज्ञान है।	5. इससे महत्वपूर्ण परिस्थितिकी सीमा का पता चलता है।
6. इस विज्ञान में जैविक और अजैविक तत्व शामिल होते हैं।	6. इसमें जीव-भू रासायनिक क्रियाएं होती हैं और इसमें ऊर्जा का रूपान्तरण होता है।
7. यह व्यापक एवं विशाल प्रकृति के परिवर्तन एवं विकास का अध्ययन है।	7. तन्त्र का सम्बन्ध उत्पादकता और उपभोग से होता है और इसके अन्तर्गत उनके सन्तुलन का अध्ययन किया जाता है।
8. यह विज्ञान, कला दोनों ही हैं। इसमें बोध और कार्यों दोनों का पूर्ण महत्व है।	8. यह एक वैज्ञानिक अध्ययन है और इसमें कला जैसी कोई बात नहीं है।
9. इसके अन्तर्गत जीव-धारियों और पर्यावरण के सम्बन्धों एवं प्रभाव का विश्लेषण होता है।	9. इसमें जैविक और अजैविक घटकों (तत्वों) की निर्भरता का अध्ययन विशेष परिस्थिति में करते हैं।
10. इसके अन्तर्गत जीव-धारियों का उनके वातावरण से सम्बन्ध का अध्ययन है।	10. यह पूरी तरह से व्यावहारिक विज्ञान है और किसी एक जीव का किसी स्थान और समय की ईकाई का अध्ययन किया जाता है।
11. इसका सम्बन्ध जीव-धारियों, पौधों और उनके वातावरण के तत्वों (घटकों) से होता है।	11. परिस्थिति प्रणाली के अन्तर्गत एक प्राणी और उसकी विशेष उपजाति का उसके पर्यावरण और ऊर्जा से सम्बन्ध होता है।
12. इसका सम्बन्ध मानव हित, जीव-धारियों के विकास और वृद्धि से होता है।	12. यह स्वतन्त्र प्रणाली है अर्थात् मुक्त तन्त्र है। यह उर्जा के अदा और प्रदा के सन्तुलन का अध्ययन करती है।

शिक्षा और परिस्थितिकी [Education and Ecology]

परिस्थितिकी को विज्ञान और कला-दोनों ही माना जाता है, क्योंकि इसमे बोध और क्रियाशीलता दोनों ही हैं। इसी प्रकार शिक्षा को भी कला और विज्ञान-दोनों ही माना जाता है। शिक्षा एक विकास प्रक्रिया है। व्यवहार-वादी मनोवैज्ञानिकों की यह धारणा है कि विकास की प्रक्रिया में पर्यावरण की भूमिका बहुत सशक्त, सार्थक और महत्वपूर्ण होती है। वशांनुक्रम की कोई भूमिका नहीं होती। इस धारणा के आधार पर मनोवैज्ञानिकों की इस विचारधारा को पर्यावरण मनोविज्ञान की संज्ञा दी गई है।

शिक्षा के दोनों रूपों-औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा का सम्बन्ध पर्यावरण से होता है। शैक्षिक प्रक्रियाओं से वातावरण उत्पन्न होता है। जिसमें छात्र अनुभव प्राप्त करते हैं और ज्ञानार्जन करते हैं अर्थात् छात्र सीखते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में दोनों प्रकार के वातावरण भौतिक अथवा प्राकृतिक वातावरण और मानव निर्मित वातावरण महत्वपूर्ण होते हैं। शिक्षण के बीच अन्त: क्रिया होती है जिसका हम अध्ययन करते हैं।

परिस्थितिकी का सम्बन्ध वातावरण और उसके स्वरूप से है जिसमें क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिससे वातावरण का बोध होता है। इसी प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया की व्यवस्था छात्र-छात्राओं के स्वरूप एवं व्यवहार का नियन्त्रण और संचालन किया जाता है। शिक्षा अध्ययन अपने में एक स्वतन्त्र विषय है। शिक्षा दो क्रियाओं से सम्पन्न होती है- शिक्षण और अधिगम। शिक्षण एक कला है और अधिगम एक विज्ञान है। शिक्षण का व्यावहारिक अथवा क्रियात्मक पहलू है और अधिगम को समझना आवश्यक है। परिस्थितिकी के भी दो महत्वपूर्ण पहलू हैं-करना और समझना। शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। जिनसे मानव में गुणवत्ता लाई जा सके। इसी प्रकार परिस्थितिकी मे विश्व जीवन को प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप अर्थ प्रदान किया जाता है।

शिक्षा को हम एक प्रणाली मानते हैं और जिसकी अनेक प्रणालियां हैं। इसमें स्कूल को एक इकाई माना जाता है। जिसका अपना वातावरण होता है। इस वातावरण का महत्व स्थान और समय के सन्दर्भ में होता है। इसी प्रकार परिस्थितिकी तन्त्र में स्थान तथा समय की इकाई के रूप में ऊर्जा प्रवाह का अध्ययन किया जाता है। परिस्थितिकी और शिक्षा दोनों के अध्ययन का स्रोत बहुत विस्तृत है जिनमें करने और समझने दोनों पर बल दिया जाता है।

परिस्थिति तन्त्र (प्रणाली) और शिक्षा [Ecosystem and Education]

परिस्थितिकी की में परिस्थिति तन्त्र का उपयोग किया जाता है, परिस्थितिकी परिस्थिति तन्त्र की इकाई होती है। परिस्थितिकी का व्यावहारिक पक्ष होता है। परिस्थिति तन्त्र (प्रणाली)

के अन्तर्गत परिस्थितिकी की इकाई का समय, स्थान के सन्दर्भ में किया जाता है। परिस्थितिकी इकाई के अन्तर्गत भौतिक, जैविक तत्वों की अन्त: क्रिया और वातावरण में ऊर्जा प्रवाह का अध्ययन किया जाता है। परिस्थिति तन्त्र की अपनी उत्पादकता होती है, इस उत्पादकता से तात्पर्य यह होता है कि इसकी वृद्धि और विकास गति दर से होता है।

स्कूल में संस्थागत वातावरण होता है और इसके तीन पहलू होते हैं–भौतिक, जैविक, और सामाजिक, और इनमें मानवीय ऊर्जा का प्रवाह होता है जिससे छात्र-छात्राओं वृद्धि और विकास होता है। ऊर्जा शक्ति का रूपान्तरण होता है। रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, शिक्षक एक दीपक के समान होता है और वह दीपक जलता हुआ ही दूसरे दीपक प्रज्वलित कर सकता है। छात्र भी एक दीपक है जिसमें तेल भी होता है और बती भी होती है परन्तु वह जलता नहीं है। परन्तु शिक्षक जलते दीपक के समान होने के कारण छात्र रूपी दीपक की बत्ती को अपनी लौ से रोशनी देता है। इससे यह ज्ञात होता है कि मानव निर्मित ऊर्जा का प्रवाह होता है जिसके संचार से छात्र-छात्राओं का विकास होता है।

परिस्थितिकी और परिस्थिति तन्त्र का उपयोग जीव-धारियों और उनके पर्यावरण के बीच सम्बन्ध और पारस्परिक निर्भरता का अध्ययन किया जाता है। स्कूल शिक्षा की इकाई है जिसका सम्बन्ध स्थान और समाज से होता है। शिक्षा की व्यावहारिक इकाई स्कूल है। परिस्थितिकी अध्ययन की व्यावहारिक इकाई परिस्थिति तन्त्र होता है। स्कूल और शिक्षक अदा पक्ष और छात्र प्रदा पक्ष होता है। इसे स्कूल की उत्पादकता भी कहा जा सकता है। स्कूल में ऊर्जा के संसाधन शिक्षक और प्राचार्य होता है। शिक्षक करते समय शिक्षक अपने सार्थक प्रयासों एवं क्रियाओं एवं क्रियाओं से उचित वातावरण उत्पन्न करता है जिससे अनुभव ग्रहण करते हुए छात्र-छात्राएं सीखते हैं जिससे शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती है।

पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव
[Effect of Man Environment]

मानव जाति ने जबसे इस पृथ्वी पर जन्म लिया है तब से लेकर आज तक मनुष्य और वातावरण (पर्यावरण) का आंख मिचोली का खेल चलता रहा है अर्थात् मानव और पर्यावरण के सम्बन्धों में लगातार परिवर्तन होता रह. है। इन सब के अतिरिक्त एक ही समय में भिन्न स्थानों में मानव और पर्यावरण (वातावरण) के सम्बन्ध बदलते रहे हैं। उदाहरण के तौर पर आदि मानव प्रारम्भ में पर्यावरण से बहुत भयभीत रहा है क्योंकि बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट से भयभीत होता था। सघन वन और वन्य जीवों से उसे हमेशा डर लगता था बड़े-बड़े महासागर और बड़ी नदियां भी उसे भयभीत करती थी। ऐसे समय मे उसके पास पर्यावरण की बाधाओं को दूर करने के लिये किसी प्रकार के कोई साधन व उपकरण भी नहीं थे। वह प्रकृति के भय से प्रकृति के विभिन्न

अंगों जैसे विशाल पहाड़, सूर्य, महासागर, वनों और नदियों की पूजा करने लगा। उसके अपने आपको वातावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास किया।

कालान्तर में मानव में जब कुछ समझ आई तो उसने पत्थरों और धातुओं से उपकरण बनाने प्रारम्भ कर दिये और उसे पत्थरों के टकराने से आग के उपयोग की भी जानकारी हो गई और तब से पर्यावरण पर उसका प्रभाव पड़ने लगा अपने साधनों व उपकरणों की भी जानकारी हो गई और तब से पर्यावरण पर उसका प्रभाव पड़ने लगा। अपने साधनों व उपकरणों से वह वृक्षों को काटने लगा और वृक्ष के बड़े-बड़े टुकड़ों का उपयोग अपने लिये आवास बनाने के लिये करने लगा। वह आग से केवल अपनी रक्षा वन्य जीवों से ही नहीं करता था बल्कि सर्दियों में वह अपने को आग से तापता भी था। वह जानवरों का शिकार और मछली पकड़ने लगा और धीरे-धीरे इस प्रकार अन्य जन्तुओं पर भी उसका प्रभुत्व पड़ने लगा। लेकिन इतना सब कुछ होने के बावजूद उसका वातावरण पर प्रभाव बहुत कम था।

इस प्रकार मनुष्य का विकास समय के साथ होता रहा और जब औद्योगिक क्रान्ति का युग आया तो यान्त्रिक शक्ति से, वाष्प इंजन और अन्य मशीनों के अविष्कार से, और धातुओं के अत्याधिक प्रयोग से मनुष्य को पर्यावरण में परिवर्तन करने का अवसर मिलने लगा। अपनी अवश्यकताओं के अनुकूल वह पर्यावरण में बदलाव का प्रयास करने लगा। वह कृषि के माध्यम से भोजन के लिये आत्मनिर्भर हो गया। अब उसे भोजन के लिये भटकने की किसी प्रकार की आवश्यकता नहीं रही। अब सभी लोग स्थाई रूप से बस्तियां बना कर रहने लगे। वे अब इस योग्य हो गये थे कि निश्चित होकर प्राकृतिक संकटों से बचकर सुरक्षित मकानों में अपने परिवार का पालन-पोषण करने लग गये थे। जैसे-जैसे उनके परिवार बढ़ने लगे तो उन्होंने विश्व के एक स्थान से दूसरे स्थानों पर जाना प्रारम्भ कर दिया। सड़क, रेल और समुद्री परिवहन में बहुत सुधार हो गया और यूरोप के उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका और आस्ट्रेलिया में सम्बन्धी नई बस्तियों पर जाकर निवास करने लगे।

एक समय ऐसा था कि जब लोग प्लेग, मलेरिया, चेचक और हैजे से हज़ारों की संख्या में मर जाते थे। लेकिन चिकित्सा के क्षेत्र में स्वास्थ्य में सम्बन्धी सुविधाओं के विकास होने से मानव ने प्राकृतिक संकटों, महामारियों और अनेक बीमारियों पर काबू पा लिया और धीरे-धीरे मृत्यु दर कम होने लगी और मानव की आवश्यकताएं बढ़ने लगी। अब विश्व की जनसंख्या 6 अरब को पार कर चुकी है। अब इस कटु सत्य ने मनुष्य को वातावरण पर पड़ने वाले अपने कुप्रभावों के बारे में चिंतित कर दिया है। पर्यावरण कुछ स्थानों पर तो इतना प्रदूषित एवं असन्तुलित हो गया है कि मनुष्य को विवश होकर उन स्थानों को छोड़ना पड़ रहा है। प्राकृतिक विपत्तियों जैसे सूखा, बाढ़, प्रदूषण, सड़क, दुर्घटनाओं और उद्योगिक दुर्घटचनाओं में बहुत बड़ी संख्या में लोग मरने लगे हैं। आज का मानव भविष्य के रास्ते का चयन हेतु वह चौराहे पर खड़ा हुआ है। वह असमंजस में है कि किस दिशा की ओर जाये। उसके लिये एक दिशा तो यह है कि वह अपनी कभी ना समाप्त होने वाली आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इसी प्रकार प्रगति के पथ पर चलता रहे और पर्यावरण को इस सीमा तक प्रदूषित और असन्तुलित

कर दे कि भविष्य में पृथ्वी पर उसका अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जाये। दूसरी सकारात्मक दिशा यह है कि वह विकास की गति को धीमी करे, साधनों एवं संसाधनों की सुरक्षा करे, जनसंख्या को नियन्त्रित करे, उपभोग में सादगी लाये और भावी नागरिकों के लिये वातावरण की सुरक्षा प्रहरी के समान करें।

निष्कर्ष रूप में अब यह कहा जा सकता है कि मनुष्य ने अब सोच विचार करना शुरु कर दिया है कि उसके आर्थिक प्रलोभन से सम्बन्धित गतिविधियां ही धरती पर उसके अस्तित्व के लिये खतरा बन गई हैं। इस पृथ्वी पर अपने अस्तित्व के लिये खतरा बन गई हैं। इस पृथ्वी पर अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु मनुष्य के लिये यह आवश्यक है कि पर्यावरण के घटक (तत्व) कौन से हैं और पर्यावरण में कैसी प्रक्रियाएं होती रहती है। इनके अतिरिक्त उसे इस बात का भी ज्ञान होना चाहिये पर्यावरण के विभिन्न जीव एवं अजीव का एक-दूसरे से क्या सम्बन्ध है? इन उपरोक्त सभी बातों के जानने के साथ यह भी समझना होगा कि किसी प्रदेश के साधनों का आंकलन उस प्रदेश के निवासियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही करना पड़ेगा। भारत विकासशील देश है और इसमें जनसंख्या और वृद्धि पर नियन्त्रण करके ही जनसंख्या और साधनों में सन्तुलन बनाये रखा जा सकता है। इस प्रकार उसे वातावरण की समस्याओं को जानकर उनके समाधान हेतु उपयुक्त, सार्थक एवं सशक्त उपाय करने चाहिये ताकि भारत के नागरिकों के लिये इस पृथ्वी को रहने योग्य बनाये रख सकें।

LIBRARY
Acc. No. 4393
BHIWANI

अभ्यास के प्रश्न
[Study Question]

1. परिस्थितिकी परिभाषा दीजिए। परिस्थितिकी की कौन सी विशेषतायें हैं?
   Define Ecology. What are the characteristies of Ecology?
2. परिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं? परिस्थितिकी के क्या उद्देश्य हैं?
   What do you mean by Ecology? What are the objectives of Ecology?
3. परिस्थितिकी के कौन से प्रकार हैं? इसके सिद्धान्तों की चर्चा कीजिए।
   What are the kinds of Ecology? Discuss the scope and principles of Ecology.
4. परिस्थितिकी और परिस्थिति-तन्त्र (प्रणाली) में क्या अन्तर है? परिस्थिति-तन्त्र की कौन-सी विशेषतायें हैं?
   (What is the difference between ecology and ecosystem? What are the charactesties of Ecosystem.?) ❑

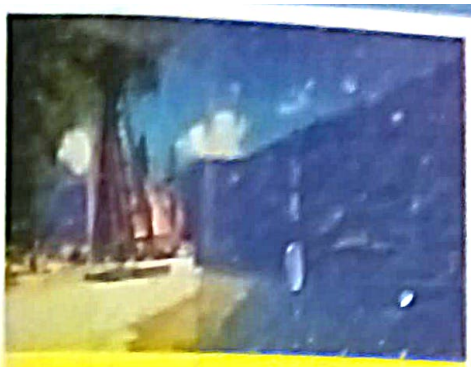

पर्यावरण शिक्षा

(Environmental Education)

डॉ० के० सी० जैन

शैल जैन

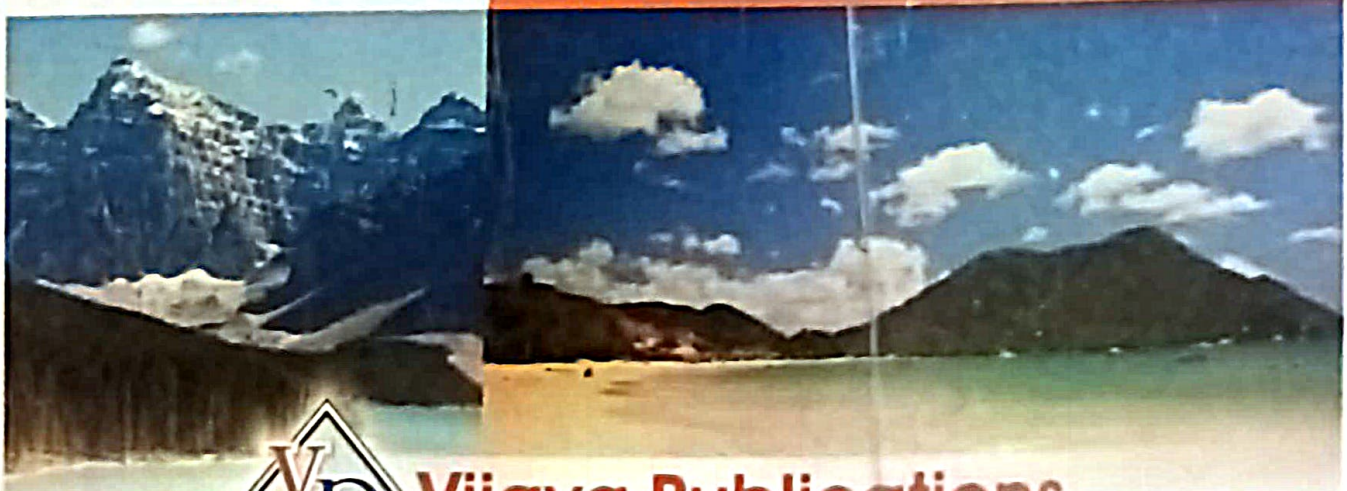

Vijaya Publications

Ludhiana